का० मार्क्स
फ़्रे० एंगेल्स

संकलित रचनाएं

तीन खण्डों में

खण्ड २

भाग २

प्रगति प्रकाशन - मास्को

दुनिया के मज़दूरो, एक हो!

अनुवादक और संपादक: सुरेन्द्र कुमार

प्रकाशक की ओर से

इस संग्रह में जो कृतियां शामिल हैं उनका अनुवाद कार्ल मार्क्स और फ़्रेडरिक एंगेल्स की संकलित रचनाओं के तीन खण्डों वाले संस्करण (खण्ड २) के मुताबिक़ किया गया है।

पाठकों की सुविधा के लिए इस खण्ड को दो भागों में बांटा गया है।

К. МАРКС, Ф. ЭНГЕЛЬС

Избранные произведения

в 3-х томах,
том II, часть 2

на языке хинди

सोवियत संघ में मुद्रित

M $\frac{10101-133}{016(01)-77}$ 636—77

विषय-सूची

फ़्रेडरिक एंगेल्स

मज़दूर वर्ग की राजनीतिक क्रिया के बारे में

२१ सितंबर १८७१ को अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर संघ के लंदन सम्मेलन में दिया गया भाषण[1]

राजनीतिक क्रिया से सर्वथा विरत रहना असंभव है। विरतिवादी समाचारपत्र रोज़ाना राजनीति में भाग लेते हैं। प्रश्न केवल यह है कि आप राजनीति में कैसे भाग लेते हैं और किस प्रकार की राजनीति में भाग लेते हैं। बाक़ी बात यह है कि हमारे लिए राजनीति से विरत रहना असंभव है। अब तक अधिकांश देशों में मज़दूर वर्ग की पार्टी राजनीतिक पार्टी के रूप में कार्य करने लगी है, और हमारा काम यह नहीं है कि राजनीति से विरत रहने का प्रचार करके उसे चौपट कर डालें। जीवंत अनुभव, मौजूदा सरकारों का राजनीतिक उत्पीड़न मज़दूरों को राजनीति में दख़ल देने के लिए विवश करता है, चाहे वे इसे चाहें या न चाहें, चाहे वे ऐसा राजनीतिक लक्ष्यों के लिए करें या सामाजिक। उन्हें राजनीति से विरत रहने का उपदेश देकर हम उन्हें पूंजीवादी राजनीति के जाल में फंसा देंगे। पेरिस कम्यून के बाद, जिसने सर्वहारा की राजनीतिक क्रिया को आज की कार्यसूची में दाख़िल कर दिया, राजनीति से विरत रहने का सवाल ही पैदा नहीं होता।

हम वर्गों का उन्मूलन चाहते हैं। इसे पूरा करने का क्या साधन है? इसका एकमात्र साधन सर्वहारा का राजनीतिक प्रभुत्व है। फिर भी अब, जब सभी इस बात को मानते हैं, हमसे कहा जाता है कि हम राजनीति में दख़ल न दें! विरतिवादी कहते हैं कि वे क्रांतिकारी हैं, यहां तक कि सर्वश्रेष्ठ क्रांतिकारी हैं। लेकिन क्रांति राजनीतिक क्रिया की पराकाष्ठा है और जो लोग क्रांति चाहते हैं वे उसे सम्पन्न करने के साधन, अर्थात् राजनीतिक क्रिया के प्रति उदासीन नहीं हो सकते। इस क्रिया से ही क्रांति के लिए ज़मीन तैयार होती है और मज़दूरों

को वह क्रांतिकारी प्रशिक्षण प्राप्त होता है, जिसके बिना वे लड़ाई के दूसरे ही दिन फ़ाव्र तथा प्यात जैसे लोगों के धोखे में आये बिना नहीं रह सकते। मगर यह ज़रूर है कि हमारी राजनीति मज़दूर वर्ग की राजनीति होनी चाहिए; मज़दूर पार्टी को किसी पूंजीवादी पार्टी का दुमछल्ला कभी नहीं होना चाहिए; वह स्वाधीन होनी चाहिए, उसका अपना लक्ष्य, अपनी नीति होनी चाहिए।

राजनीतिक स्वातंत्र्य – सभा और संघ स्वातंत्र्य तथा प्रेस स्वातंत्र्य – ये हमारे अस्त्र हैं। जब कोई हमारे इन अस्त्रों को चुरा लेने की कोशिश करता है तब क्या हम चुपचाप हाथ पर हाथ धरे बैठे रहें और राजनीति से विरत रहें? कहा जाता है कि अगर हम कोई राजनीतिक कार्रवाई करते हैं तो इसका मतलब यह है कि हम मौजूदा वस्तुस्थिति को स्वीकार करते हैं। परन्तु जब तक मौजूदा वस्तुस्थिति हमें उसका प्रतिवाद करने का साधन प्रदान करती है, तब तक इन साधनों को इस्तेमाल करने का मतलब यह नहीं है कि हम मौजूदा वक़्त में हावी व्यवस्था को स्वीकार करते हैं।

पहली बार 'कम्युनिस्ट इंटरनेशनल' पत्रिका, अंक २९, १९३४, में प्रकाशित।

अंग्रेज़ी से अनूदित।

कार्ल मार्क्स तथा फ़्रेडरिक एंगेल्स

इंटरनेशनल में कल्पित फूटें

अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर संघ की जनरल कौंसिल का एक गुप्त परिपत्र

जनरल कौंसिल इंटरनेशनल के आन्तरिक कलहों में हस्तक्षेप से अब तक बिल्कुल अलग रही है और उसने संघ के कुछ सदस्यों द्वारा उस पर दो वर्षों से अधिक समय से किये जा रहे प्रत्यक्ष प्रहारों का कभी सार्वजनिक रूप से उत्तर नहीं दिया।

परन्तु यदि बात इंटरनेशनल और एक ऐसी सोसायटी * के बीच, जो अपने जन्म से ही उसके प्रति वैरभाव रखती आ रही है, ग़लतफ़हमी क़ायम रखने की चन्द दस्तंदाज़ों की लगातार कोशिशों तक सीमित होती तो जनरल कौंसिल चुप्पी साधे रहती, परन्तु अब ऐसे समय, जब इंटरनेशनल अपनी स्थापना के बाद से सबसे गम्भीर संकट के बीच से गुज़र रहा है, उस सोसायटी द्वारा फैलायी जा रही बदनामी से यूरोपीय प्रतिक्रियावाद को प्राप्त समर्थन जनरल कौंसिल को विवश करता है कि वह इन तमाम तिकड़मों की ऐतिहासिक समीक्षा प्रस्तुत करे।

१

पेरिस कम्यून की पराजय के बाद जनरल कौंसिल ने पहला काम यह किया कि उसने फ़्रांस में गृहयुद्ध ** के सम्बन्ध में अपनी चिट्ठी प्रकाशित की जिसमें उसने कम्यून की उन तमाम कार्रवाइयों का समर्थन किया जो उस समय यूरोप के

---

* समाजवादी जनवाद क अन्तर्राष्ट्रीय सहबंध। – सं०

** देखें प्रस्तुत खण्ड। – सं०

पूंजीपति वर्ग, अख़बारों तथा तमाम सरकारों के लिए परास्त पेरिसवासियों पर घिनौने से घिनौना कीचड़ उछालने का बहाना बनी हुई थीं। स्वयं मज़दूर वर्ग के अन्दर कुछ लोग अब भी यह समझने में असमर्थ थे कि उनके ध्येय की पराजय हो चुकी है। कौंसिल ने यह तथ्य अन्य बातों के अलावा अपने दो सदस्यों, नागरिकगण ओडजर तथा लेक्राफ़्त के इस्तीफ़े से अनुभव कर लिया था जिन्होंने इस चिट्ठी के साथ एकजुटता को पूरी तरह अस्वीकार कर दिया। कहा जा सकता है कि पेरिस की घटनाओं के विषय में मज़दूर वर्ग के बीच विचारों की एकता तमाम सभ्य देशों में चिट्ठी के प्रकाशन के समय से शुरू हुई थी।

दूसरी ओर इंटरनेशनल ने पूंजीवादी अख़बारों और विशेष रूप से प्रमुख अंग्रेज़ी समाचारपत्रों को प्रचार का एक सशक्त साधन पाया, जिन्हें चिट्ठी ने जनरल कौंसिल के उत्तरों द्वारा चलाये जाते रहनेवाले वाद-विवाद में भाग लेने के लिए विवश किया।

बहुत बड़ी संख्या में कम्यून के उत्प्रवासियों के लन्दन में आगमन ने जनरल कौंसिल के लिए यह आवश्यक बना दिया कि वह स्वयं राहत समिति बन जाये और अन्य कर्त्तव्यों की पूर्ति के अलावा आठ माह से अधिक समय तक यह कार्य करे। यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि कम्यून के परास्त तथा निर्वासित लोग पूंजीपति वर्ग से कोई आशा नहीं कर सकते थे। जहां तक मज़दूर वर्ग का सम्बन्ध है, सहायता की अपीलें बहुत कठिन समय में की गयी थीं। उत्प्रवासी काफ़ी बड़ी तादाद में स्विट्ज़रलैंड तथा बेल्जियम में पहुंच चुके थे जिनके लिए उन्हें या तो गुज़र-बसर की व्यवस्था करनी पड़ती थी या लन्दन भेजना पड़ता था। जर्मनी, आस्ट्रिया और स्पेन में जमा की गयी धनराशियां स्विट्ज़रलैंड भेजी जाती रहीं। इंगलैंड में नौ घंटे के कार्य-दिवस के लिए बहुत बड़ी लड़ाई ने, जो निर्णायक रूप से न्यूकैसल[2] में लड़ी गयी थी, मज़दूरों के निजी चन्दों तथा ट्रेड यूनियनों द्वारा स्थापित कोषों को ख़र्च कर दिया था, जिन्हें प्रसंगतः नियमानुसार केवल श्रम संघर्षों के लिए ख़र्च किया जाना चाहिए था। इस बीच कौंसिल परिश्रमपूर्वक कार्य करते हुए तथा चिट्ठियां भेजते हुए ज़रा-ज़रा कर धन जमा करने में सफल रही जिसे वह साप्ताहिक रूप में वितरित करती थी। अमरीकी मज़दूरों ने उसकी अपील का उदारतापूर्वक उत्तर दिया। यह अफ़सोस की बात है कि कौंसिल को वह करोड़ों की पूंजी प्राप्त नहीं थी जिसके बारे में भयभीत पूंजीपति वर्ग का विश्वास था कि उसे इंटरनेशनल ने अपनी तिजोरियों में जमा कर रखा है!

मई १८७१ के बाद कम्यून के कुछ उत्प्रवासियों से कौंसिल में शामिल होने के लिए कहा गया जिसमें युद्ध के फलस्वरूप फ़्रांस की ओर से कोई प्रतिनिधि नहीं था। नये सदस्यों में इंटरनेशनल के कुछ पुराने लोग तथा अपनी क्रान्तिकारी स्फूर्ति के लिए प्रसिद्ध वे चन्द लोग थे जिनका चुनाव पेरिस कम्यून के प्रति श्रद्धांजलि था।

इन तमाम व्यस्तताओं के साथ कौंसिल को सम्मेलन[3] के लिए भी तैयारी करनी पड़ रही थी जिसे बुलाने की उसने अभी-अभी घोषणा की थी।

इंटरनेशनल के विरुद्ध बोनापार्ती सरकार की उग्र दमनात्मक कार्रवाइयों ने पेरिस में सम्मेलन नहीं होने दिया जिसकी बाज़ेल कांग्रेस[4] के एक प्रस्ताव में व्यवस्था की गयी थी। जनरल कौंसिल ने नियमावली की धारा ४ में दिये गये अधिकार का उपयोग करके १२ जुलाई १८७० के अपने परिपत्र द्वारा कांग्रेस माइंत्स में बुलाई। उसी समय विभिन्न संघों* के नाम भेजी गयी चिट्ठियों में उसने प्रस्ताव किया कि जनरल कौंसिल इंगलैंड से किसी अन्य देश को स्थानान्तरित की जाये और उसने मांग की कि डेलीगेटों को इस आशय के निश्चित अधिदेश दिये जायें। संघों ने सर्वसम्मति से इस बात पर ज़ोर दिया कि जनरल कौंसिल लंदन में ही रहे। चन्द दिन बाद शुरू होनेवाले फ़्रांस-प्रशा युद्ध[5] ने कांग्रेस आयोजित करने के विचार का परित्याग करना आवश्यक बना दिया। फिर संघों ने, जिनसे हमने परामर्श किया था, हमें राजनीतिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए कांग्रेस की अगली तिथि निश्चित करने का अधिकार दिया था।

ज्योंही राजनीतिक स्थिति अनुकूल हुई, जनरल कौंसिल ने १८६५ के सम्मेलन[6] तथा प्रत्येक कांग्रेस की गुप्त प्रशासनिक सभाओं के पूर्व उदाहरणों का अनुकरण करते हुए एक गुप्त सम्मेलन बुलाया। ऐसे समय, जब यूरोपीय प्रतिक्रियावाद आनन्दोत्सव मना रहा था; जब जूल फ़ाव्र तमाम सरकारों से, यहां तक कि ब्रिटिश सरकार से भी उत्प्रवासियों का साधारण मुजरिमों की तरह प्रत्यर्पण करने की मांग कर रहा था; जब दूफ़ो देहातियों की सभा[7] से इंटरनेशनल पर पाबन्दी लगाने का क़ानून पास करने का प्रस्ताव कर रहा था जिसका पाखण्डपूर्ण नकली रूप आगे चलकर मालू ने बेल्जियमवासियों के समक्ष प्रस्तुत किया था; जब स्विट्ज़रलैंड में कम्यून के एक उत्प्रवासी को प्रत्यर्पण के बारे में संघीय सरकार के निर्णय की प्रतीक्षा करते समय निरोधक नज़रबन्दी के अन्तर्गत बन्दीगृह में

---

*कार्ल मार्क्स, 'तमाम शाखाओं के लिए गुप्त सन्देश'। – सं०

रखा गया था; जब इंटरनेश्नल के सदस्यों का पीछा करना ब्योइस्ट और बिस्मार्क के बीच संघबद्धता का प्रत्यक्ष आधार था जिसकी इंटरनेशनल विरोधी दिशा को विक्टर-एमानुईल ने चटपट अंगीकार कर लिया था; जब स्पेनिश सरकार अपने को पूरी तरह वेर्साई के वधिकों[8] के हाथों में सौंपते हुए मैड्रिड संघीय कौंसिल को पुर्तगाल में शरण ढूंढ़ने के लिए विवश कर रही थी; अन्ततः ऐसे समय जब इंटरनेशनल का प्रथम कर्त्तव्य अपना संगठन मजबूत बनाना और सरकारों द्वारा दी गयी चुनौती को स्वीकार करना था, ऐसे समय खुली कांग्रेस बुलाना असम्भव था और उसका केवल यही फल निकलता कि महाद्वीप के डेलीगेट सरकारों के हाथों में सौंप दिये जाते।

जनरल कौंसिल के साथ नियमित सम्पर्क में रहनेवाली तमाम शाखाओं को सम्मेलन में भाग लेने के लिए ठीक समय पर आमंत्रित कर दिया गया था जिसे खुली बैठक न होने के बावजूद गम्भीर कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा था। फ़्रांस, निस्सन्देह आन्तरिक स्थिति के कारण कोई डेलीगेट चुनने में असमर्थ था। इटली में उस समय एकमात्र संगठित शाखा नेपल्स की थी परन्तु वह डेलीगेट चुनने ही वाली थी कि उसे सेना ने भंग कर दिया। आस्ट्रिया तथा हंगरी में सबसे सक्रिय सदस्य जेलों में ठूंस दिये गये। जर्मनी में कुछ अधिक विख्यात सदस्यों को घोर राजद्रोह के अभियोग में दमन का शिकार बनाया गया, दूसरे जेलों में थे और पार्टी का कोष उनके परिवारों के सदस्यों को मदद देने पर ख़र्च किया गया। अमरीकियों ने हालांकि अपने यहां इंटरनेशनल की स्थिति पर सम्मेलन के नाम एक विस्तृत ज्ञापन भेजा, उन्होंने प्रतिनिधिमंडल पर होनेवाले व्यय की राशि उत्प्रवासियों को सहायता देने के लिए इस्तेमाल की। वस्तुतः सभी संघों ने खुली कांग्रेस की जगह गुप्त सम्मेलन करने की आवश्यकता स्वीकार की।

१८७१ में लन्दन में १७ से २३ सितम्बर तक हुए सम्मेलन ने जनरल कौंसिल को अपने प्रस्ताव प्रकाशित करने, प्रशासनिक अधिनियमों को संहिताबद्ध करने और उन्हें संशोधन तथा सुधार करने के बाद आम नियमावली * के साथ तीन भाषाओं में छापने, सदस्यता-कार्ड की जगह स्टाम्प्स लगाने के प्रस्ताव को क्रियान्वित करने, इंगलैंड में[9] इंटरनेशनल का पुनर्गठन करने और अन्ततः इन विविध उद्देश्यों के लिए आवश्यक धन की व्यवस्था करने का अधिकार दिया।

---

* देखें प्रस्तुत संस्करण, खण्ड २, भाग १। – सं०

सम्मेलन की कार्यवाही के प्रकाशन के बाद पेरिस और मास्को, लन्दन तथा न्यूयार्क के प्रतिक्रियावादी अख़बारों ने मज़दूर वर्ग की नीति-सम्बन्धी प्रस्ताव* की भर्त्सना करते हुए उसे ऐसे ख़तरनाक मंसूबों से – «*Times*»[10] ने तो उस पर "ख़ूब सोची-समझी ढिठाई" दिखाने का आरोप लगाया – भरा हुआ बताया जो इंटरनेशनल को शीघ्रातिशीघ्र ग़ैरक़ानूनी घोषित करने के लिए पर्याप्त हैं। दूसरी ओर, कपटपूर्ण संकीर्णतावादी शाखाओं[11] पर प्रहार करने वाले प्रस्ताव ने अन्तर्राष्ट्रीय पुलिस को मज़दूरों की, जिन्हें वह जनरल कौंसिल तथा सम्मेलन की घृणित निरंकुशता से बचाने का दम भरती थी, प्रतीयमान अप्रतिबन्धित स्वायत्तता के वास्ते शोरगुल द्वारा मुहिम चलाने का वह बहाना दिया जिसका देर से इन्तज़ार था। मज़दूर वर्ग अपने को निस्संदेह जनरल कौंसिल द्वारा "इतना अधिक उत्पीड़ित" अनुभव कर रहा था कि उसे यूरोप, अमरीका, आस्ट्रेलिया, ईस्ट इंडीज तक से इंटरनेशनल में नये सदस्यों की भर्ती तथा नयी शाखाओं की स्थापना के बारे में रिपोर्टें मिलती रहीं।

२

अन्तर्राष्ट्रीय पुलिस के विलाप की तरह पूंजीवादी अख़बारों में की गयी भर्त्सनाओं को हमारे संघ तक में सहानुभूतिपूर्ण प्रतिध्वनि प्राप्त हुई। संघ के अन्दर कुछ तिकड़में रची गयीं जो दिखावे के लिए जनरल कौंसिल के विरुद्ध परन्तु वस्तुतः संघ के विरुद्ध लक्षित थीं। इन तिकड़मों की तह में हमेशा **समाजवादी जनवाद का अन्तर्राष्ट्रीय सहबंध** होता जो रूसी मिख़ाईल बकूनिन का शिशु था। बकूनिन ने साइबेरिया से लौटने के बाद हर्ज़ेन की पत्रिका 'कोलोकोल' में अपने लम्बे अनुभव के बाद परिकल्पित सर्वस्लाववाद तथा नस्ल युद्ध के विचारों का प्रचार किया।[12] आगे चलकर स्विट्ज़रलैंड में अपने प्रवास के दौरान उन्हें इंटरनेशनल के मुक़ाबले में स्थापित शान्ति तथा स्वतंत्रता लीग[13] की संचालन समिति का प्रधान मनोनीत किया गया। जब इस पूंजीवादी संस्था के हालात बिगड़ते चले गये, उसके अध्यक्ष श्री जी० फ़ोग्ट ने बकूनिन के सुझाव पर इंटरनेशनल की कांग्रेस से, जो सितम्बर १८६८ में ब्रसेल्स में हुई थी, प्रस्ताव किया कि वह लीग के साथ सहबंध करे। कांग्रेस ने सर्वसम्मति से दो विकल्प प्रस्तुत किये – या तो

* देखें प्रस्तुत खंड। – सं०

लीग उसी ध्येय का अनुसरण करे जो इंटरनेशनल का है–उस दशा में लीग के अस्तित्व के बने रहने के लिए कोई कारण नहीं रह जाता,–अथवा उसका ध्येय भिन्न होना चाहिए–उस दशा में सहबंध असम्भव होगा। चन्द दिन बाद बर्न में हुई लीग की कांग्रेस में बकूनिन ने पैंतरा बदला। उन्होंने एक कामचलाऊ कार्यक्रम प्रस्तावित किया जिसे इस एक वाक्यांश से ही परखा जा सकता है– "**वर्गों का आर्थिक तथा सामाजिक समताकरण**"।[14] एक अनुल्लेखनीय अल्पसंख्या का समर्थन प्राप्त करते हुए उन्होंने लीग से नाता तोड़ डाला ताकि वह इंटरनेशनल में शामिल हो सकें। वह इस बात के लिए कमर कसे हुए थे कि इंटरनेशनल की आम नियमावली के स्थान पर लीग द्वारा ठुकराये गये कामचलाऊ कार्यक्रम को और जनरल कौंसिल के स्थान पर अपनी वैयक्तिक तानाशाही को रखें। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए उन्होंने एक विशेष अस्त्र, **समाजवादी जनवाद का अन्तर्राष्ट्रीय सहबंध** तैयार किया ताकि वह इंटरनेशनल के अन्दर एक और इंटरनेशनल बन जाये।

बकूनिन को इस संस्था के निर्माण के लिए उन लोगों के बीच से, जिनके साथ उन्होंने अपने इटली में प्रवास के दौरान सम्बन्ध क़ायम किये थे तथा रूसी उत्प्रवासियों के एक छोटे समूह के बीच से आवश्यक तत्त्व प्राप्त हो गये थे; ये उत्प्रवासी स्विट्ज़रलैंड, फ़्रांस तथा स्पेन में बकूनिन के दूतों तथा इंटरनेशनल के सदस्य बनानेवाले लोगों के रूप में काम कर रहे थे। फिर भी बकूनिन ने अपनी नयी संस्था के नियमों को स्वीकृति के लिए जनरल कौंसिल के सामने प्रस्तुत करने का फ़ैसला तभी किया जब बेल्जियम तथा पेरिस की फ़ेडरल कौंसिलें सहबंध को मान्यता देने से बार-बार इन्कार कर चुकी थीं। ये नियम "ग़लत समझे गये" बर्न कार्यक्रम के हू-ब-हू प्रतिरूप के अलावा और कुछ नहीं थे। कौंसिल ने २२ दिसम्बर १८६८ को उसका उत्तर निम्नलिखित परिपत्र द्वारा दिया :

समाजवादी जनवाद के अन्तर्राष्ट्रीय सहबंध को
जनरल कौंसिल की ओर से

लगभग एक माह पहले चन्द नागरिकों ने **समाजवादी जनवाद का अन्तर्राष्ट्रीय सहबंध** नामक एक नयी अन्तर्राष्ट्रीय संस्था की **केन्द्रीय पहल समिति** की यह कहते हुए स्थापना की कि उनका "**विशेष मिशन समता** के भव्य सिद्धान्त के आधार पर राजनीतिक तथा दार्शनिक प्रश्नों का अध्ययन, आदि" करना है।

इस पहल समिति द्वारा प्रकाशित कार्यक्रम तथा नियमावली अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर संघ की जनरल कौंसिल के पास केवल १५ दिसम्बर १८६८ को ही भेजी गयी। इन दस्तावेज़ों के अनुसार कथित सहबंध "पूरी तरह इंटरनेशनल में घुला-मिला हुआ है" और साथ ही वह इस मज़दूर संघ से पूरी तरह बाहर भी स्थापित है। **इंटरनेशनल** की जनरल कौंसिल के अलावा, जो क्रमशः जेनेवा, लोज़ांस[15] तथा ब्रसेल्स कांग्रेसों में निर्वाचित हुई, पहल समिति द्वारा तैयार नियमावली के अनुरूप जेनेवा में एक और स्वयंनियुक्त जनरल कौंसिल भी होगी। **इंटरनेशनल** के स्थानीय ग्रूपों के अलावा **सहबंध** के भी स्थानीय ग्रूप होंगे, जो **इंटरनेशनल** के राष्ट्रीय कार्यालयों से स्वतंत्र अपने ही राष्ट्रीय ब्यूरो के ज़रिए "**सहबंध के केन्द्रीय ब्यूरो से उन्हें इंटरनेशनल में भर्ती करने के लिए कहेंगे**"; इस प्रकार सहबंध की केन्द्रीय समिति **इंटरनेशनल** में प्रवेश के अधिकार को स्वयं ग्रहण करती है। आखिरी चीज़, **अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर संघ की जनरल कांग्रेस** का प्रतिरूप होगा **सहबंध की जनरल कांग्रेस**, क्योंकि—जैसा कि पहल समिति की नियमावली में कहा गया है—मज़दूरों की वार्षिक कांग्रेस में समाजवादी जनवाद के अन्तर्राष्ट्रीय सहबंध का प्रतिनिधिमंडल अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर संघ की एक शाखा के रूप में "**एक पृथक भवन में अपनी बैठकें किया करेगा।**"

इस बात को ध्यान में रखते हुए,

कि अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर संघ के अन्दर तथा बाहर काम करनेवाले एक दूसरे अन्तर्राष्ट्रीय संगठन का अस्तित्व संघ के विघटन का सुनिश्चित माध्यम होगा;

कि कहीं भी लोगों के अन्य समूह को जेनेवा की पहल समिति का अनुकरण करने का और कम या ज्यादा विश्वसनीय लगनेवाले बहाने से दूसरे विशेष ध्येय वाली अन्य अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं को अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर संघ के अन्दर लाने का अधिकार मिल जायेगा;

कि अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर संघ इस तरह शीघ्र हर तरह के दस्तंदाज़ों के—वे चाहे किसी भी राष्ट्रीयता के या पार्टी के हों—हाथों में एक खिलौना बन जायेगा;

कि इसके अलावा अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर संघ की नियमावली केवल स्थानीय तथा राष्ट्रीय शाखाओं को ही सदस्यता प्रदान करती है (देखें नियमावली की धारा १ तथा धारा ६);

कि अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर संघ की शाखाओं को अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर संघ की नियमावली तथा प्रशासनिक अधिनियमों के विपरीत नियमावली अथवा प्रशासनिक

अधिनियम स्वीकृत करने की मनाही है (देखें प्रशासनिक अधिनियमों की धारा १२);

कि अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर संघ की नियमावली तथा प्रशासनिक अधिनियमों को जनरल कांग्रेस तभी संशोधित कर सकती है जब इस प्रकार के संशोधन के पक्ष में उपस्थित डेलीगेटों का दो-तिहाई भाग मत दे (देखें प्रशासनिक अधिनियमों की धारा १३);

कि इस प्रश्न पर फ़ैसला ब्रसेल्स में जनरल कांग्रेस में **शान्ति लीग** के विरुद्ध सर्वसम्मति से पास किये गये प्रस्तावों में पहले से ही मौजूद है;

कि इन प्रस्तावों में कांग्रेस ने घोषित किया कि **शान्ति लीग** के अस्तित्व का कोई औचित्य नहीं है क्योंकि उसकी हाल की घोषणाओं के अनुसार उसके लक्ष्य तथा सिद्धान्त अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर संघ के लक्ष्यों तथा सिद्धान्तों के अनुरूप हैं;

कि सहबंध के जेनेवा पहल ग्रूप के अनेक सदस्यों ने ब्रसेल्स कांग्रेस में डेलीगेटों के रूप में इन प्रस्तावों के पक्ष में मतदान किया था;

अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर संघ की जनरल कौंसिल ने २२ दिसम्बर १८६८ की अपनी बैठक में सर्वसम्मति से निश्चय किया कि:

१. समाजवादी जनवाद के अन्तर्राष्ट्रीय सहबंध की नियमावली की तमाम धाराएं, जो अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर संघ के साथ उसके सम्बन्धों की व्याख्या करती हैं, रद्द घोषित की जाती हैं;

२. समाजवादी जनवाद के अन्तर्राष्ट्रीय सहबंध को अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर संघ में उसकी शाखा के रूप में भर्ती नहीं होने दिया जाये।

जी० ओडजर, बैठक के अध्यक्ष
रा० शा०, महामंत्री

लन्दन, २२ दिसम्बर १८६८

चन्द महीने बाद सहबंध ने फिर जनरल कौंसिल से अपील की और कहा कि वह इस बात का उत्तर "**हां**" या "**न**" में दे कि वह सहबंध के **सिद्धान्तों** को स्वीकार करती है या नहीं। यदि उत्तर "**हां**" में हो तो सहबंध इंटरनेशनल की शाखाओं में अपने को विलीन करने के लिये तैयार है। जनरल कौंसिल ने ९ मार्च १८६९ को अपने परिपत्र में उत्तर दिया:

थी। विभिन्न "क्रान्तिकारी समितियों" के नामों की आड़ में अपना असली रूप छिपाते हुए बकूनिन ने कालियोस्त्रो के ज़माने की सारी तिकड़मों तथा छल-प्रपंचों पर आधारित निरंकुश शक्ति प्राप्त करने का प्रयास किया। इस संस्था के प्रचार का ख़ास तरीक़ा यह था कि वह निर्दोष लोगों को रूसी पुलिस की निगाह में संदिग्ध बनाने के लिए उन्हें जेनेवा से पीले लिफ़ाफ़ों में चिट्ठियां भेजा करती थी जिनके बाहर रूसी भाषा में लगी मुहर में लिखा रहता था: "गुप्त क्रान्तिकारी कमिटि"। नेचायेव के मुक़दमे के बारे में प्रकाशित वृतान्त इंटरनेशनल के नाम * का नीचतापूर्ण दुरुपयोग का प्रमाण है।

सहबंध ने अब पहले लोक्ले से निकलनेवाले अख़बार «*Progrès*»[17] और फिर जेनेवा से निकलने वाले रोमांस फ़ेडरेशन के आधिकारिक अख़बार «*Égalité*»[18] में, जिसमें सहबंध के कई सदस्य बकूनिन के अनुयायी थे, जनरल कौंसिल के विरुद्ध वाद-विवाद शुरू कर दिया। जनरल कौंसिल, जो बकूनिन के व्यक्तिगत मुखपत्र «*Progrès*» में प्रकाशित आक्षेपों का तिरस्कार करती रही, «*Égalité*» में प्रकाशित आक्षेपों की उपेक्षा नहीं कर सकती थी, जिनके बारे में वह यह विश्वास करने के लिए विवश थी कि उन्हें रोमांस फ़ेडरल कमेटी की स्वीकृति प्राप्त है। इसलिए उसने १ जनवरी १८७० को ** एक परिपत्र प्रकाशित किया जिसमें उसने कहा:

"११ दिसम्बर १८६९ के «*Égalité*» में लिखा हुआ है:

"जनरल कौंसिल निस्सन्देह अत्यन्त महत्वपूर्ण मामलों की उपेक्षा कर रही है। हम उसे अधिनियमों की धारा १ के अन्तर्गत उसके उत्तरदायित्वों की याद दिलाते हैं—जनरल कौंसिल कांग्रेस के प्रस्तावों को अमल में लाने के लिए कर्तव्यबद्ध है, आदि। हम जनरल कौंसिल के सामने इतने पर्याप्त प्रश्न कर सकते हैं कि उनके उत्तरों से एक लम्बी रिपोर्ट बन जाती। हम यह काम बाद में करेंगे ... इस बीच, आदि।"

---

* नेचायेव के मुक़दमे[16] का एक अंश शीघ्र प्रकाशित किया जायेगा। पाठक को उसमें मूर्खतापूर्ण तथा घिनौने दोनों प्रकार के नियम मिल जायेंगे जिन्हें बकूनिन के दोस्तों ने इंटरनेशनल के मत्थे मढ़ा है।

** देखें, कार्ल मार्क्स 'रोमांस स्विट्ज़रलैंड की फ़ेडरल कौंसिल के नाम जनरल कौंसिल की ओर से'।—सं०

है। जनरल कौंसिल को यक़ीन है कि आप ऐसे शब्दों को अपने कार्यक्रम से निकालने के लिए उत्सुक होंगे जो इतनी ख़तरनाक ग़लतफ़हमी पैदा कर सकते हैं। हमारे संघ के सिद्धान्त प्रत्येक शाखा को अपना सैद्धान्तिक कार्यक्रम तैयार करने की इजाज़त देते हैं, सिवाय ऐसे मामलों में जब हमारे संघ की आम नीति का उल्लंघन होता हो।

इसलिए सहबंध की शाखाओं को अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर संघ की शाखाओं में परिवर्तित करने की राह में कोई अड़चन नहीं है।

यदि **सहबंध के विघटन तथा उसकी शाखाओं के इंटरनेशनल में प्रवेश** का प्रश्न एक बार तय हो जाता है तो हमारे अधिनियमों के अनुसार **प्रत्येक नयी शाखा के स्थान तथा उसकी सदस्य संख्या के बारे में कौंसिल को सूचित करना** आवश्यक हो जायेगा।

६ मार्च १८६९ को जनरल कौंसिल की बैठक

सहबंध द्वारा ये शर्तें स्वीकार किये जा चुकने के बाद उसे जनरल कौंसिल ने, जो बकूनिन के कार्यक्रम पर किये गये कुछ दस्तख़तों से गुमराह हो गयी थी, इंटरनेशनल में भर्ती कर लिया, वह यह समझी कि जेनेवा स्थित रोमांस फ़ेडरल कमेटी ने सहबंध को मान्यता दे दी है हालांकि इसके विपरीत उसने उससे कभी कोई सरोकार रखने से हमेशा इन्कार किया। इस तरह सहबंध ने अपने तात्कालिक लक्ष्य, बाज़ेल कांग्रेस में प्रतिनिधित्व पाने के लक्ष्य को पूरा कर डाला। बकूनिन के समर्थकों द्वारा इस्तेमाल किये गये बेईमानीभरे हथकंडों, इंटरनेशनल की किसी कांग्रेस में इस तथा एकमात्र इस अवसर पर अपनाये गये इन हथकंडों के बावजूद बकूनिन कांग्रेस से जनरल कौंसिल को जेनेवा में स्थानान्तरित कराने तथा पुश्तैनी अधिकारों के तत्काल उन्मूलन के सेंट-साइमन के पुराने कूड़ा-करकट को, जिसे बकूनिन व्यावहारिक रूप में समाजवाद के लिए प्रस्थान-बिन्दु मानते थे, अधिकृत मान्यता दिलाने की अपनी प्रत्याशा में मात खा गये। यह जनरल कौंसिल के ही विरुद्ध नहीं, वरन् इंटरनेशनल की उन तमाम शाखाओं के विरुद्ध, जिन्होंने इस संकीर्णतावादी गुट के कार्यक्रम को, विशेष रूप से राजनीति से पूर्ण विरति के सिद्धान्त को स्वीकृति देने से इन्कार कर दिया था, खुले तथा अनवरत युद्ध का संकेत था।

बाज़ेल कांग्रेस से भी पहले जब नेचायेव जेनेवा पहुंचे थे, बकूनिन उनके साथ सम्पर्क में आये तथा उन्होंने रूस में छात्रों के बीच एक गुप्त संस्था बनायी

समाजवादी जनवाद के
अन्तर्राष्ट्रीय सहबंध की केन्द्रीय समिति को
जनरल कौंसल की ओर से

हमारी नियमावली की धारा १ के अनुसार संघ एक ही लक्ष्य के लिए – यानी **पारस्परिक सुरक्षा, मजदूर वर्ग की प्रगति तथा पूर्ण मुक्ति के लिए** काम करनेवाली मज़दूर वर्ग की तमाम संस्थाओं को सदस्य बनाती है।

हर देश में मज़दूर वर्ग के भाग अपने को विकास की विभिन्न अवस्थाओं में पाते हैं, इससे स्वभावतया यह निष्कर्ष निकलता है कि उनकी सैद्धान्तिक रायें भी, जो वास्तविक आन्दोलन को प्रतिबिम्बित करती हैं, भिन्न-भिन्न होनी चाहिए।

परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर संघ द्वारा स्थापित एकसमान कार्यकलाप, विचार-विनिमय, जिन्हें विभिन्न राष्ट्रीय शाखाओं के मुखपत्रों ने सुगम बनाया है, तथा अन्ततः जनरल कांग्रेसों में सीधी बहसें एकसमान सैद्धान्तिक कार्यक्रम को यक़ीनन जन्म देंगी।

फलस्वरूप **सहबंध के कार्यक्रम की समीक्षात्मक जांच-परख करना** जनरल कौंसिल का काम नहीं है। हमें इस बात की जांच-परख नहीं करनी है कि यह सर्वहारा आन्दोलन की पर्याप्त अभिव्यक्ति है या नहीं। हमें तो बस इतना सिद्ध करना है कि उसमें कोई ऐसी चीज़ तो नहीं है जो हमारे संघ की **आम प्रवृत्ति** के, अर्थात् **मजदूर वर्ग की पूर्ण मुक्ति** के विरुद्ध हो। आपके कार्यक्रम में एक वाक्य इस अपेक्षा की पूर्ति नहीं करती। धारा २ में कहा गया है –

"उसका" (सहबंध का) "लक्ष्य सर्वोपरि **वर्गों का राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक समताकरण** है"।

वर्गों के समताकरण की यदि शाब्दिक रूप में परिभाषा की जाये तो उसका यह मतलब निकलता है – **पूंजी तथा श्रम के बीच सामंजस्य**, जिसका पूंजीवादी समाजवादी इतने आग्रहपूर्वक प्रचार करते रहते हैं। तर्कसंगति की दृष्टि से असम्भव **वर्गों का समताकरण नहीं**, वरन, इसके विपरीत, **वर्गों का उन्मूलन**, – यह है सर्वहारा आन्दोलन का सच्चा रहस्य, **अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर संघ** का महान ध्येय।

फिर भी इस प्रसंग को ध्यान में रखते हुए, जिसमें **वर्गों का समताकरण** शब्द इस्तेमाल किये गये हैं, ऐसे प्रतीत होता है कि यह महज़ लेखनी की भूल

जनरल कौंसिल को नियमावली अथवा अधिनियमों की किसी ऐसी धारा की जानकारी नहीं है जो उसे *«Égalité»* के साथ वाद-विवाद में पड़ने अथवा अख़बारों में छपनेवाले "प्रश्नों के उत्तर" देने के लिए मजबूर करती हो। जनरल कौंसिल के समक्ष रोमांस स्विट्ज़रलैंड की शाखाओं का केवल जेनेवा स्थित फ़ेडरल कमेटी ही प्रतिनिधित्व कर सकती है। फ़ेडरल कमेटी यदि एकमात्र वैध माध्यम से, अर्थात् अपने सचिव के ज़रिए हमसे कोई अनुरोध करे या हमें झिड़की दे तो जनरल कौंसिल उत्तर देने के लिए सदैव तैयार रहेगी। परन्तु फ़ेडरल कमेटी को इसका कोई हक नहीं है कि वह *«Égalité»* अथवा *«Progrès»* के हक़ में अपने दायित्व का परित्याग करे अथवा इन अख़बारों को अपने दायित्व हड़पने की इजाज़त दे। आम तौर पर राष्ट्रीय तथा स्थानीय समितियों के साथ जनरल कौंसिल का पत्र-व्यवहार संघ के आम हितों को आंच पहुंचाये बिना प्रकाशित नहीं किया जा सकता। फलस्वरूप यदि इंटरनेशनल के दूसरे मुखपत्र *«Progrès»* और *«Égalité»* के उदाहरणों का अनुकरण करेंगे तो जनरल कौंसिल के सामने दो ही विकल्प रह जायेंगे—मौन साधकर या तो अपने को सार्वजनिक रूप से बदनाम करे अथवा सार्वजनिक रूप से उत्तर देकर अपने कर्तव्यों का उल्लंघन करे। उधर *«Égalité»* ने *«Progrès»* के साथ मिलकर पेरिस के अख़बार *«Travail»*[19] को अपनी ओर से जनरल कौंसिल की भर्त्सना करने के लिए आमंत्रित किया। इस चीज़ ने उसे सार्वजनिक कल्याण लीग[20] के अनुरूप बना डाला है।

इस बीच रोमांस फ़ेडरल कमेटी ने परिपत्र पढ़ने से पहले ही सहबंध के समर्थकों को *«Égalité»* के सम्पादकमंडल से बाहर निकाल दिया।

२२ दिसम्बर १८६८ तथा ९ मार्च १८६९ के परिपत्रों की ही तरह १ जनवरी १८७० के परिपत्र को इंटरनेशनल की समस्त शाखाओं की स्वीकृति प्राप्त हो गयी।

यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि सहबंध द्वारा स्वीकार की गयी शर्तों में से कोई भी पूरी नहीं की गयी है। उसकी कल्पित शाखाएं जनरल कौंसिल के लिए रहस्य बनी हुई हैं। बकूनिन ने स्पेन तथा इटली में बिखरे पड़े चन्द ग्रूपों तथा नेपल्स की शाखा को, जिसे उन्होंने इंटरनेशनल से पृथक कर दिया था, अपने मातहत रखने का प्रयास किया। दूसरे इतालवी शहरों में उन्होंने मज़दूरों के नहीं, वरन् वकीलों, पत्रकारों तथा अन्य पूंजीवादी मतवादियों के छोटे-छोटे गुटों के साथ सम्बन्ध स्थापित किया। बार्सेलोना में उनके चन्द दोस्तों

ने उनके प्रभाव को क़ायम रखा। दक्षिणी फ़्रांस के कुछ शहरों में सहबंध ने लियों के अल्बेर रिशार तथा गास्पर ब्लां के नेतृत्व में, जिनके बारे में हम आगे चलकर काफ़ी कुछ कहेंगे, पृथकतावादी शाखाएं स्थापित करने का प्रयास किया। कहने का मतलब यह है कि इंटरनेशनल के अन्तर्गत एक अन्तर्राष्ट्रीय सोसायटी काम करती रही।

सहबंध एक निर्णायक प्रहार – रोमांस स्विट्ज़रलैंड शाखा के नेतृत्व को सम्भालने का प्रयत्न – शो-दे-फ़ोन में हुई कांग्रेस में करने जा रहा था जो ४ अप्रैल १८७० को आरम्भ हुई।

संघर्ष सहबंध के डेलीगेटों के प्रवेश के अधिकार पर शुरू हुआ जिसका जेनेवा फ़ेडरेशन तथा शो-दे-फ़ोन की शाखाओं के डेलीगेटों ने विरोध किया।

स्वयं सहबंध के समर्थकों के अनुमान के अनुसार वे फ़ेडरेशन के सदस्यों के पांचवें हिस्से से अधिक का प्रतिनिधित्व नहीं करते थे, फिर भी वे बाज़ेल में की गयी तिकड़मों की पुनरावृत्ति की बदौलत एक या दो मतों से बहुमत प्राप्त करने में सफल हो गये। यह बहुमत स्वयं उनके मुखपत्र के अनुसार (७ मई १८७० के «*Solidaritè*»[21] का अंक देखें) **पन्द्रह** शाखाओं से अधिक का प्रतिनिधित्व नहीं करता था जबकि अकेले जेनेवा में वे तीस थे! इस मतदान के फलस्वरूप रोमांस कांग्रेस दो भागों में बंट गयी जिन्होंने स्वतंत्र रूप में अपनी बैठकें जारी रखीं। सहबंध के समर्थकों ने अपने को पूरे फ़ेडरेशन का प्रतिनिधि मानते हुए फ़ेडरल कमेटी का कार्यालय शो-दे-फ़ोन में स्थानान्तरित कर दिया तथा नेव्शातेल में अपना अधिकृत मुखपत्र «*Solidarité*» चालू किया जिसका सम्पादन नागरिक गिलोम कर रहे थे। इस नौजवान लेखक का विशेष कार्य जेनेवा के "कारख़ाने" के मज़दूरों[22] की, इन घिनौने "पूंजीपतियों" की निन्दा करना, फ़ेडरेशन के अख़बार «*Égalité*» के विरुद्ध संघर्ष चलाना तथा राजनीति से पूर्ण विरति की वकालत करना था। इस विषय पर सबसे महत्वपूर्ण लेखक थे मार्सेल में बास्तेलिका तथा लियों में सहबंध के दो बड़े स्तम्भ – अल्बेर रिशार तथा गास्पर ब्लां।

जेनेवा के डेलीगेटों ने वापस लौटने पर अपनी शाखाओं की एक आम सभा बुलायी जिसने शो-दे-फ़ोन में उनके कार्यों को बकूनिन और उनके दोस्तों के विरोध के बावजूद अनुमोदित किया। कुछ समय बाद बकूनिन तथा उनके अधिक सक्रिय अनुयायियों को पुराने रोमांस फ़ेडरेशन से बाहर निकाल दिया गया।

कांग्रेस ख़त्म हुई भी नहीं थी कि नयी शो-दे-फ़ोन समिति ने सचिव एफ़० रोबर्ट तथा अध्यक्ष आंरी शेवाले के – इस व्यक्ति को दो माह बाद समिति के

मुखपत्र «*Solidarité*» ने अपने ६ जुलाई के अंक में **चोर** बताकर उसकी भर्त्सना की थी – हस्ताक्षर से एक पत्र भेजकर जनरल कौंसिल से हस्तक्षेप करने के लिए कहा। दोनों पक्षों के मामलें की जांच करने के बाद जनरल कौंसिल ने २८ जून १८७० को निर्णय किया कि जेनेवा फ़ेडरल कमेटी को अपने पुराने काम पर रहने दिया जाये तथा नयी शो-दे-फ़ोन समिति को अपना कोई स्थानीय नाम रखने के लिए कहा जाये। इस निर्णय से अपनी योजनाएं बिफल हो जाते देखकर शो-दे-फ़ोन समिति ने जनरल कौंसिल पर **सत्तावादी** होने का आरोप लगाया, यह भूलते हुए कि उसने ही उसके हस्तक्षेप की **मांग** की थी। रोमांस फ़ेडरल कमेटी का नाम हड़पने के लिए शो-दे-फ़ोन समिति ने निरन्तर प्रयत्न कर स्विस फ़ेडरेशन के लिए जो मुसीबतें पैदा कीं, उन्होंने जनरल कौंसिल को शो-दे-फ़ोन समिति के साथ सारे सम्बन्ध भंग करने के लिए विवश किया था।

लूई बोनापार्त ने ज़रा देर पहले सेदान में[23] अपनी सेना समेत आत्मसमर्पण किया था। चारों ओर से इंटरनेशनल के सदस्यों की ओर से युद्ध जारी रखे जाने के विरुद्ध आवाज़ उठायी गयी। जनरल कौंसिल ने ९ सितम्बर* की अपनी चिट्ठी में प्रशा की क़ब्ज़ाकारी योजनाओं का पर्दाफ़ाश करते हुए उसकी विजय से सर्वहारा ध्येय के लिए पैदा होनेवाले ख़तरे की ओर संकेत किया था और जर्मन मज़दूरों को आगाह किया था कि वे ही इसके सबसे पहले शिकार बनेंगे। इंगलैंड में जनरल कौंसिल ने **सभाएं** आयोजित कीं जिन्होंने राज-दरबार में प्रशा-पोषक प्रवृत्तियों की भर्त्सना की। जर्मनी में मज़दूरों ने – इंटरनेशनल के सदस्यों ने – प्रदर्शन संगठित किये जिनमें जनतंत्र को मान्यता देने तथा "फ़्रांस के लिए सम्मानजनक शान्ति" स्थापित करने की मांग की गयी...

इस बीच अपने उग्र स्वभाव के कारण सिरफिरे गिलोम के (नेव्शातेल के) दिमाग़ में यह शानदार विचार पैदा हुआ कि आधिकारिक समाचारपत्र «*Solidarité*» में परिशिष्ट के रूप में और उसकी आड़ में[24] एक **गुमनाम** घोषणापत्र प्रकाशित किया जाये, जिसमें प्रशियाइयों से लड़ने के लिए स्विस स्वयंसेवक टुकड़ियां तैयार करने का आह्वान किया जाये; यह कुछ ऐसा काम था जिसे उसकी विरतिवादी आस्थाओं ने उसे निस्सन्देह कभी पूरा नहीं करने दिया।

लियों में विद्रोह भड़क उठा।[25] बकूनिन फ़ौरन वहां पहुंचे और अल्बेर रिशार, गास्पर ब्लां तथा बास्तेलिका की मदद से उन्होंने २८ सितम्बर को टाउन हाल

---

* देखें प्रस्तुत संस्करण, खण्ड २, भाग १। – **सं०**

में अपने को प्रतिष्ठापित कर दिया, परन्तु यह सोचकर वहां कोई सन्तरी तैनात नहीं किया कि कहीं इसको राजनीतिक कार्रवाई न मान लिया जाये। उन्हें राष्ट्रीय गार्ड के कुछ सैनिकों ने ठीक ऐसे समय अपमानजनक ढंग से बाहर निकाल दिया जब **राज्य के उन्मूलन**-सम्बन्धी उनकी आज्ञप्ति घोर प्रसव-वेदना के बाद पैदा ही हुई थी।

अक्तूबर १८७० को जनरल कौंसिल ने अपने फ़्रांसीसी सदस्यों की अनुपस्थिति के कारण नागरिक पाल राबिन को सदस्य सहयोजित किया, जो ब्रेस्त से आया हुआ उत्प्रवासी, सहबंध का एक सबसे अधिक सुविदित समर्थक और यही नहीं, *«Égalité»* में जनरल कौंसिल पर कई प्रहारों का प्रणेता था। इसी समय से वह निरन्तर शो-दे-फ़ोन समिति के अधिकृत सम्वाददाता के रूप में काम करता रहा। उसने १४ मार्च १८७१ को सुझाव रखा कि स्विस झगड़े को निपटाने के लिए इंटरनेशनल की एक गुप्त कांग्रेस बुलायी जाये। कौंसिल ने पेरिस में आसन्न महत्वपूर्ण घटनाओं को पहले ही देखते हुए कांग्रेस बुलाने से साफ़ इन्कार कर दिया। राबिन ने यह सवाल बार-बार उठाया और यहां तक सुझाव दिया कि कौंसिल झगड़े के बारे में कोई निश्चित फ़ैसला करे। जनरल कौंसिल ने २५ जुलाई को तय किया कि यह मामला सितम्बर १८७१ को आयोजित होनेवाले सम्मेलन में विचारणीय प्रश्नों में से एक होगा।

सहबंध ने, जो सम्मेलन द्वारा अपनी गतिविधियों की जांच किये जाने के लिए क़तई तैयार नहीं था, १० अगस्त को घोषणा की कि वह ६ अगस्त से विघटित हो चुका है। परन्तु १५ सितम्बर को वह फिर प्रकट हो गया और उसने **निरीश्वरवादी समाजवादी शाखा** के नाम से कौंसिल में प्रवेश के लिए अनुरोध किया। बाज़ेल कांग्रेस के प्रशासनिक प्रस्ताव संख्या ५ के अनुसार कौंसिल उसे जेनेवा फ़ेडरल कमेटी से, जो संकीर्णतावादी शाखाओं के विरुद्ध दो वर्ष के संघर्ष के बाद थक चुकी थी, परामर्श किये बिना प्रवेश की अनुमति नहीं दे सकती थी। यही नहीं, कौंसिल यंगमैन्स क्रिश्चियन असोसियेशन को पहले ही बता चुकी थी कि इंटरनेशनल धर्मशास्त्र-सम्बन्धी शाखाओं को मान्यता नहीं देती।

६ अगस्त को, जिस दिन सहबंध विघटित हुआ था, शो-दे-फ़ोन फ़ेडरल कमेटी ने कौंसिल के साथ आधिकारिक सम्बन्ध स्थापित करने के लिए फिर से अनुरोध किया और कहा कि वह २८ जून के प्रस्ताव को नज़रअंदाज़ करती रहेगी, जेनेवा के सम्बन्ध में अपने को रोमांस फ़ेडरल कमेटी मानती रहेगी और "इस मामले पर फ़ैसला देना जनरल कांग्रेस का काम है।" ४ सितम्बर को उसी कमेटी ने

सम्मेलन की अधिकार-क्षमता पर आपत्ति की हालांकि उसी ने सबसे पहले उसे बुलाने का प्रश्न उठाया था। सम्मेलन पेरिस फ़ेडरल कमेटी की अधिकार क्षमता पर, जिससे पेरिस की घेराबन्दी से पहले शो-दे-फ़ोन कमेटी ने स्विस झगड़े में हस्तक्षेप करने के लिए कहा था, आपत्ति कर उत्तर दे सकती थी।[26] परन्तु उसने अपने को जनरल कौंसिल के २८ जून १८७० के निर्णय तक सीमित रखा (देखें जेनेवा के *«Égalité»* के २१ अक्तूबर १८७१ के अंक में प्रतिपादित प्रयोजन)।

३

स्विट्ज़रलैंड में चन्द फ़्रांसीसी उत्प्रवासियों की, जिन्होंने वहां शरण ली थी, उपस्थिति ने सहबंध में फिर से कुछ जीवन संचारित कर दिया था।

इंटरनेशनल के जेनेवा सदस्यों ने उत्प्रवासियों के लिए भरसक सब कुछ किया। उन्होंने शुरू से ही उनकी मदद की, एक व्यापक अभियान शुरू करके स्विट्ज़रलैंड के अधिकारियों को उनका प्रत्यर्पण करने से रोका जिसकी वर्साई सरकार मांग कर रही थी। कुछ लोगों ने उत्प्रवासियों को सीमा पार करने में मदद देने के लिए फ़्रांस जाकर ख़तरा मोल लिया। ज़रा जेनेवा के मज़दूरों के आश्चर्य का अनुमान तो लगाइये जब उन्होंने ब० मालोन * जैसे कई सरगनों को

---

* क्या ब० मालोन के दोस्त जो पिछले तीन माह से घिसे-पिटे ढंग से उसके बारे में यह प्रचार करते रहे हैं कि वह **इंटरनेशनल का संस्थापक** है, जिन्होंने उसकी पुस्तक को[27] **कम्यून के विषय में एकमात्र वस्तुपरक कृति** बताया है, यह जानते हैं कि फ़रवरी चुनावों के ठीक पहले बातिनोल के मेयर के इस सहायक ने क्या रुख़ अपनाया था? उस समय मालोन ने, जिसे अभी कम्यून का पूर्वाभास नहीं हुआ था और जिसे राष्ट्रीय सभा के लिए चुनाव में अपनी सफलता के आगे और कुछ नहीं दिखायी देता था, चार समितियों की सूची में इंटरनेशनल के सदस्य के रूप में अपना नाम शामिल कराने की तिकड़म की थी। इन मन्सूबों को पूरा करने के लिए उसने पेरिस फ़ेडरल कमेटी का अस्तित्व होने का धृष्टतापूर्वक प्रतिवाद किया और कमेटियों के समक्ष एक शाखा की, जिसकी उसने स्वयं बातिनोल में स्थापना की थी—इस तरह एक फ़ेहरिस्त पेश की मानो वह पूरे अन्तर्राष्ट्रीय संघ की ओर से आयी हो।—आगे चलकर १९ मार्च को उसने एक आधिकारिक दस्तावेज़ में एक दिन पहले हुई महान क्रान्ति[28] के नेताओं पर कीचड़ उछाला था। आज ऊपर से नीचे तक अराजकतावादी यह शख़्स उस चीज़ को छाप रहा है या छाप चुका है जो वह चार समितियों से एक साल पहले कह

सहबंध के लोगों के साथ तत्काल सम्पर्क क़ायम करते और सहबंध के भूतपूर्व सचिव न० जुकोव्स्की की मदद से जेनेवा में, रोमांस फ़ेडरेशन के बाहर, नया "समाजवादी क्रान्तिकारी प्रचार तथा कार्रवाई शाखा"[29] क़ायम करने की कोशिश करते हुए देखा। उसकी नियमावली की पहली धारा में कहा गया है कि वह

"अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर संघ की आम नियमावली को स्वीकार करती है, साथ ही **कार्यकलाप** तथा पहल, जिसका वह संघ की नियमावली तथा **कांग्रेसों** द्वारा स्वीकार किये गये स्वायत्तता तथा संघ के सिद्धान्त के तर्कसंगत फल के रूप में हक़दार है, **की पूर्ण स्वतंत्रता अपने लिए आरक्षित रखती है।**

दूसरे शब्दों में वह सहबंध का कार्य जारी रखने की पूर्ण स्वतंत्रता अपने लिए आरक्षित रखती है।

मालोन ने २० अक्तूबर १८७१ को जनरल कौंसिल को एक चिट्ठी भेजी जिसमें इस नयी शाखा ने इंटरनेशनल में प्रवेश के लिए फिर से तीसरी बार अनुरोध किया। बाज़ेल कांग्रेस के प्रस्ताव ५ के अनुसार कौंसिल ने जेनेवा फ़ेडरल कमेटी से परामर्श किया जिसने "तिकड़मों और फूट" के इस नये "अड्डे" को मान्यता दिये जाने का घोर विरोध किया। कौंसिल ने पूरे फ़ेडरेशन को ब० मालोन तथा सहबंध के भूतपूर्व सचिव न० जुकोव्स्की की इच्छा से आबद्ध न कर सचमुच "सत्तावादी" ढंग से काम किया।

«Solidarité» बन्द हो जाने के कारण सहबंध के समर्थकों ने मदाम आन्द्रे लेओ के सर्वोच्च नेतृत्व में *«Révolution Sociale»*[30] की स्थापना की; यह महिला लोसां शान्ति कांग्रेस में कुछ ही समय पहले कह चुकी थीं कि

"राउल रिगो और फ़ेरे कम्यून की दो वीभत्स आकृतियां थे जो तब तक" (बन्धकों को फांसी पर लटकाये जाने तक) "रक्तपातपूर्ण कार्रवाइयों की – यह सच है कि व्यर्थ ही – मांग करते रहे।

कहा था – "इंटरनेशनल – यह तो मैं हूं!" ब० मालोन ने लूई चौदहवें तथा चाकलेट निर्माता पेरों की एकसाथ नक़ल उतारने का रास्ता ढूंढ़ निकाला है। पेरों ही वह व्यक्ति था जिसने कहा था कि उसके चाकलेट **एकमात्र** खाने योग्य चाकलेट हैं।

अख़बार ने अपने पहले ही अंक से अपने को फ़ौरन *«Figaro»*, *«Gaulois»*, *«Paris-Journal»*[31] और अन्य बदनाम पर्चों के स्तर पर पहुंचा दिया जो जनरल कौंसिल पर कीचड़ उछालते आये हैं। उसने समझा कि यह इंटरनेशनल के अन्दर तक राष्ट्रीय घृणा की आग भड़काने का ठीक मौक़ा है। उसने जनरल कौंसिल को बिस्मार्क सदृश दिमाग़ के नेतृत्व में काम करनेवाली जर्मन समिति बताया।*

निश्चयपूर्वक यह सिद्ध कर चुकने के बाद कि जनरल कौंसिल के कतिपय सदस्य "पहले और सर्वोपरि गाल" होने का दावा नहीं कर सकते, *«Révolution Sociale»* यूरोपीय पुलिस द्वारा प्रचलित दूसरे नारे को अपनाने और कौंसिल की **सत्तावादिता** की भर्त्सना करने से बेहतर और कोई चीज़ नहीं कर पाया।

तो फिर वे तथ्य क्या थे जिन पर यह बचकाना बकवास आधारित थी? जनरल कौंसिल ने सहबंध को अपनी मौत मरने दिया और जेनेवा फ़ेडरल कमेटी की सहमति से उसे पुनरुज्जीवित नहीं होने दिया। यही नहीं, उसने शो-दे-फ़ोन कमेटी को एक ऐसा नाम ग्रहण करने की सलाह दी जिसके सहारे वह रोमांस स्विट्ज़रलैंड में इंटरनेशनल के सदस्यों की बहुसंख्या के साथ शान्तिपूर्वक रह सके।

इन "सत्तावादी" कार्रवाइयों के अलावा जनरल कौंसिल ने अक्तूबर १८६९ तथा अक्तूबर १८७१ के बीच बाज़ेल कांग्रेस से प्राप्त काफ़ी व्यापक अधिकारों का क्या उपयोग किया?

१) ८ फ़रवरी १८७० को पेरिस की "प्रत्यक्षवादी सर्वहारा सोसायटी" ने जनरल कौंसिल के समक्ष प्रवेश के लिए अर्ज़ी दी। कौंसिल ने उत्तर दिया कि प्रत्यक्षवादियों के सिद्धान्त, – सोसायटी के विशेष नियमों का पूंजी से सम्बन्धित भाग – आम नियमावली** की प्रस्तावना के सरासर विरुद्ध हैं; कि सोसायटी को इसलिए इन सिद्धान्तों को छोड़ना होगा तथा इंटरनेशनल में "प्रत्यक्षवादियों" के रूप में नहीं, वरन् "सर्वहाराओं" के रूप में शामिल होना होगा; वे अपने सैद्धान्तिक विचारों का संघ के आम सिद्धान्तों के साथ सामंजस्य स्थापित करने के लिए

---

*कौंसिल की राष्ट्रीय संरचना इस प्रकार है – २० अंग्रेज़, १५ फ़्रांसीसी, ७ जर्मन (जिनमें से ५ इंटरनेशनल के संस्थापक हैं), २ स्विस, २ हंगेरियाई, १ पोल, १ बेल्जियन, १ आयरिश, १ डेनिश तथा १ इटालियन।

**देखें प्रस्तुत संस्करण, खण्ड २, भाग १। – सं०

स्वतंत्र होंगे। इस निर्णय का औचित्य मानकर शाखा इंटरनेशनल में शामिल हो गयी।

२) लियों में १८६५ की शाखा तथा हाल में स्थापित उस शाखा में फूट पड़ गयी जिसमें ईमानदार मज़दूरों के साथ सहबंध का प्रतिनिधित्व अल्बेर रिशार तथा गास्पर ब्लां कर रहे थे। जैसा कि ऐसे ही मामलों में पहले भी हो चुका है, स्विट्ज़रलैंड में स्थापित विवाचन-न्यायालय का फ़ैसला ठुकरा दिया गया। १५ फ़रवरी १८७० को हाल में स्थापित शाखा ने जनरल कौंसिल से बाज़ेल कांग्रेस के प्रस्ताव ७ के बल पर झगड़ा निपटाने का अनुरोध ही नहीं किया, बल्कि उसे १८६५ की शाखा के सदस्यों की भर्त्सना करने तथा उन्हें सदस्यता से बाहर रखने के लिए एक तैयार प्रस्ताव भी भेजा और कहा कि वह इस पर हस्ताक्षर कर उसे जवाबी डाक से लौटा दे। कौंसिल ने इस तरह की अभूतपूर्व कार्रवाई की निन्दा की तथा आवश्यक काग़ज़ात पेश करने के लिए कहा। इसी अनुरोध के उत्तर में १८६५ की शाखा ने कहा कि अल्बेर रिशार के विरुद्ध आरोप-पत्र, जिन्हें विवाचन-न्यायालय में पेश किया गया था, बकूनिन के पास हैं और वह उन्हें सौंपने से इन्कार करता है। फलस्वरूप वह जनरल कौंसिल की इच्छा को पूर्णतः पूरा नहीं कर सकती। इस मामले पर ८ मार्च के कौंसिल के निर्णय पर किसी पक्ष की ओर से आपत्ति नहीं हुई।

३) लन्दन में फ़्रांसीसी शाखा, जिसने अपने बीच काफ़ी संदिग्ध लोगों को ले लिया, धीरे-धीरे एक ऐसी अनोखी शेयर संस्था बन गयी जिस पर श्री फ़ेलिक्स प्यात का लगभग पूरा नियंत्रण था। उसने लूई बोनापार्त की हत्या की मांग का आह्वान करनेवाले हानिकारक प्रदर्शन संगठित करने और इंटरनेशनल की आड़ में अपने उपहासास्पद घोषणापत्रों का प्रचार करने के लिए इस संस्था का इस्तेमाल किया। जनरल कौंसिल ने अपने को संघ के मुखपत्रों में यह घोषित करने तक सीमित रखा कि श्री प्यात इंटरनेशनल के सदस्य नहीं हैं और वह उनकी कार्रवाइयों के लिए उत्तरदायी नहीं हो सकती। तब फ़्रांसीसी शाखा ने घोषित किया कि वह न तो जनरल कौंसिल को और न कांग्रेसों को मान्यता देती है; उसने लन्दन की दीवालों पर पोस्टर चिपकाये जिनमें घोषणा की गयी थी कि उसे छोड़कर बाक़ी इंटरनेशनल क्रान्तिविरोधी संस्था है। षड्यंत्र के बहाने, जिसे वस्तुतः पुलिस ने रचा था और जिसे प्यात के घोषणापत्रों ने विश्वसनीय बना दिया था, जनमत संग्रह[32] के ठीक पहले इंटरनेशनल के फ़्रांसीसी सदस्यों की गिरफ़्तारी ने जनरल कौंसिल को *«Marseillaise»* तथा *«Réveil»*[33] में अपने १० मई १८७०

का प्रस्ताव प्रकाशित करने पर मजबूर किया जिसमें घोषणा की गयी थी कि तथाकथित फ़ांसीसी शाखा छो वर्ष से इंटरनेशनल में नहीं है और उसका आन्दोलन पुलिस एजेंटों की करतूत है। पेरिस फ़ेडरल कमेटी की इन्हीं अख़बारों में प्रकाशित घोषणा तथा मुक़दमे के दौरान इंटरनेशनल के पेरिस सदस्यों की घोषणा ने इस क़दम की आवश्यकता की पुष्टि कर दी। इन दोनों घोषणाओं में कौंसिल के प्रस्ताव का ज़िक्र किया गया था। फ़ांसीसी शाखा युद्ध छिड़ने के समय लुप्त हो गयी परन्तु स्विट्ज़रलैंड के सहबंध की तरह वह नये साथियों और अन्य नामों के साथ पुनः लन्दन में प्रकट हो गयी।

कांफ़्रेंस के अन्तिम दिनों में लन्दन में कम्यून के उत्प्रवासियों की "१८७१ की फ़ांसीसी शाखा" की स्थापना हुई जिसमें लगभग ३५ सदस्य शामिल थे। जनरल कौंसिल की पहली "सत्तावादी" कार्रवाई यह थी कि उसने इस शाखा के सचिव गुस्ताव दुरां को फ़ांसीसी पुलिस का जासूस बताकर उसकी भर्त्सना की। हमारे पास जो दस्तावेज़ें हैं, वे पुलिस का यह इरादा साबित करती हैं कि वह पहले दुरां को कांफ़्रेंस में उपस्थित होने और फिर उसे जनरल कौंसिल की सदस्यता हासिल करने में मदद देना चाहती थी। चूंकि नयी शाखा की नियमावली सदस्यों को यह निर्देश देती थी कि वे "जनरल कौंसिल में अपनी शाखा के अलावा और किसी की ओर से नियुक्ति स्वीकार न करें", नागरिक थेइस और बास्तेलिका कौंसिल से पृथक हो गये।

१७ अक्तूबर को शाखा ने अनिवार्य अधिदेशों के साथ अपने दो सदस्य कौंसिल में भेजे—इनमें से एक और कोई नहीं, तोपख़ाना समिति का भूतपूर्व सदस्य श्री शोतार था। कौंसिल ने "१८७१ की शाखा" की नियमावली की जांच किये बिना उसे भर्ती करने से इन्कार कर दिया।* यहां बहस के, जिसे इस नियमावली ने जन्म दिया, सबसे मुख्य मुद्दे की चर्चा करना काफ़ी होगा। उसकी धारा २ में कहा गया है—

---

*कुछ समय बाद इसी शातोर को, जिसे जनरल कौंसिल में रखने का प्रयास किया गया था, थियेर की पुलिस एजेंट बताकर शाखा से निकाल दिया गया। उस पर उन्हीं लोगों ने आरोप लगाया जो दूसरे तमाम लोगों की तुलना में उसे जनरल कौंसिल में अपना प्रतिनिधित्व करने के लिए उपयुक्त पात्र मानते थे।

"शाखा का सदस्य होने के लिए व्यक्ति को अपनी आजीविका के साधनों के बारे में जानकारी देनी होगी, नैतिकता, आदि की गारंटी देनी होगी।"

जनरल कौंसिल ने १७ अक्तूबर १८७१ को अपने प्रस्ताव में सुझाव दिया कि **"अपनी आजीविका के साधनों के बारे में जानकारी देने"** शब्द निकाल दिये जायें।

कौंसिल ने कहा: "संदिग्ध मामलों में कोई शाखा आजीविका के साधनों के बारे में जानकारी को 'नैतिकता की गारंटी' मान सकती है, जबकि दूसरे मामलों में, जैसे उत्प्रवासियों, हड़ताली मजदूरों, आदि के मामले में आजीविका के साधनों का अभाव नैतिकता की गारंटी हो सकता है। परन्तु इंटरनेशनल में प्रवेश के लिए आम शर्त के रूप में अपनी आजीविका के साधनों के बारे में उम्मीदवारों से जानकारी देने की मांग करना पूंजीवादी नवाचार होगा जो आम नियमावली के शब्दों तथा भावना के विपरीत है।" शाखा ने उत्तर दिया –

"आम नियमावली शाखाओं को अपने सदस्यों की नैतिकता के बारे में उत्तरदायी बनाती है और परिणामस्वरूप ऐसी गारंटियां, **जो वे आवश्यक समझें**, मांगने के उनके अधिकार को मान्यता देती है।"

जनरल कौंसिल ने ७ नवम्बर को यह उत्तर दिया –

"इस तर्क के आधार पर इंटरनेशनल की मद्य का सेवन न करनेवालों की कोई भी शाखा अपनी नियमावली में इस तरह की धारा शामिल कर सकती है – शाखा का सदस्य बनने के लिए व्यक्ति को यह शपथ लेनी होगी कि वह सब तरह के मद्यपान से दूर रहेगा। दूसरे शब्दों में शाखाएं अपनी नियमावलियों द्वारा इंटरनेशनल में प्रवेश की सबसे बेतुकी तथा सबसे असंगत शर्तें सदैव इस बहाने से थोप सकती थीं कि वे इस तरह अपने सदस्यों की नैतिकता के विषय में आश्वस्त हों... 'हड़तालियों की आजीविका का साधन' – १८७१ की फ्रांसीसी शाखा आगे कहती है – 'हड़ताल कोष है।' इसका उत्तर यह कहकर दिया जा सकता है कि सर्वप्रथम यह कोष बहुधा कृत्रिम होता है ... इसके अलावा सरकारी आंग्ल प्रश्नावलियों ने साबित किया है कि अंग्रेज मजदूरों की बहुसंख्या... हड़तालों अथवा बेरोज़गारी, अपर्याप्त मज़दूरी अथवा अदायगी की शर्तों की वजह से और साथ ही कई दूसरी वजहों से अनवरत रूप से या तो सामान गिरवी रखने का या

फिर उधार का आश्रय लेती है। ये आजीविका के ऐसे साधन हैं जिनके बारे में किसी से उसके व्यक्तिगत जीवन के बारे में हस्तक्षेप किये बिना जानकारी नहीं मांगी जा सकती। इस तरह दो विकल्प रह जाते हैं—या तो शाखा आजीविका के साधनों के ज़रिए केवल नैतिकता की गारंटियां हासिल करे—ऐसी स्थिति में जनरल कौंसिल का प्रस्ताव इस उद्देश्य की पूर्ति करता है... अथवा शाखा अपनी नियमावली की धारा २ में जानबूझकर यह कहती है कि सदस्यों को नैतिकता की गारंटियों **के अलावा** भी प्रवेश की शर्त के रूप में अपनी आजीविका के साधनों की जानकारी देनी होगी... ऐसी स्थिति में जनरल कौंसिल दृढ़तापूर्वक कहती है कि यह पूंजीवादी नवाचार है जो आम नियमावली के शब्दों तथा भावना के विपरीत है।"*

उनकी नियमावली की धारा ११ में कहा गया है—

"एक या अनेक डेलीगेट जनरल कौंसिल को भेजे जायेंगे।"

कौंसिल ने यह धारा हटाने के लिए कहा "क्योंकि इंटरनेशनल की आम नियमावली जनरल कौंसिल को डेलीगेट भेजने के शाखाओं के अधिकार को स्वीकार नहीं करती।" उसने आगे कहा—"आम नियमावली जनरल कौंसिल के सदस्यों के चुनाव के केवल दो तरीक़ों को मान्यता देती है—या तो उनका चुनाव कांग्रेस द्वारा हो अथवा उनका सहयोजन जनरल कौंसिल द्वारा किया जाये..."

यह सच है कि लन्दन स्थित कई शाखाएं जनरल कौंसिल को डेलीगेट भेजने के लिए आमंत्रित की गयी थीं; जनरल कौंसिल इस बात को ध्यान में रखते हुए कि आम नियमावली का उल्लंघन न हो, हमेशा निम्नलिखित ढंग से काम करती थी—वह पहले प्रत्येक शाखा द्वारा भेजे जानेवाले डेलीगेटों की संख्या निर्धारित कर लेती थी, ऐसा करते समय वह उन्हें स्वीकार या अस्वीकार करने का अधिकार अपने पास आरक्षित रखती थी, यह चीज़ इस बात पर निर्भर करती थी कि जनरल कौंसिल उन्हें सौंपे जानेवाले आम कार्यों को पूरा करने के योग्य समझती है या नहीं। ये डेलीगेट अपनी शाखाओं द्वारा नामज़दगी के बल पर जनरल कौंसिल के सदस्य नहीं बनते थे। वे इस अधिकार के बल पर सदस्य बनते

---

*कार्ल मार्क्स, '१८७१ की फ़्रांसीसी शाखा के विषय में जनरल कौंसिल के प्रस्ताव का मसौदा'।—सं०

थे कि आम नियमावली कौंसिल को नये सदस्य सहयोजित करने का अधिकार देती थी। अन्तर्राष्ट्रीय संघ की जनरल कौंसिल तथा इंगलैंड की केन्द्रीय कौंसिल के रूप में पिछली कांफ्रेंस में किये गये फ़ैसले पर काम कर चुकने तक लन्दन कौंसिल ने सीधे सहयोजित सदस्यों के अलावा उन सदस्यों को भी भर्ती करने का निर्णय किया जिन्हें आरम्भ में उनकी अपनी शाखाओं ने नामज़द करना उचित समझा था। जनरल कौंसिल की निर्वाचन कार्यपद्धति और पेरिस फ़ेडरल कौंसिल की, जो उदाहरण के लिए ब्रसेल्स फ़ेडरल कौंसिल अथवा मैड्रिड फ़ेडरल कौंसिल की तरह की राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा नामज़द राष्ट्रीय कौंसिल तक नहीं थी, निर्वाचन कार्यपद्धति को एक जैसा मान बैठना भूल होगी। पेरिस फ़ेडरल कौंसिल तो पेरिस शाखाओं का एक प्रतिनिधिमंडल मात्र थी... जनरल कौंसिल की निर्वाचन कार्यपद्धति की आम नियमावली में परिभाषा की गयी है... और उसके सदस्यों के लिए नियमावली तथा आम अधिनियमों के अलावा और कोई अनिवार्य अधिदेश विद्यमान नहीं है... यदि हम इससे पहले की धारा पर ग़ौर करें तो पता चलेगा कि धारा ११ का अर्थ जनरल कौंसिल के गठन के पूर्ण परिवर्तन के अलावा और कुछ नहीं है, वह उसे आम नियमावली की धारा ३ के विपरीत लन्दन शाखाओं का प्रतिनिधिमंडल बना देती है जिसमें स्थानीय समूहों का प्रभाव पूरे अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर संघ के प्रभाव का स्थान ले लेगा। आख़िरी चीज़, जनरल कौंसिल ने, जिसका पहला कर्त्तव्य कांग्रेसों के प्रस्तावों का कार्यान्वयन है (देखें जेनेवा प्रशासनिक अधिनियमों की धारा १), घोषित किया कि वह "यह मानती है कि जनरल कौंसिल के गठन के सम्बन्ध में आम नियमावली की धाराओं में मूल परिवर्तन लाने के विषय में १८७१ की फ़्रांसीसी शाखा द्वारा अभिव्यक्त विचारों का इस प्रश्न से कोई सरोकार नहीं है..."

इसके अलावा कौंसिल ने घोषित किया कि वह इस शाखा के दो प्रतिनिधियों को उन्हीं शर्तों पर कौंसिल में प्रवेश करने देगी जो लन्दन की अन्य शाखाओं के लिए रखी गयी हैं।

"१८७१ की शाखा" ने इस उत्तर से क़तई सन्तुष्ट न होकर १४ दिसम्बर को एक "घोषणापत्र" प्रकाशित किया, जिस पर उसके नये सचिव समेत, जिसे शीघ्र ही उत्प्रवासियों के समूह से बदमाश बताकर निकाल दिया गया, तमाम सदस्यों के हस्ताक्षर थे। इस घोषणा के अनुसार जनरल कौंसिल पर आरोप लगाया गया कि उसने विधायी कार्य ग्रहण न कर "सामाजिक विचार को बुरी तरह तोड़ा-मरोड़ा" है।

इस दस्तावेज़ को तैयार करने में जिस नेकनीयती का परिचय दिया गया, उसकी चन्द मिसालें ये रहीं।

लन्दन कांफ़्रेंस ने युद्ध के समय जर्मन मज़दूरों के आचरण का अनुमोदन किया था। यह सर्वथा स्पष्ट था कि एक स्विस डेलीगेट* द्वारा प्रस्तुत, एक बेल्जियन डेलीगेट द्वारा अनुमोदित तथा सर्वसम्मत्ति से स्वीकृत इस प्रस्ताव में इंटरनेशनल के जर्मन सदस्यों का ही ज़िक्र किया गया था जो युद्ध के समय अपने अंधराष्ट्रवादविरोधी आचरण की क़ीमत जेलों में रहकर चुका रहे थे और अब भी चुका रहे हैं। यही नहीं, किसी ग़लत परिभाषा की सम्भावना रोकने के लिए जनरल कौंसिल के फ़ांस-सम्बन्धी सचिव** ने *«Qui Vive!»*, *«Constitution»*, *«Radical»*, *«Emancipation»*, *«Europe»*, आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित एक पत्र में प्रस्ताव के वास्तविक अर्थ पर अभी-अभी प्रकाश डाला था। इसके बावजूद "१८७१ की फ़ांसीसी शाखा" के पन्द्रह सदस्यों ने आठ दिन बाद, २० नवम्बर १८७१ को *«Qui Vive!»* में जर्मन मज़दूरों के विरुद्ध अपशब्दों से भरा एक "विरोध-पत्र" प्रकाशित कराया। उसमें कांफ़्रेंस के प्रस्ताव को जनरल कौंसिल के "सर्वजर्मनवादी विचार" का अकाट्य प्रमाण बताकर उसकी भर्त्सना की गयी थी। दूसरी ओर, जर्मनी के सामन्तों, उदारतावादियों तथा पुलिस के सारे अख़बारों ने इस घटना का जर्मन मज़दूरों के सामने यह साबित करने के लिए उपयोग किया कि उनके अन्तर्राष्ट्रीय सपनों पर किस तरह पानी फिर गया है। अन्ततः १८७१ की पूरी शाखा ने अपने १४ दिसम्बर के घोषणापत्र में २० नवम्बर के विरोध-पत्र को अनुमोदित कर दिया।

"जनरल कौंसिल सत्तावादिता की जिस ख़तरनाक ढलान में नीचे खिसकती जा रही थी", उसे साबित करने के लिए घोषणापत्र ने "उसी **जनरल कौंसिल** द्वारा आम नियमावली के **स्वयं उस द्वारा संशोधित आधिकारिक** प्रकाशन" का हवाला दिया।

यह देखने के लिए नयी नियमावली पर एक नज़र डालना पर्याप्त है कि प्रत्येक नयी धारा के साथ एक परिशिष्ट है जिसमें उसकी प्रामाणिकता सिद्ध करनेवाले मूल स्रोतों का हवाला दिया गया है! जहां तक "**आधिकारिक** प्रकाशन" शब्दों का सम्बन्ध है, इंटरनेशनल की पहली कांग्रेस ने तय किया था कि नियमावली

---

* निकोलाई उतिन। – **सं०**

** अगस्त सेरॉइये। – **सं०**

तथा अधिनियमों का **"आधिकारिक तथा अनिवार्य"** पाठ जनरल कौंसिल द्वारा प्रकाशित किया जायेगा (देखें "अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर संघ की ३ सितम्बर से ८ सितम्बर १८६६ तक जेनेवा में हुई कार्यकारी कांग्रेस, पृष्ठ २७, टिप्पणी")।

यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि १८७१ की शाखा का जेनेवा और नेवशातेल में असहमतिवादियों से निरन्तर सम्पर्क था। शालें नामक एक सदस्य को, जिसने जनरल कौंसिल पर प्रहार करने में जितने ओज का परिचय दिया, उतना उसने कम्यून की रक्षा के समय कभी प्रदर्शित नहीं किया था, ब० मालोन ने अप्रत्याशित रूप से पुनः प्रतिष्ठित कर दिया हालांकि मालोन कुछ ही समय पहले कौंसिल के एक सदस्य के नाम चिट्ठी में शालें के विरुद्ध गम्भीर आरोप लगा चुके थे। परन्तु "१८७१ की फ़्रांसीसी शाखा" अपना घोषणापत्र जारी कर भी नहीं पाया कि उसकी क़तारों में गृहयुद्ध छिड़ गया। पहले थेइस, आवरियाल और कामेलिना अलग हुए। उसके बाद शाखा कई छोटे-छोटे समूहों में बंट गयी, जिनमें से एक के नेता श्री पियेर वेज़िन्ये थे जिन्हें वार्लिन तथा दूसरों पर कीचड़ उछालने के लिए पहले जनरल कौंसिल से बाहर निकाला जा चुका था तथा बाद में १८६८ की ब्रसेल्स कांग्रेस द्वारा नियुक्त बेल्जियन आयोग द्वारा इंटरनेशनल से निष्कासित कर दिया गया था। एक अन्य समूह ब० लांदेक द्वारा स्थापित किया गया था जिन्हें पुलिस प्रीफ़ेक्ट पियेत्री के एकाएक भाग जाने के कारण अपने दायित्व से मुक्त कर दिया गया था जिसकी वह

"ईमानदारी से पूर्ति कर रहा था, यानी वह आगे **राजनीति** में अथवा फ़्रांस के इंटरनेशनल-संबंधी मामलों में हिस्सा न ले!" (देखें 'पेरिस में अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर संघ का तीसरा मुक़दमा', १८७०, पृष्ठ ४)।

दूसरी ओर लन्दन में फ़्रांसीसी उत्प्रवासियों की बहुत बड़ी संख्या ने एक शाखा स्थापित की जिसका जनरल कौंसिल से पूरा तालमेल था।

४

सहबंध के लोगों ने, जो नेवशातेल फ़ेडरल कमेटी के पीछे छुपे हुए थे और इंटरनेशनल को विशृंखलित करने के लिए कहीं बड़े पैमाने पर एक और प्रयत्न करने के वास्ते कृतसंकल्प थे, १२ नवम्बर १८७१ को सोनविले में अपनी शाखाओं

की कांग्रेस आयोजित की। उनके अगुवा गिलोम ने अपने मित्र राबिन के नाम दो चिट्ठियों में जुलाई में ही जनरल कौंसिल को धमकी दे दी थी कि यदि वह "जेनेवा के डाकुओं के मुक़ाबले में" उन्हें सही नहीं मानेगी तो उसके विरुद्ध इस तरह का अभियान शुरू कर दिया जायेगा।

सोनविले कांग्रेस सोलह डेलीगेटों को लेकर बनी थी जो जेनेवा की नयी "समाजवादी क्रान्तिकारी प्रचार तथा कार्रवाई शाखा" समेत कुल मिलाकर नौ शाखाओं का प्रतिनिधि होने का दावा कर रहे थे।

सोलह ने अपना काम अराजकतावादी आज्ञप्ति प्रकाशित कर प्रारम्भ किया जिसमें रोमांस फ़ेडरेशन के विघटन की घोषणा की गयी। उधर रोमांस फ़ेडरेशन ने सहबंध के सदस्यों को तमाम शाखाओं से बाहर निकालकर और इस तरह उन्हें "स्वायत्तता" दिलाकर बदला लिया। परन्तु कौंसिल को यह स्वीकार करना पड़ा कि उन्होंने सद्बुद्धि प्राप्त हो जाने के कारण लन्दन कांफ़्रेंस द्वारा दिया गया जूरा फ़ेडरेशन नाम स्वीकार कर लिया।

इसके बाद सोलह की कांग्रेस ने "अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर संघ के तमाम फ़ेडरेशनों के नाम एक परिपत्र" में कांफ़्रेंस तथा जनरल कौंसिल पर प्रहार कर इंटरनेशनल का "पुनर्गठन" आरम्भ कर दिया।

परिपत्र के लेखकों ने जनरल कौंसिल पर मुख्यतया यह आरोप लगाया कि उसने १८७१ में कांग्रेस की जगह कांफ़्रेंस बुलायी। पहले दी गयी कैफ़ीयत से पता चलता है कि ये प्रहार सीधे पूरे इंटरनेशनल के विरुद्ध लक्षित थे जो सर्वसम्मति से कांफ़्रेंस आयोजित करने के लिए सहमत हो गया था, प्रसंगवश इस कांफ़्रेंस में नागरिक राबिन तथा बास्तेलिका सहबंध का समुचित प्रतिनिधित्व कर रहे थे। प्रत्येक कांग्रेस में जनरल कौंसिल के अपने प्रतिनिधि थे; उदाहरण के लिए बाज़ेल कांग्रेस में वे छः थे। सोलह तो दावा करते हैं कि

"निर्णायक वोट वाले जनरल कौंसिल के छः डेलीगेटों के प्रवेश द्वारा कांफ़्रेंस का बहुमत पहले ही धोखाधड़ी से सुनिश्चित कर दिया गया था।"

वस्तुतः कांफ़्रेंस में जनरल कौंसिल के डेलीगेटों के बीच फ़्रांसीसी उत्प्रवासी और कोई नहीं, पेरिस कम्यून के प्रतिनिधि थे जबकि उसके अंग्रेज़ तथा स्विस सदस्य विरले मौक़ों पर ही अधिवेशनों में भाग ले सकते थे, जिसकी पुष्टि कार्यवृत्तों से हो जाती है जो अगली कांग्रेस के समक्ष प्रस्तुत किये जायेंगे। कौंसिल

के एक डेलीगेट के पास एक राष्ट्रीय फ़ेडरेशन का अधिदेश प्राप्त था। कांफ़ेंस के नाम एक चिट्ठी के अनुसार एक दूसरे व्यक्ति का अधिदेश इसलिए रोक लिया गया था कि अख़बारों में उसकी मृत्यु का समाचार छप चुका था।* रह गया एक डेलीगेट। इस प्रकार अकेले बेल्जियम के डेलीगेटों और कौंसिल के डेलीगेटों का अनुपात ६ : १ था।

अन्तर्राष्ट्रीय पुलिस ने, जो गुस्ताव दुरां के रूप में कांफ़ेंस में नहीं घुस सकी, "गुप्त" कांफ़ेंस का आयोजन कर आम नियमावली का उल्लंघन किये जाने की कटुतापूर्वक शिकायत की। वह हमारे आम अधिनियमों से इतनी परिचित नहीं थी कि उसे पता होता कि कांग्रेस की प्रशासनिक बैठकें तो गुप्त ही होनी चाहिए।

फिर भी इन शिकायतों को सोनविले के सोलह के बीच सहानुभूतिपूर्ण समर्थन प्राप्त हुआ, जो ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाये –

"और इस सबसे बढ़ कर इस कांफ़ेंस ने एक निर्णय घोषित किया है कि जनरल कौंसिल आगामी कांग्रेस का अथवा उसके स्थान पर कांफ़ेंस का समय तथा स्थान स्वयं निश्चित करेगी; इस तरह हमें जनरल कांग्रेसों को, इंटरनेशनल के इन महान सार्वजनिक अधिवेशनों को ख़त्म कर दिये जाने की धमकी दी जाती है।"

सोलह यह समझने को राज़ी न थे कि इस निर्णय की अभिपुष्टि विभिन्न सरकारों को केवल यह बताने के लिए की गयी थी कि तमाम दमनकारी कार्रवाइयों के बावजूद इंटरनेशनल इस या उस रूप में अपनी आम बैठकें करने के लिए कृतसंकल्प है।

जेनेवा शाखाओं की २ दिसम्बर १८७१ को हुई आम सभा में नागरिकगण मालोन तथा लेफ़ांसे ने, जिनका सभा में अप्रिय ढंग से स्वागत किया गया, एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया जिसमें सोनविले के सोलह लोगों द्वारा पास फ़रमानों की पुष्टि की गयी, जनरल कौंसिल की निन्दा की गयी और साथ ही कांफ़ेंस को अनंगीकार किया गया। – कांफ़ेंस ने तय किया कि "कांफ़ेंस के प्रस्ताव, जो प्रकाशित नहीं होनेवाले हैं, विभिन्न देशों की फ़ेडरल कौंसिलों के पास जनरल कौंसिल के सम्बन्धित सचिवों द्वारा भेज दिये जायेंगे।"

---

* यहां इशारा मार्क्स की ओर है। – सं०

इस प्रस्ताव को, जो ग्राम नियमावली तथा अधिनियमों के सर्वथा अनुरूप था, ब० मालोन तथा उनके मित्रों ने छलपूर्ण ढंग से इस तरह बदला कि उसका दूसरा रूप निम्नलिखित हो गया –

"कांफ्रेंस के **कुछ** प्रस्ताव **केवल** फ़ेडरल कौंसिलों के पास **और** सम्बन्धित सचिवों के पास भेजे जायेंगे।"

फिर उन्होंने जनरल कौंसिल पर आरोप लगाया कि उसने उन प्रस्तावों को, जिनका विशिष्ट उद्देश्य इंटरनेशनल को उन देशों में, जहां उस पर पाबन्दी है, पुनर्गठित करना था, "**प्रचार**" के ज़रिए पुलिस के हाथों में सौंपने से इन्कार कर "**ईमानदारी के सिद्धान्त** का उल्लंघन किया है"।

नागरिकगण मालोन तथा लेफ्रांसे आगे शिकायत करते हैं कि

"इस कांफ्रेंस ने जनरल कौंसिल को उन सिद्धान्तों पर जिन पर संघ आधारित है, अथवा शाखाओं और फ़ेडरेशनों के सम्बन्धित हितों पर या अन्ततः समग्र रूप में संघ के आम हितों पर विचार करनेवाली शाखाओं या संघों के किसी भी मुखपत्र की निन्दा करने तथा उसे अनंगीकार करने का अधिकार देकर विचार और उसकी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अतिक्रमण किया है (देखें २१ अक्तूबर का *«Égalité»*)"।

सवाल उठता है कि २१ अक्तूबर को *«Égalitè»* ने क्या प्रकाशित किया था? उसने एक प्रस्ताव प्रकाशित किया था जिसमें कांफ़्रेंस "चेतावनी देती है कि आगे चलकर अपने को इंटरनेशनल का मुखपत्र कहने वाले उन तमाम अख़बारों की खुले तौर पर निन्दा करना तथा उन्हें अनंगीकार करना जनरल कौंसिल के लिए अनिवार्य होगा जो *«Progrès»* और *«Solidarité»* के उदाहरणों क अनुकरण करते हुए पूंजीपति वर्ग के लोगों के सामने अपने कालमों में उन प्रश्नों पर बहस छेड़ेंगे जो विशिष्ट रूप से स्थानीय या फ़ेडरल कमेटियों और जनरल कौंसिल के लिए अथवा फ़ेडरल या जनरल कांग्रेसों की गुप्त और प्रशासनिक बैठकों के लिए आरक्षित हैं।"

ब० मालोन के घिनौने विलाप का ठीक तरह मूल्यांकन करने के लिए हमें यह ध्यान में रखना होगा कि यह प्रस्ताव ऐसे कुछ पत्रकारों की कोशिशों का रास्ता सदा-सर्वदा के लिए रोक देता है जो स्वयं इंटरनेशनल की मुख्य कमेटियों

का स्थान लेना चाहते हैं और उसमें वही भूमिका अदा करना चाहते हैं जिसे पत्रकारों के बोहेमियाई हल्के पूंजीवादी दुनिया में अदा कर रहे हैं। इसी तरह की एक कोशिश के फलस्वरूप जेनेवा फ़ेडरल कमेटी की नज़र में सहबंध के कुछ सदस्यों ने *«Égalité»* का, रोमांस फ़ेडरेशन के आधिकारिक मुखपत्र का इस ढंग से सम्पादन किया जो रोमांस फ़ेडरेशन के प्रति सर्वथा शत्रुतापूर्ण था।

प्रसंगतः, जनरल कौंसिल के लिए अख़बारों के अनुचित उपयोग की "सार्वजनिक रूप से भर्त्सना करने तथा उन्हें अनंगीकार करने" के लिए लन्दन सम्मेलन की कोई आवश्यकता नहीं रह गयी थी क्योंकि बाज़ेल कांग्रेस ने निर्णय (प्रस्ताव २) किया था कि:

"शाखाओं को वे तमाम अख़बार, जिनमें संघ पर प्रहार किया जाता है, तत्काल जनरल कौंसिल के पास भेज देने चाहिए।"

रोमांस फ़ेडरल कमेटी २० दिसम्बर १८७१ के अपने घोषणापत्र में (*«Égalité»*, २४ दिसम्बर) कहती है, "यह स्पष्ट है कि यह धारा इसलिए स्वीकार नहीं की गयी कि जनरल कौंसिल संघ पर प्रहार करने वाले अख़बारों को अपनी फ़ाइलों में रख सके, उसे तो इसलिए स्वीकार किया गया कि वह उनका जवाब दे सके और ज़रूरत पड़ने पर कुत्साओं तथा द्वेषपूर्ण निन्दाओं के घातक प्रभाव को मिटा सके। यह भी स्पष्ट है कि यह धारा आम तौर पर सभी अख़बारों पर लागू होती है और यदि हम यह नहीं चाहते कि पूंजीवादी अख़बारों के प्रहारों को उनका उत्तर दिये बिना छोड़ दिया जाये तो अपनी मुख्य प्रतिनिधिमूलक संस्था, अर्थात् जनरल कौंसिल के ज़रिए उन अख़बारों को अनंगीकार करना और भी आवश्यक हो जाता है जो हमारे संघ की आड़ में हम पर प्रहार करते हैं।"

ज़रा इस बात पर ग़ौर कर लें कि *«Times»* ने जो पूंजीवादी प्रेस का लेवियाथन है, *«Progrès»* (लियों के) ने, जो उदारतावादी पूंजीपति वर्ग का प्रकाशन है तथा *«Journal de Genève»*[34] ने, जो घोर प्रतिक्रियावादी अख़बार है, कांफ़्रेंस के विरुद्ध बिल्कुल वैसे ही आरोप लगाये हैं, जो नागरिकगण मालोन तथा लेफ़्रांसे ने लगाये हैं और प्रायः उनकी ही भाषा का उपयोग किया है।

सोलह के परिपत्र ने कांफ़्रेंस के आयोजन को और आगे चल कर उसकी संरचना और उसके कथित गुप्त स्वरूप को चुनौती देने के बाद कांफ़्रेंस के प्रस्तावों को चुनौती दी।

सबसे पहले यह कहते हुए कि बाज़ेल कांग्रेस ने

"जनरल कौंसिल को इंटरनेशनल की शाखाओं को प्रवेश देने अथवा प्रवेश देने से इन्कार करने और उन्हें मुअत्तिल करने का हक़ देकर"

अपने अधिकारों को त्याग दिया है, वह आगे कांफ़्रेंस पर निम्नलिखित अपराध करने का आरोप लगाता है:

"इस कांफ़्रेंस ने ... ऐसे निर्णय लिये हैं... जिनसे इंटरनेशनल, जो स्वायत्त शाखाओं का स्वतंत्र संघ है, अनुशासनबद्ध शाखाओं के सोपानिक और सत्तावादी संगठन में बदल सकता है जो पूरी तरह एक ऐसी जनरल कौंसिल के नियंत्रण में होगा जो अपनी इच्छा से उन्हें प्रवेश देने से इन्कार कर सकती है अथवा उनके कार्यकलाप को निलंबित कर सकती है!!"

आगे चलकर परिपत्र बाज़ेल कांग्रेस के सवाल को फिर उठाता है, जिसने मानो "जनरल कौंसिल के कार्यों के स्वरूप को विकृत किया है"।

सोलह के परिपत्र में अन्तर्विरोधों का सार इस तरह प्रस्तुत किया जा सकता है: १८७१ की कांफ़्रेंस १८६९ की बाज़ेल कांग्रेस के प्रस्ताव के लिए उत्तरदायी है और जनरल कौंसिल नियमावली के पालन के लिए दोषी है जो उससे कांग्रेस के प्रस्तावों के कार्यान्वयन का तक़ाज़ा करती है।

परन्तु कांफ़्रेंस पर इन तमाम प्रहारों का वास्तविक कारण, वस्तुतः, अधिक गहन स्वरूप का है। पहली बात तो यह है कि उसने अपने प्रस्तावों द्वारा स्विट्ज़रलैंड में **सहबंध** के लोगों की तिकड़मों को विफल बना दिया। दूसरी चीज़ यह है कि सहबंध के प्रवर्तकों ने इटली, स्पेन तथा स्विट्ज़रलैंड के एक हिस्से और बेल्जियम में **अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर संघ के कार्यक्रम तथा बकूनिन के कामचलाऊ कार्यक्रम** के बीच ख़ूब सोची-समझी भ्रान्ति पैदा की तथा उसे आश्चर्यजनक धैर्य के साथ क़ायम रखा।

कांफ़्रेंस ने सर्वहारा नीति तथा संकीर्णतावादी शाखाओं के सम्बन्ध में अपने दो प्रस्तावों में जानबूझकर पैदा की गयी इस भ्रान्ति की ओर ध्यान आकृष्ट किया। पहले प्रस्ताव का उद्देश्य, जो बकूनिन के कार्यक्रम में प्रतिपादित राजनीतिक विरतिवाद की धज्जियां उड़ा देता है, अपने प्रस्तावना वाले अंशों में पूरी तरह

प्रस्तुत किया गया है जो आम नियमावली, लोसां कांग्रेस के प्रस्ताव तथा अन्य पूर्ववर्ती उदाहरणों पर आधारित हैं।*

---

* **मज़दूर वर्ग की राजनीतिक कार्रवाई** पर कांफ़्रेंस का प्रस्ताव इस प्रकार है:

"यह ध्यान में रखते हुए

"कि नियमावली की प्रस्तावना में यह कहा गया है – 'मज़दूर वर्ग की आर्थिक मुक्ति एक महान् ध्येय है, प्रत्येक राजनीतिक आन्दोलन को एक साधन के रूप में उसके अधीन होना चाहिए';

"कि अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर संघ की उद्घाटन-घोषणा (१८६४) में कहा गया है – 'भूमि के प्रभु तथा पूंजी के प्रभु अपनी आर्थिक इजारेदारियों की रक्षा करने तथा उन्हें बरक़रार रखने के लिए अपने राजनीतिक विशेषाधिकारों का सदैव उपयोग करते रहेंगे। इसलिए वे श्रम की मुक्ति को बढ़ावा देने के बजाय उसकी राह में हर सम्भव अड़चन डालना जारी रखेंगे... इसलिए राजनीतिक सत्ता हासिल करना मज़दूर वर्ग का महान् कर्त्तव्य बन गया है';

"कि लोसां कांग्रेस (१८६७) ने यह प्रस्ताव पास किया कि 'मज़दूरों की सामाजिक मुक्ति उनकी राजनीतिक मुक्ति से अविच्छेद्य है';

"कि जनमतसंग्रह (१८७०) के ठीक पूर्व इंटरनेशनल के फ़्रांसीसी सदस्यों की कथित साज़िश के सम्बन्ध में जनरल कौंसिल की घोषणा में कहा गया है – 'निस्सन्देह हमारी नियमावली का भाव यही है कि इंगलैंड, महाद्वीप तथा अमरीका में हमारी तमाम शाखाओं का विशेष ध्येय मज़दूर वर्ग के संघर्ष के संगठन केन्द्रों के रूप में काम करना ही नहीं, वरन् हमारे अन्तिम ध्येय की, मज़दूर वर्ग की आर्थिक मुक्ति के ध्येय की सिद्धि की दिशा में अपने-अपने देशों में प्रत्येक राजनीतिक आन्दोलन का समर्थन करना भी है';

"कि मूल नियमावली के जाली अनुवादों ने विभिन्न परिभाषाओं को जन्म दिया है जो अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर संघ के विकास तथा कार्यकलाप के लिए हानिकर है;

"बेलगाम प्रतिक्रियावाद को देखते हुए, जो मज़दूरों द्वारा मुक्ति के लिए किये जानेवाले प्रत्येक प्रयास को उग्रतापूर्वक कुचल देता है तथा वर्गों के विरोध को तथा उससे उत्पन्न होनेवाले सम्पत्तिधारियों के राजनीतिक प्रभुत्व को पाशविक शक्ति द्वारा क़ायम रखने का प्रयास करता है;

"यह ध्यान में रखते हुए

"कि मज़दूर वर्ग सम्पत्तिधारियों की इस सामूहिक शक्ति के विरुद्ध वर्ग के रूप में केवल उसी सूरत में कार्रवाई कर सकता है जब वह अपने को एक ऐसी राजनीतिक पार्टी के रूप में गठित करे जो सम्पत्तिधारियों द्वारा बनायी गयी पहले की तमाम पार्टियों से भिन्न तथा उनके विरुद्ध हो;

आइये, अब संकीर्णतावादी शाखाओं की ओर बढ़ें।

पूंजीपति वर्ग के विरुद्ध सर्वहारा के संघर्ष के पहले दौर का लाक्षणिक गुण संकीर्णतावादी आन्दोलन होता है। यह स्थिति ऐसे समय तर्कसंगत हुआ करती है जब सर्वहारा अभी वर्ग के रूप में कार्रवाई कर सकने लायक विकसित नहीं होता। कतिपय चिन्तक सामाजिक विरोधों की आलोचना करते हुए उनके लिए अजीबोग़रीब समाधानों का सुझाव देते हैं जबकि मज़दूर जनसमूह उनकी स्वीकृति, प्रचार तथा कार्यान्वयन करता है। इन प्रवर्तकों द्वारा स्थापित संकीर्ण पंथ स्वभाव से ही विरतिवादी होते हैं यानी समस्त वास्तविक कार्यकलाप, राजनीति, हड़तालों, संघबद्धताओं, कहने का मतलब है, कोई भी संयुक्त आन्दोलन उनके लिए विजातीय होता है। सर्वहारा जनसमूह उनके प्रचार के प्रति सदैव उदासीन रहता है, यही नहीं उनका विरोधी भी होता है। पेरिस और लियों के मज़दूरों को सेंट-साइमनपंथी, फ़ुरिएपंथी, इकारियाई[35] को उतने ही अस्वीकार्य थे जितने ओवेनपंथी चार्टिस्टों[36] तथा आंग्ल ट्रेड यूनियनपंथियों को थे। ये पंथ आरम्भ में आन्दोलन के उत्तोलक के रूप में काम करते हैं लेकिन ज्योंही आन्दोलन का आकार उनसे बड़ा हो जाता है, वे तुरन्त उसकी राह में बाधक बन जाते हैं; तब वे प्रतिक्रियावादी हो जाते हैं। ज़रा फ़्रांस और इंगलैंड में इन पंथों को और इधर जर्मनी में लासालपंथियों को देखिये जो वर्षों तक सर्वहाराओं के संगठन में अड़चन डालने के बाद अन्त में सीधे-सीधे पुलिस के हाथों के साधन बन गये। निष्कर्ष यह है कि हमारे सामने यह उसी तरह सर्वहारा आन्दोलन की शैशवावस्था है जिस तरह ज्योतिषशास्त्र तथा कीमियागीरी विज्ञान की शैशवावस्था हैं। इंटरनेशनल की स्थापना सम्भव हो जाने के लिए यह आवश्यक ही था कि सर्वहारा इस दौर के बीच से गुज़रता।

तरह-तरह की सनकों तथा प्रतिद्वन्द्विताओं वाले इन संकीर्णतावादी संगठनों के

"कि एक राजनीतिक पार्टी के रूप में मज़दूर वर्ग का यह गठन सामाजिक क्रान्ति और उसके अन्तिम ध्येय की, वर्गों के उन्मूलन के ध्येय की विजय सुनिश्चित करने के लिए अपरिहार्य है;

"कि शक्तियों के एकीकरण को जिसे अपने आर्थिक संघर्षों के ज़रिए मज़दूर वर्ग पहले ही स्थापित कर चुका है, साथ ही ज़मींदारों और पूंजीपतियों की राजनीतिक सत्ता के विरुद्ध अपने संघर्षों के उत्तोलक का भी काम करना चाहिए –

"कांफ़्रेंस **इंटरनेशनल** के सदस्यों को स्मरण कराती है

"कि मज़दूर वर्ग के संघर्ष में उसका आर्थिक आन्दोलन तथा उसकी राजनीतिक कार्रवाई एक दूसरे से अटूट रूप से सूत्रबद्ध हैं"।

विपरीत इंटरनेशनल समस्त देशों के सर्वहारा वर्ग का सच्चा तथा जुझारू संगठन है जो पूंजीपतियों तथा ज़मींदारों के विरुद्ध, राज्य के रूप में संगठित उनके वर्ग प्रभुत्व के विरुद्ध समान संघर्ष के सूत्र से बंधा हुआ है। इसलिए इंटरनेशनल की नियमावली मात्र साधारण "मज़दूर सोसायटियों" की बात करती है जो सब एक ही लक्ष्य का अनुसरण करती हैं तथा सर्वहारा आन्दोलन की एक आम रूपरेखा प्रस्तुत करनेवाले एक ही कार्यक्रम को स्वीकार करती हैं जबकि इस रूपरेखा के सैद्धान्तिक निरूपण का कार्य व्यावहारिक संघर्ष की आवश्यकताओं पर तथा शाखाओं, उनके निकायों तथा कांग्रेसों में, जहां बिना किसी अपवाद के सारी समाजवादी आस्थाओं को अभिव्यक्त किया जाता है, विचार-विनिमय पर छोड़ दिया जाता है।

जिस तरह प्रत्येक नये ऐतिहासिक दौर में पुरानी ग़लतियां क्षणभर के लिए पुनः प्रकट होकर तुरन्त लुप्त हो जाती हैं, उसी तरह इंटरनेशनल के अन्दर भी संकीर्णतावादी पंथों का पुनरुज्जीवन हुआ, भले ही कम प्रत्यक्ष रूप में।

सहबंध, यह मानते हुए कि पंथों का पुनरुज्जीवन आगे की ओर एक बहुत बड़ा पग है, स्वयं इस बात का प्रमाण है कि उनका वक़्त गुज़र चुका है क्योंकि जहां उनमें आरम्भ में प्रगति के तत्व थे, वहां सहबंध का कार्यक्रम "क़ुरान बिना मुहम्मद"[37] की तरह ऐसे शब्दाडम्बरपूर्ण विचारों के अम्बार के अलावा और कुछ नहीं है जो बहुत पहले निष्प्राण हो चुके थे और जो या तो केवल पूंजीवादी मूर्खों को भयभीत करने की क्षमता रखते हैं अथवा इंटरनेशनल के सदस्यों पर मुक़दमा चलानेवाले बोनापार्तपंथी या अन्य अभियोजकों के लिए उपयोगी प्रमाण का काम दे सकते हैं।*

सम्मेलन ने, जिसमें सब रंग के समाजवादियों को प्रतिनिधित्व प्राप्त था, संकीर्णतापंथी शाखाओं के विरुद्ध प्रस्ताव का सर्वसम्मति से अनुमोदन किया, उसका यह पूर्ण विश्वास था कि यह प्रस्ताव, जिसमें इंटरनेशनल के वास्तविक स्वरूप

---

* **इंटरनेशनल** के सम्बन्ध में पुलिस के हाल के प्रकाशन, जिनमें विदेशी सत्ताओं के नाम फ़ाव्रे का परिपत्र तथा दूफ़ोर योजना पर देहाती सभा के सदस्य साकाज़ की रिपोर्ट शामिल हैं, सहबंध के शब्दाडम्बरपूर्ण घोषणापत्रों[38] से लिये गये उद्धरणों से भरे पड़े हैं। इन संकीर्णतावादियों का, जिनका आमूल परिवर्तनवाद सर्वथा लफ़्फ़ाज़ी तक सीमित है, शब्दभंडार प्रतिक्रियावादियों के लक्ष्यों को बढ़ावा देने के लिए अतीव उपयोगी है।

पर एक बार फिर ज़ोर दिया गया, उसके विकास की एक नयी मंज़िल का द्योतक होगा। सहबंध के समर्थकों ने, जिन पर इस प्रस्ताव ने घातक प्रहार किया, इसे इंटरनेशनल पर जनरल कौंसिल की विजय मात्र माना, जिसके ज़रिए – जैसा कि उनके परिपत्र ने लक्षित किया – जनरल कौंसिल ने अपने कुछ सदस्यों के "विशेष कार्यक्रम का प्रभुत्व", "उनका वैयक्तिक सिद्धान्त", "कट्टरपंथी सिद्धान्त", "आधिकारिक सिद्धान्त, संघ के अन्दर एकमात्र अनुमेय" सिद्धान्त सुनिश्चित बनाया। प्रसंगतः, यह उन चन्द सदस्यों का क़सूर नहीं था, अपितु इस तथ्य का आवश्यक परिणाम, "भ्रष्टकारी प्रभाव" था कि वे जनरल कौंसिल के सदस्य थे, क्योंकि

"ऐसे व्यक्ति के लिए नैतिक व्यक्ति बना रहना सर्वथा असम्भव है जिसे अपने साथियों पर अधिकार" (!) "प्राप्त है। जनरल कौंसिल तिकड़मों का सरगर्म अड्डा बनती जा रही है।"

सोलह की राय में इंटरनेशनल की आम नियमावली की इसलिए भर्त्सना की जानी चाहिए कि उसने जनरल कौंसिल को नये सदस्य सहयोजित करने का अधिकार देकर बहुत बड़ी ग़लती की है। उनका दावा है कि इस तरह अधिकार प्राप्त कर

"जनरल कौंसिल, जब ज़रूरत समझे, इतनी बड़ी तादाद में लोगों का समूह सहयोजित कर सकती है जो कौंसिल के बहुमत तथा उसकी प्रवृत्तियों के स्वरूप को बदलने के लिए पर्याप्त होगी।"

वे यह सोचते प्रतीत होते हैं कि जनरल कौंसिल का सदस्य मात्र होना व्यक्ति की नैतिकता ही नहीं, वरन् उसकी विवेक-बुद्धि नष्ट करने के लिए पर्याप्त है। वरना हम कैसे यह मान सकते हैं कि बहुमत स्वेच्छया सहयोजित होकर अपने को अल्पमत में बदल देगा?

कुछ भी हो, स्वयं सोलह इन सब बातों के बारे में पूर्ण आश्वस्त प्रतीत नहीं होते क्योंकि वे आगे शिकायत करते हैं कि जनरल कौंसिल

"उन्हीं लोगों को, बार-बार निर्वाचित होनेवाले लोगों को लेकर पांच साल के लिए गठित की गयी है"

और इसके फ़ौरन बाद वे यह दुहराते हैं–

"**उनमें से अधिकांश** नियमित अधिदेश प्राप्त लोग नहीं हैं, क्योंकि वे **कांग्रेस द्वारा निर्वाचित नहीं हुए हैं।**"

परन्तु तथ्य यह है कि जनरल कौंसिल का ढांचा निरन्तर बदलता रहता है हालांकि बेल्जियम, फ़्रांसीसी स्विट्ज़रलैंड, आदि की फ़ेडरल कौंसिलों की तरह कुछ संस्थापक कौंसिल के सदस्य बने रहते हैं।

जनरल कौंसिल को यदि अपने अधिदेश का पालन करना है तो उसे तीन अनिवार्य शर्तें पूरी करनी होंगी। पहले, विविध कार्यकलाप की पूर्ति के लिए उसके पास सदस्य पर्याप्त संख्या में होने चाहिए; दूसरे, "अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर संघ में प्रतिनिधित्व प्राप्त विभिन्न राष्ट्रों के मेहनतकश" उसके सदस्य हों; और आख़िरी शर्त, उसमें मज़दूर तत्व का प्रभुत्व हो। चूंकि मजदूरों के काम की अपेक्षाओं के कारण जनरल कौंसिल की सदस्यता में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है, इसलिए वह सहयोजित करने के अधिकार के बिना इन तमाम अनिवार्य शर्तों को कैसे पूरा कर सकती है? फिर भी कौंसिल इस अधिकार की अधिक सूक्ष्म परिभाषा को आवश्यक मानती है, जैसा कि हाल की कांफ़्रेंस में परिलक्षित किया गया।

एक के बाद दूसरी कांग्रेस में, जहां इंगलैंड को निश्चित रूप से कम प्रतिनिधित्व प्राप्त था, जनरल कौंसिल के आरम्भिक सदस्यों का पुनर्निर्वाचन स्पष्टतया यह सिद्ध करता है कि उसने उपलब्ध साधनों की सीमा के अन्दर अपने कर्तव्य की पूर्ति की है। इसके विपरीत सोलह इसे "कांग्रेसों के अंधविश्वास" का एक प्रमाण मात्र मानते हैं जिसे बाज़ेल कांग्रेस में इस हद तक आगे बढ़ाया गया कि

"एक तरह जनरल कौंसिल के पक्ष में स्वेच्छया गद्दी छोड़ दी गयी।"

उनकी राय में जनरल कौंसिल की "सामान्य भूमिका मामूली पत्रव्यवहार तथा सांख्यिकीय कार्यालय" की होनी चाहिए। नियमावली के ग़लत अनुवाद से हासिल की गयी कई धाराओं के बल पर वे इस परिभाषा को उचित ठहराते हैं।

तमाम पूंजीवादी संस्थाओं की नियमावलियों के विपरीत इंटरनेशनल की आम नियमावली अपने प्रशासनिक संगठन को सरसरी तौर पर स्पर्श करती है। इसके विकास को वह व्यवहार पर तथा उसे नियमित बनाने के कार्य को भावी कांग्रेसों पर छोड़ देती है। फिर भी, विभिन्न देशों की शाखाओं की एकता तथा संयुक्त कार्रवाई ही चूंकि उन्हें वास्तविक अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप प्रदान कर सकती थीं, इसलिए नियमावली संगठन के अन्य निकायों की तुलना में कौंसिल की ओर अधिक ध्यान देती है।

मूल नियमावली[39] की धारा ५ में कहा गया है :

"जनरल कौंसिल विभिन्न राष्ट्रीय तथा स्थानीय समूहों का एक **अन्तर्राष्ट्रीय निकाय** है"

और इसके बाद उसमें इस बात के कुछ उदाहरण दिये गये हैं कि उसे किस तरह काम करना चाहिए। इन उदाहरणों में एक में कौंसिल से यह अनुरोध किया गया है कि "जब कभी तत्काल व्यावहारिक क़दम—उदाहरण के लिए अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों के मामले में—उठाने की आवश्यकता हो, संघ से सम्बद्ध संस्थाओं की कार्रवाई एकसाथ और एक जैसी होनी चाहिए।"

धारा में आगे कहा गया है—

"जब कभी उपयुक्त समझा जाये, जनरल कौंसिल अपनी पहल पर विभिन्न राष्ट्रीय अथवा स्थानीय संस्थाओं के समक्ष प्रस्ताव प्रस्तुत करेगी।"

इसके अलावा नियमावली कांग्रेसों का आयोजन करने तथा उनकी व्यवस्था करने के बारे में कौंसिल की भूमिका की परिभाषा करती है तथा उसे कतिपय रिपोर्टें तैयार कर उनके सामने प्रस्तुत करने का कार्य सौंपती है। मूल नियमावली में विभिन्न समूहों के स्वतंत्र कार्यकलाप तथा समग्र रूप में संघ के कार्यकलाप की एकता के बीच इतना कम भेद किया गया था कि धारा ६ में कहा गया है—

"चूंकि प्रत्येक देश में मज़दूर आन्दोलन की सफलता एकता तथा संगठन की शक्ति के बल पर ही हासिल की जा सकती है तथा दूसरी ओर इनसे जनरल कौंसिल का कार्यकलाप और अधिक कारगर होगा... इंटरनेशनल के सदस्य अपने-अपने देशों में मज़दूरों की असम्बद्ध संस्थाओं को राष्ट्रीय संगठनों में, जिनका प्रतिनिधित्व केन्द्रीय राष्ट्रीय निकाय करें, सूत्रबद्ध करने के लिए यथाशक्ति प्रयास करेंगे।"

जेनेवा कांग्रेस के प्रथम प्रशासनिक प्रस्ताव (धारा १) में कहा गया है—

"कांग्रेस के प्रस्तावों को **श्रमल में लाने** का दायित्व जनरल कौंसिल पर है।"

इस प्रस्ताव ने जनरल कौंसिल की उस स्थिति को वैधता प्रदान की है जिसे वह श्रपने जन्म से ही श्रपनाती श्रायी है–यह है संघ के **कार्यकारी निकाय** की स्थिति। किसी श्रन्य "स्वतंत्र रूप से मान्य सत्ता" के श्रभाव में किसी नैतिक "सत्ता" का उपयोग किये बिना श्रादेशों का कार्यान्वयन कठिन है। साथ ही जेनेवा कांग्रेस ने जनरल कौंसिल को "नियमावली के श्राधिकारिक तथा श्रनिवार्य पाठ को प्रकाशित करने का दायित्व सौंपा।"

इसी कांग्रेस ने तय किया (जेनेवा कांग्रेस का प्रशासनिक प्रस्ताव, धारा १४) –

"प्रत्येक शाखा को स्थानीय परिस्थितियों श्रौर श्रपने देश के क़ानूनों के श्रनुकूल श्रपनी नियमावली तथा श्रधिनियम तैयार करने का श्रधिकार है, परन्तु उनमें ऐसी कोई चीज़ नहीं होनी चाहिए, जो श्राम नियमावली तथा श्रधिनियमों के विपरीत हो।"

श्राइये, सबसे पहले इस श्रोर ध्यान दें कि सिद्धान्तों की किसी भी तरह की ऐसी विशेष घोषणाश्रों श्रथवा किसी भी प्रकार के ऐसे विशेष कार्यभारों की श्रोर लेशमात्र संकेत नहीं है जिन्हें इस या उस शाखा को उस समान लक्ष्य के श्रलावा, जिसका इंटरनेशनल के सभी ग्रूप श्रनुसरण करते हैं, श्रपने लिए निर्धारित करना चाहिए। मसला केवल श्राम नियमावली तथा श्रधिनियमों को "श्रपने देश की स्थानीय परिस्थितियों श्रौर श्रपने देश के क़ानूनों" के श्रनुकूल बनाने के शाखाश्रों के श्रधिकार से सम्बन्ध रखता है।

दूसरे, किसे यह तय करना है कि कोई विशेष नियम नियमावली के श्रनुरूप है या नहीं? ज़ाहिर है, यदि कोई ऐसी "सत्ता" न हो, जिस पर इस कार्यभार का दायित्व सौंपा जाये, तो यह प्रस्ताव व्यर्थ हो जायेगा। संघ के श्रन्दर पुलिस की शाखाएं या वैरभाव रखनेवाली शाखाएं ही नहीं बनेंगी, श्रपितु उसके श्रन्दर ऐसे वर्गच्युत संकीर्णतावादी तथा पूंजीवादी लोकोपकारी तक घुस श्रायेंगे जो उसके स्वरूप को विकृत कर सकते हैं श्रौर ये तत्व कांग्रेसों में श्रपनी तादाद के बल पर मज़दूरों को कुचल सकते हैं।

राष्ट्रीय तथा स्थानीय फ़ेडरेशन श्रपने जन्म से ही श्रपने-श्रपने देशों में यह देखते हुए कि नयी शाखाश्रों के नियम श्राम नियमावली के श्रनुरूप हैं या नहीं,

उन्हें प्रवेश करने देने या इससे इन्कार करने के अधिकार का उपभोग करते आये हैं। जनरल कौंसिल द्वारा इस कार्य की पूर्ति के लिए आम नियमावली की धारा ६ में व्यवस्था की गयी है जो **स्थानीय स्वतंत्र संस्थाओं को**, अर्थात् सम्बन्धित देश में फ़ेडरल निकाय के बाहर गठित संस्थाओं को जनरल कौंसिल के साथ सीधे सम्पर्क स्थापित करने का अधिकार देती है। **सहबंध** ने बाज़ेल कांग्रेस के डेलीगेटों के प्रवेश के लिए निर्धारित शर्तों की पूर्ति कर सकने के लिए इस अधिकार का उपयोग करने में कोई संकोच नहीं किया था।

नियमावली की धारा ६ में कतिपय देशों में राष्ट्रीय फ़ेडरेशनों की राह में क़ानूनी अड़चनों की परिकल्पना की गयी है, फलस्वरूप वहां जनरल कौंसिल से फ़ेडरल कौंसिल के रूप में कार्य करने के लिए कहा गया है (देखें लोसां कांग्रेस, आदि के कार्यवृत्त, १८६७, पृष्ठ १३[40])।

कम्यून की पराजय के उपरान्त विभिन्न देशों में क़ानूनी अड़चनें कई गुना बढ़ती जा रही हैं, इस कारण जनरल कौंसिल के लिए वहां ऐसी कार्रवाई करना और भी आवश्यक हो गया है जिससे संदिग्ध तत्व संघ से बाहर रखे जा सकें। यही कारण है कि फ़्रांसीसी समितियों ने हाल में पुलिस के भेदियों से छुटकारा पाने के लिए जनरल कौंसिल से हस्तक्षेप करने की मांग की और यही कारण है कि एक अन्य बड़े देश में* इंटरनेशनल के सदस्यों ने उससे अनुरोध किया कि वह किसी ऐसी शाखा को मान्यता न दे जो उनके प्रत्यक्ष अधिदेश द्वारा अथवा स्वयं उन द्वारा स्थापित न हुई हो। उनके अनुरोध को ऐसे छद्मउत्तेजकों से छुटकारा पाने की आवश्यकता ने प्रेरित किया था जिनका प्रबल उत्साह ऐसी शाखाओं की द्रुत गति से स्थापना में प्रकट हुआ जो अपने आमूल परिवर्तनवाद के मामले में अभूतपूर्व थीं। दूसरी ओर, तथाकथित सत्तावादविरोधी शाखाएं अपने बीच टकरावों को पैदा होते ही कौंसिल से अपील करने में संकोच नहीं करतीं, यही नहीं, वे उससे अपने विरोधियों के साथ सख़्ती बरतने के लिए कहने में भी नहीं झिझकतीं, लियों की टकराव इसकी मिसाल है। अभी हाल ही में, सम्मेलन के बाद, तूरीन "मज़दूर फ़ेडरेशन" ने अपने को इंटरनेशनल की शाखा घोषित किया। उसके बाद पड़ी फूट के फलस्वरूप अल्पसंख्या ने "सर्वहारा मुक्ति" समाज[41] की स्थापना की। यह संस्था इंटरनेशनल में शामिल हो गयी और उसने जूरा के लोगों के पक्ष में प्रस्ताव पास कर काम शुरू किया। उसके अख़बार

---

* आस्ट्रिया। – सं०

«*Proletario*» के पन्ने सब तरह के सत्तावाद के विरुद्ध रोषपूर्ण शब्दों से रंगे पड़े हैं। समाज का चन्दा भेजते हुए सचिव* ने जनरल कौंसिल को आगाह किया कि शायद पुराना फ़ेडरेशन भी चन्दा भेजे। फिर वह लिखते हैं:

"जैसा कि आपने «*Proletario*» में पढ़ा होगा, सर्वहारा मुक्ति समाज ने... घोषित किया है कि वह... पूंजीपति वर्ग के साथ, जो मज़दूरों के नक़ाब में **मज़दूर फ़ेडरेशन** स्थापित कर रहा है, किसी भी तरह की एकजुटता स्वीकार नहीं करेगा"

और वह कौंसिल से प्रार्थना करते हैं कि वह

"इस प्रस्ताव को सारी शाखाओं के पास भेज दे तथा १० सान्तीम चन्दा भेजे जाने की सूरत में उसे लेने से इन्कार कर दे।"**

इंटरनेशनल के तमाम अन्य संगठनों की भांति जनरल कौंसिल से भी प्रचार करने की अपेक्षा की जाती है। यह कार्य उसने अपने घोषणापत्रों तथा प्रतिनिधियों के ज़रिए किया है जिन्होंने उत्तरी अमरीका, जर्मनी तथा कई फ़्रांसीसी नगरों में इंटरनेशनल के प्रथम संगठनों का आधार क़ायम किया।

जनरल कौंसिल का एक अन्य कार्य है हड़तालियों की मदद करना तथा पूरे इंटरनेशनल द्वारा उनके लिए समर्थन संगठित करना (देखें विभिन्न कांग्रेसों के समक्ष जनरल कौंसिल की रिपोर्टें)। निम्न तथ्य अन्य बातों के अलावा हड़ताल आन्दोलन में उसके हस्तक्षेप का महत्व लक्षित करता है। अंग्रेज़ फ़ाउंड्रीमैनों की प्रतिरोध संस्था स्वयं एक अन्तर्राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन है जिसकी अन्य देशों में, विशेषकर संयुक्त राज्य अमरीका में शाखाएं हैं। फिर भी अमरीकी फ़ाउंड्रीमैनों

---

* कार्लो तेर्जागी। – सं०

** उस समय ये सर्वहारा मुक्ति समाज के **प्रतीयमान** विचार थे, जिसका प्रतिनिधित्व उसका सह-सचिव, बकूनिन का दोस्त कर रहा था। वस्तुतः इस शाखा की प्रवृत्तियां सर्वथा भिन्न थीं। इस समाज ने दुरंगी चाल चलनेवाले इस व्यक्ति पर गबन करने और तूरीन पुलिस के प्रधान के साथ दोस्ताना सम्बन्ध रखने का आरोप लगाकर उसे बाहर निकालने के बाद अपनी सफ़ाई दी जिसमें उसने अपने तथा जनरल कौंसिल के बीच सारी ग़लतफ़हमी दूर कर दी।

ने अपनी हड़ताल के दौरान अंग्रेज़ फ़ाउंड्रीमैनों को अमरीका पहुंचाने से रोकने के लिए जनरल कौंसिल का हस्तक्षेप आवश्यक समझा।

इंटरनेशनल के विकास ने जनरल कौंसिल तथा तमाम फ़ेडरल कौंसिलों के लिए पंच की भूमिका ग्रहण करना आवश्यक बना दिया।

ब्रसेल्स कांग्रेस ने निश्चय किया—

"फ़ेडरल कौंसिलों के लिए अपने **प्रशासन तथा वित्तीय स्थिति** के बारे में तिमाही रिपोर्ट जनरल कौंसिल को भेजना आवश्यक है (प्रशासनिक प्रस्ताव, नं० ३)।

अन्ततः बाज़ेल कांग्रेस ने, जो सोलह के घोर प्रकोप का पात्र बन गयी है, संघ के विकास के फलस्वरूप जन्म लेनेवाले प्रशासनिक सम्बन्धों का विनियमन करने तक ही अपने को व्यक्त रखा। यदि उसने जनरल कौंसिल के अधिकारों की सीमाओं का अत्यधिक विस्तार किया तो इसके लिए यदि बकूनिन, श्विट्ज़गेबेल, एफ़० राबर्ट, गिलोम तथा सहबंध के अन्य डेलीगेट नहीं तो और कौन दोषी थे? वे यही चीज़ हासिल करने के लिए तो अत्यधिक उत्सुक थे। अथवा क्या वे स्वयं अपने ऊपर लन्दन जनरल कौंसिल में "आंखें मूंद कर विश्वास" करने का आरोप लगायेंगे?

ये रहे बाज़ेल कांग्रेस के दो प्रस्ताव:

"४. गठित होनेवाली हर नयी शाखा या सोसायटी को, जो इंटरनेशनल में शामिल होना चाहती है, तत्काल जनरल कौंसिल को इसकी सूचना देनी चाहिए,"

और "५. जनरल कौंसिल को किसी भी नयी सोसायटी या ग्रूप को अपने साथ संलग्न करने का अथवा इससे इन्कार करने का अधिकार है; इस निर्णय के विरुद्ध अगली कांग्रेस में अपील की जा सकती है।"

जहां तक फ़ेडरल निकाय से बाहर स्थापित स्थानीय स्वतंत्र संस्थाओं का प्रश्न है, ये धाराएं उस व्यवहार की पुष्टि ही करती हैं, जिसका इंटरनेशनल स्थापित होने के समय से ही अनुशीलन किया जाता रहा है, और जिनका पालन संघ के लिए जीवन-मरण का प्रश्न है। परन्तु इस व्यवहार का विस्तार करना तथा उसे गठन की प्रक्रिया से गुज़र रही किसी शाखा या सोसायटी पर बिना सोचे-समझे लागू करना सीमा का अतिक्रमण होगा। ये धाराएं जनरल कौंसिल के फ़ेडरेशनों के

आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने का यक़ीनन अधिकार देती हैं, परन्तु जनरल कौंसिल ने इस अर्थ में उन्हें कभी लागू नहीं किया। जनरल कौंसिल का दावा है कि सोलह एक भी ऐसी मिसाल पेश नहीं कर सकते जो यह बताती हो कि अपने को मौजूद ग्रूपों या फ़ेडरेशनों के साथ संलग्न करने के लिए इच्छुक नयी शाखाओं के मामलों में जनरल कौंसिल ने कभी हस्तक्षेप किया।

ऊपर उद्धृत प्रस्ताव गठित हो रही शाखाओं की चर्चा करते हैं जबकि निम्नलिखित प्रस्ताव पहले ही गठित हो चुकी शाखाओं की चर्चा करते हैं—

"६. जनरल कौंसिल को आगामी कांग्रेस तक इंटरनेशनल की किसी शाखा को निलम्बित करने का भी अधिकार है।"

"७. किसी राष्ट्रीय ग्रूप की संस्थाओं या शाखाओं के बीच अथवा विभिन्न राष्ट्रीय ग्रूपों के बीच झगड़े पैदा हो जाने पर जनरल कौंसिल को झगड़ा निपटाने का अधिकार होगा; उसके निर्णय के विरुद्ध आगामी कांग्रेस में अपील की जा सकती है जिसे अपना अन्तिम निर्णय देना होगा।"

ये दो धाराएं किसी चरम अवस्था में ही आवश्यक होती हैं हालांकि अभी तक जनरल कौंसिल को कभी उनका आश्रय नहीं लेना पड़ा है। ऊपर प्रस्तुत समीक्षा बताती है कि जनरल कौंसिल ने कभी कोई शाखा निलम्बित नहीं की है और विवादों के उत्पन्न होने की दशा में दो पक्षों के बीच पंच के रूप में ही काम किया है।

हम अन्ततः उस कार्य पर पहुंचते हैं जिसे संघर्ष की आवश्यकताओं ने जनरल कौंसिल पर थोपा है। सहबंध के समर्थकों को चाहे कितना ही सदमा पहुंचे, यह एक तथ्य है कि सर्वहारा आन्दोलन के सभी शत्रुओं द्वारा जनरल कौंसिल पर किये जानेवाले प्रहारों की अनवरतता ने ही उसे अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर संघ के योद्धाओं के हरावल के स्थान पर पहुंचाया है।

५

इंटरनेशनल से उसके विद्यमान रूप में इस तरह निपट चुकने के बाद सोलह हमें बताते हैं कि उसे कैसा होना चाहिए।

सर्वप्रथम, जनरल कौंसिल को औपचारिक रूप में एक साधारण पत्रव्यवहार तथा सांख्यिकीय कार्यालय होना चाहिए। अपने संगठनात्मक कार्यों से मुक्त हो

जाने पर उसका पत्रव्यवहार संघ के अख़बारों में प्रकाशित हो चुकी सूचनाओं को फिर से उद्धृत करना मात्र रह जायेगा। इस प्रकार पत्रव्यवहार कार्यालय अनावश्यक हो जायेगा। जहां तक सांख्यिकी का प्रश्न है, वह कार्य तभी सम्भव है जब एक मज़बूत संगठन हो और विशेष रूप से जब आम निर्देश व्यवस्था हो, जैसा कि मूल नियमावली में साफ़-साफ़ कहा गया है। चूंकि इस सब से बहुत अधिक "सत्तावाद" की गंध आती है, इसलिए एक कार्यालय का रखा जाना सम्भव है परन्तु सांख्यिकी किसी भी सूरत में नहीं। संक्षेप में, जनरल कौंसिल लुप्त हो जायेगी। इसी तर्क के बल पर फ़ेडरल कौंसिलें, स्थानीय समितियां तथा अन्य "सत्तावादी" केन्द्र भी ख़त्म हो जायेंगे। स्वायत्त शाखाएं ही बनी रहेंगी।

तो फिर इन "स्वायत्त शाखाओं का", मुक्त रूप से संघबद्ध, तमाम उच्च निकायों से, "मजदूरों द्वारा निर्वाचित तथा गठित उच्च निकाय तक" से सुखद रूप में छुटकारा पानेवाली इन "स्वायत्त शाखाओं" का क्या उद्देश्य होगा?

यहां सोलह की कांग्रेस के समक्ष जूरा फ़ेडरल कमेटी द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट को परिपत्र के साथ जोड़ना आवश्यक है।

"मज़दूर वर्ग को मानवजाति के नये हितों का वास्तविक प्रतिनिधि बना सकने के लिए" उसके संगठन को "उस विचार से पथ-प्रदर्शन पाना चाहिए जो विजयी होकर रहेगा। इस विचार को हमारे युग की आवश्यकताओं, मानवजाति की जीवन्त आकांक्षाओं, सामाजिक जीवन के घटना-व्यापार के सुसंगत अध्ययन के ज़रिए **विकसित करना**, फिर इस विचार को हमारे मज़दूरों के संगठनों तक **पहुंचाना** – हमारा उद्देश्य ऐसा होना चाहिए, आदि।" अन्त में, "हमारी मज़दूर आबादी के बीच एक वास्तविक क्रान्तिकारी समाजवादी **विद्यालय**" का निर्माण किया जाना चाहिए।

इस तरह स्वायत्त मज़दूर शाखाएं पलक झपकते ही ऐसे **विद्यालयों में** बदल दी जाती हैं, जहां सहबंध के सज्जन अध्यापक होंगे। "सुसंगत अध्ययन" द्वारा, जो अपने पीछे कोई चिह्न नहीं छोड़ता, वे यह **विचार विकसित करते** हैं। फिर वे "इस विचार को हमारे मज़दूर संगठनों के पास **पहुंचाते** हैं।" उनके लिए मज़दूर वर्ग इस तरह की कच्ची सामग्री, ऐसी विश्रृंखलता है कि उस द्वारा आकार ग्रहण किये जाने के लिए उन्हें उसमें अपनी पुनीत आत्मा से फूंक भरनी होगी।

यह सब सहबंध के उस पुराने कार्यक्रम के पद-विन्यास के अलावा और कुछ नहीं है जो इन शब्दों से शुरू होता है–

"शान्ति तथा स्वतंत्रता लीग की समाजवादी अल्पसंख्या इस लीग से अपने को पृथक करने के बाद एक नया समाजवादी जनवाद का सहबंध" स्थापित करनेवाली है... जिसका **विशेष मिशन** राजनीतिक तथा दार्शनिक प्रश्नों का अध्ययन करना होगा..."

यह रहा वह **विचार** जो "**विकसित**" किया जा रहा है!

"इस तरह की योजना... यूरोप तथा अमरीका के सच्चे समाजवादी जन-वादियों को ऐसे **साधन** मुहैया करेगी जिनसे उन्हें समझा जा सकेगा और **उनके विचारों** की अभिपुष्टि हो सकेगी।"*

पूंजीवादी संस्था की अल्पसंख्या स्वयं उसकी स्वीकारोक्ति के अनुसार बाज़ेल कांग्रेस से कुछ ही समय पहले चुपके से इंटरनेशनल के अन्दर मात्र इस उद्देश्य को लेकर घुसी कि उसे वह मेहनतकश जनसाधारण के समक्ष एक गुप्त विज्ञान के उच्च पुरोहित के रूप में पेश करने के लिए साधनस्वरूप इस्तेमाल कर सकें, ऐसे विज्ञान के उच्च पुरोहित के रूप में पेश कर सकें जिसे चार वाक्यों में प्रतिपादित किया जा सकता है और जिसका चरम बिन्दु "वर्गों की आर्थिक तथा सामाजिक समता" है।

इस "सैद्धान्तिक मिशन" के अलावा इंटरनेशनल के लिए प्रस्तावित नये संगठन का एक व्यावहारिक पहलू भी है।

सोलह के परिपत्र में कहा गया है, "भावी समाज उस संगठन की सार्वत्रिकता के अलावा और कुछ नहीं होगा जो इंटरनेशनल अपने लिए स्थापित

---

*सहबंध के इन सज्जनों ने, जिन्होंने जनरल कौंसिल की ऐसी गुप्त कांफ्रेंस बुलाने के लिए भर्त्सना की है जब खुली कांग्रेस का आयोजन ग़द्दारी या मूर्खता की पराकाष्ठा होती, कोलाहल तथा प्रचार के इन घोर समर्थकों ने हमारी नियमावली की अवज्ञा करते हुए इंटरनेशनल के अन्दर एक गुप्त संस्था बनायी जो स्वयं इंटरनेशनल के विरुद्ध लक्षित थी, और जिनका उद्देश्य उसकी शाखाओं को, जिन्हें कुछ भी पता नहीं था, सर्वोच्च पुरोहित के, बकूनिन के हाथों में सौंपना था।

जनरल कौंसिल कतिपय देशों में – उदाहरण के लिए स्पेन में – इस गुप्त संगठन तथा उसके प्रवर्तकों के बारे में अपनी अगली कांग्रेस में जांच करने की मांग करने का इरादा रखती है।

करेगा। इसलिए हमें यह ध्यान में रखना होगा कि हम इस संगठन को जहां तक सम्भव हो अपने आदर्श के समीप लायें।

"यह कैसे आशा की जा सकती है कि एक सत्तावादी संगठन में से एक समतावादी तथा मुक्त समाज विकसित होगा? यह असम्भव है। इंटरनेशनल को, जो भावी मानव समाज का भ्रूण है, अब से मुक्ति तथा फ़ेडरेशन के हमारे सिद्धान्तों की सच्ची छवि बनना होगा।"

जिस तरह मध्ययुग के मठ दिव्य जीवन का चित्र प्रस्तुत करते थे, ठीक उसी तरह इंटरनेशनल को नव यरुशलम की छवि होना चाहिए जिसका "भ्रूण" सहबंध के गर्भ में विद्यमान है। पेरिस कम्यून के लोग यदि यह समझ लेते कि कम्यून "भावी मानव समाज का भ्रूण है" और यदि वे सारे अनुशासन तथा हथियारों को, अर्थात् उन तमाम वस्तुओं को, जिन्हें उस समय लुप्त हो जाना होगा जब कभी युद्ध नहीं होंगे, तिलांजलि दे देते तो वे विफल न होते।

परन्तु बकूनिन ने यह सिद्ध करना बेहतर मानते हुए कि सोलह ने अपने "सुसंगत अध्ययनों" के बावजूद इंटरनेशनल को उस समय, जब वह अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रहा था, विसंगठित तथा निरस्त्र करने की यह तुच्छ योजना नहीं रची, इंटरनेशनल के संगठन के सम्बन्ध में अपनी रिपोर्ट में उस योजना का मूल पाठ अभी-अभी प्रकाशित किया है (देखें *«Almanach du Peuple pour 1872»*, जेनेवा)।

६

अब ज़रा उस रिपोर्ट के पन्ने उलटें जिसे जूरा कमेटी ने सोलह की कांग्रेस में प्रस्तुत किया था।

उनका आधिकारिक मुखपत्र *«Révolution Sociale»* (१६ नवम्बर) कहता है, "रिपोर्ट पढ़ने से जूरा फ़ेडरेशन के सदस्यों से अपेक्षित निष्ठा तथा व्यावहारिक विवेक के ठीक-ठीक परिमाण का पता चल जायेगा।"

रिपोर्ट इन "भयंकर घटनाओं" को—फ्रांस-प्रशा युद्ध तथा फ्रांस में गृहयुद्ध को—इंटरनेशनल की शाखाओं के अन्दर... कुछ हौसलापस्ती के प्रभाव का कारण बताते हुए शुरू होती है।

यदि यह एक तथ्य है कि फ्रांस-प्रशा युद्ध के परिणामस्वरूप शाखाएं इसलिए विघटित हुए बिना नहीं रह सकती थीं कि युद्ध के कारण मजदूर बहुत बड़ी संख्या में दोनों सेनाओं में भर्ती हुए, तो यह भी कम सत्य नहीं है कि साम्राज्य के पतन तथा क़ब्ज़ाकारी युद्ध की बिस्मार्क द्वारा खुली घोषणा ने जर्मनी तथा इंगलैंड में पूंजीपति वर्ग – जिसने प्रशियाइयों का पक्ष लिया – तथा सर्वहारा वर्ग के बीच – जिसने पहले किसी भी समय की तुलना में अपनी अन्तर्राष्ट्रीय भावनाओं का अधिक परिचय दिया – उग्र संघर्ष उत्तेजित किया। अकेली यही चीज इंटरनेशनल के लिए दोनों देशों में आधार प्राप्त करने के लिए पर्याप्त होती। अमरीका में इसी तथ्य ने जर्मन सर्वहारा उत्प्रवासियों के विशाल समूह को विभक्त कर दिया, अन्तर्राष्ट्रीयतावादी पक्ष ने अंधराष्ट्रवादी पक्ष से निश्चित रूप से नाता तोड़ दिया।

दूसरी ओर, पेरिस कम्यून के जन्म ने इंटरनेशनल के विस्तार को तथा उसके सिद्धान्तों के तमाम राष्ट्रों की शाखाओं द्वारा – जूरा शाखाओं को छोड़कर – समर्थन को अभूतपूर्व रूप से संवर्द्धित किया। समर्थन न देनेवाली इन जूरा शाखाओं की रिपोर्ट में कहा गया है – "विराट संघर्ष की शुरूआत के कारण... लोग फिर से सोचने लगे हैं... कुछ अपनी कमज़ोरी छुपाने के लिए हट जाते हैं... बहुतों के लिए यह स्थिति" (अपनी क़तारों के अन्दर) "जर्जरता का चिह्न है" परन्तु "इसके विपरीत... **इस स्थिति में इंटरनेशनल को**" उनके ढर्रे के अनुसार "**पूरी तरह बदलने की क्षमता है**"। यह विनम्र इच्छा ऐसी शुभ स्थिति का और गहन विवेचन करने के बाद समझ में आ जायेगी।

यदि विघटित सहबंध की, जिसका स्थान मालोन की शाखा ने ले लिया, बात छोड़ भी दी जाये तब भी समिति को बीस शाखाओं की स्थिति के विषय में रिपोर्ट पेश करनी थी। उनमें से सात ने सीधे-सीधे सहबंध की ओर से मुंह फेर लिया; इस बारे में रिपोर्ट का यह कहना है –

"**ब्येन के बक्से बनानेवालों, नक़्क़ाशों और डिजाइनरों** की शाखाओं ने हमारे **एक भी** सन्देश का उत्तर नहीं दिया है।

"नेवशतेल के कारीगरों – यानी **बढ़इयों, बक्से बनानेवालों, नक़्क़ाशों और डिजाइनरों की** शाखाओं ने फ़ेडरल कमेटी की चिट्ठियों का **कोई** उत्तर **नहीं** दिया **है**।

"हम वाल-दे-रूज़ से **कोई** समाचार प्राप्त **नहीं** कर सके हैं।"

"**लोक्ले के नक़्क़ाशों और डिजाइनरों की शाखा ने** फ़ेडरल कमेटी की चिट्ठियों **का कोई** उत्तर **नहीं** दिया है।"

यह है स्वायत्त शाखाओं का अपनी फ़ेडरल कमेटी के बीच **मुक्त संसर्ग**। एक दूसरी शाखा, याने

"**कुर्तेलारी** ज़िले के **नक़्क़ाशों तथा डिज़ाइनरों** की शाखा तीन वर्ष के अडिग अध्यवसाय के बाद... अब... एक प्रतिरोध संस्था में संगठित होने लगी है"

जो **इंटरनेशनल से स्वतंत्र** होगी, जो चीज़ उसे सोलह की कांग्रेस में दो डेलीगेट भेजने से ज़रा भी नहीं रोकती।

फिर चार पूर्णतः निर्जीव हो चुकी शाखाएं आती हैं–

"**ब्येन की केन्द्रीय शाखा** इस समय **भंग हो गयी** है; परन्तु उसके एक वफ़ादार सदस्य ने हमें हाल में लिखा था कि ब्येन में इंटरनेशनल के पुनर्जन्म की **सारी आशाएं अभी मिटी नहीं हैं**।

"**सेंट-ब्लेज़** शाखा **भंग हो गयी है**।

"कातेबा शाखा को अपने भव्य अस्तित्व के बाद उन तिकड़मों के आगे **झुक जाना पड़ा** है जो इस ज़िले के मालिकों ने" (!) "इस **बहादुर**" (!) "शाखा को भंग करने के लिए रचे हैं।"

"अन्त में, कोर्जेमों शाखा भी मालिकों की तिकड़मों का **शिकार बनी है**।"

उसके बाद **कुर्तेलारी ज़िले की केन्द्रीय शाखा** आती है, जिसने "अपने कार्यकलाप **निलंम्बित करने** का बुद्धिमत्तापूर्ण निर्णय किया"; इस चीज़ ने उसे सोलह की कांग्रेस में अपने दो डेलीगेट भेजने से विचलित नहीं किया।

अब हमारे सामने वे चार शाखाएं आती हैं जिनका अस्तित्व कहीं अधिक द्विविधापूर्ण है।

"**ग्रांज** शाखा समाजवादी मज़दूरों का एक **छोटा-सा केन्द्रक** बनकर रह गयी है... उनकी अल्प सदस्यता ने उनके स्थानीय कार्यकलाप को गतिहीन बना दिया है।

"**नेवशतेल की केन्द्रीय शाखा** को घटनाओं के कारण काफ़ी ज्यादा धक्का लगा है और यदि उसके कुछ सदस्य निष्ठावान तथा सक्रिय न होते तो वह **अनिवार्यतः विघटित हो चुकी होती**।

"**लोक्ले की केन्द्रीय शाखा** कुछ महीनों तक **ज़िंदगी और मौत के बीच** झूलने के बाद अन्त में **विघटित हो गयी**। परन्तु उसे अभी हाल में दुबारा संगठित किया गया है"–

ज़ाहिर है, उसे मात्र इस उद्देश्य के लिए दुबारा संगठित किया गया कि वह सोलह की कांग्रेस में अपने दो डेलीगेट भेज सके।

"**समाजवादी प्रचार की शो-दे-फ़ोन शाखा नाज़ुक हालत में है**... उसकी हालत सुधरनी तो रही दूर, **बिगड़ती ही जा रही है।**"

इसके बाद दो शाखाएं—**सेंट-इम्ये तथा सोनविल्ये की अध्ययन मंडलियां** आती हैं जिनकी केवल सरसरी तौर पर चर्चा की गयी है और जिनकी परिस्थितियों के बारे में एक शब्द भी नहीं कहा गया है।

तब आदर्श शाखा रह जाती है, उसका **केन्द्रीय** शाखा नाम ही स्पष्ट कर देता है कि वह अन्य निर्जीव शाखाओं के अवशेष के अलावा और कुछ नहीं है।

"**मुत्ये** की केन्द्रीय शाखा को ही सबसे कम धक्का पहुंचा है... उसकी कमेटी का फ़ेडरल कमेटी से निरन्तर संपर्क रहा है... **अभी कोई शाखाएं स्थापित नहीं हुई हैं**..."

इसका निम्नलिखित कारण बताया गया है—

"मुत्ये की शाखा के कार्यकलाप के लिए परिस्थितियां विशेष रूप से **अनुकूल हैं** क्योंकि आज भी... लोक परम्पराएं सुरक्षित रखनेवाली मेहनतकश आबादी का उसके प्रति **अनुकूल रुख है**; हम चाहते हैं कि इस ज़िले का मज़दूर वर्ग अपने को राजनीतिक तत्वों से और अधिक स्वतंत्र बनाये।"

वस्तुतः यह देखा जा सकता है कि यह रिपोर्ट

"उस निष्ठा तथा **व्यावहारिक विवेक बुद्धि** का, जिसकी हम ज़ूरा फ़ेडरेशन के सदस्यों से अपेक्षा कर सकते हैं, सही-सही परिमाण प्रस्तुत करती है।"

वे इतना और कहकर बात ख़त्म कर सकते थे कि शो-दे-फ़ोन के, जो उनकी समिति का मूल स्थान था, मज़दूरों ने उनसे कोई सरोकार रखने से हमेशा इन्कार किया है। अभी हाल में, १८ जनवरी १८७२ को, उन्होंने लन्दन कांफ़्रेंस के प्रस्तावों और साथ ही रोमांस कांग्रेस के मई १८७१ के प्रस्ताव की सर्वसम्मति से पुष्टि करके सोलह के परिपत्र का उत्तर दिया जिसमें कहा गया कि

"बकूनिन, गिलोम और उनके समर्थकों को हमेशा के लिए इंटरनेशनल से बाहर कर दिया जाये।"

क्या इस नकली सोनविल्ये कांग्रेस के बारे में, जिसने अपने ही शब्दों में "इंटरनेशनल के अन्दर युद्ध, खुला युद्ध उत्पन्न किया", कुछ और कहने की ज़रूरत है?

निस्सन्देह, इन लोगों को, जो अपनी हैसीयत से ज्यादा शोर मचाते हैं, निर्विवाद सफलता मिली। सारे उदारतावादी तथा पुलिस के अख़बारों ने खुलेआम उनका साथ दिया है; उन्हें जनरल कौंसिल पर कीचड़ उछालने में और इंटरनेशनल पर नीरस प्रहार करने में कई देशों के प्रतीयमान सुधारवादियों ने मदद दी – ये हैं इंगलैंड में पूंजीवादी जनतंत्रवादी जिनकी तिकड़मों का इंटरनेशनल ने पर्दाफ़ाश किया; इटली में जड़सूत्रवादी स्वतंत्र चिन्तक जिन्होंने स्तेफ़ानोनी के झंडे के नीचे अभी-अभी "सार्वत्रिक तर्कणावादी संस्था" की, जिसका स्थायी सदर-मुक़ाम रोम में है, एक "सत्तावादी" तथा "सोपानिक" संगठन की, निरीश्वरवादी भिक्षुओं तथा भिक्षुणियों के लिए मठों की स्थापना की है जिसके नियमों में यह व्यवस्था है कि दस हज़ार फ़्रांक चन्दा देनेवाले प्रत्येक पूंजीपति की कांग्रेस के सभा भवन में संगमरमर की मूर्ति स्थापित की जाये;[42] अन्ततः जर्मनी में बिस्मार्कीय समाजवादी, जिन्होंने अपने पुलिस-मुखपत्र «*Neuer Social-Demokrat*»[43] के अलावा प्रशा-जर्मन साम्राज्य के "सफ़ेद कुर्ताधारियों"[44] की भूमिका अदा की।

सोनविल्ये गुट इंटरनेशनल की तमाम शाखाओं से करुणाजनक ढंग से अपील करता है कि वे नागरिकगण मालोन तथा लेफ़्रांसे के शब्दों में "लन्दन कौंसिल के निरन्तर अतिक्रमणों पर अंकुश लगाने के लिए" तत्काल कांग्रेस बुलाने की आवश्यकता पर ज़ोर दें; परन्तु अपील का वास्तविक उद्देश्य यह था कि इंटरनेशनल का स्थान सहबंध ले। इस अपील की इतनी उत्साहप्रद प्रतिक्रिया हुई कि उन्होंने पिछली बेल्जियन कांग्रेस में स्वीकृत प्रस्ताव को तत्काल ग़लत ढंग से पेश करना शुरू कर दिया। उनका आधिकारिक मुखपत्र «*Révolution Sociale*», ४ जनवरी १८७२) लिखता है –

"आख़िरी चीज़, और यह ज्यादा महत्वपूर्ण है, बेल्जियन शाखाओं की २४ और २५ दिसम्बर को ब्रसेल्स कांग्रेस के समय बैठक हुई और उन्होंने जनरल कांग्रेस के आयोजन की आवश्यकता पर सोनविल्ये कांग्रेस की ही तरह का प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकार किया।"

यह ध्यान में रखना बहुत महत्वपूर्ण है कि बेल्जियन कांग्रेस ने इससे बिल्कुल विपरीत प्रस्ताव पास किया था। उसने बेल्जियन कांग्रेस को जिसकी आगामी जून तक बैठक नहीं होने जा रही थी, इंटरनेशनल की **आगामी कांग्रेस** के समक्ष प्रस्तुतार्थ नयी नियमावली तैयार करने का काम सौंपा था।

इंटरनेशनल की भारी बहुसंख्या की इच्छा के अनुसार जनरल कौंसिल वार्षिक कांग्रेस सितम्बर १८७२ में ही आयोजित करेगी।

७

कांफ़्रेंस के कुछ सप्ताह बाद अल्बेर रिशार तथा गास्पर ब्लां, **सहबंध** के सबसे प्रभावशाली तथा सबसे उत्कट सदस्य लन्दन पहुंचे। वे फ़ांसीसी उत्प्रवासियों के बीच ऐसे सहायक भर्ती करने के लिए आये जो साम्राज्य के पुनःस्थापन का कार्य करने के लिए इच्छुक हों। उनके कथनानुसार थियेर से छुटकारा पाने और बेसहारेपन से बचने के लिए यही एकमात्र रास्ता था। जनरल कौंसिल ने ब्रसेल्स फ़ेडरल कौंसिल समेत सबको उनकी बोनापार्तपंथी साज़िशों से सचेत कर दिया था।

जनवरी १८७२ को उन्होंने "**साम्राज्य तथा नया फ़ांस। फ़ांसीसी अन्तःकरण का जनता तथा नौजवानों द्वारा आह्वान।** लेखक अल्बेर रिशार तथा गास्पर ब्लां। ब्रसेल्स, १८७२।" शीर्षक पुस्तिका प्रकाशित कर अपना नक़ाब उतार दिया।

सहबंध के धूर्तों की अभिलाक्षणिक विनम्रता के साथ वे यह ऊल-जलूल घोषणा करते हैं –

"हम लोग, जिन्होंने फ़ांसीसी सर्वहारा की महान सेना संगठित की है... हम लोग, जो फ़ांस में इंटरनेशनल के सबसे प्रभावपूर्ण नेता हैं,* ...

---

*१५ फ़रवरी १८७२ के «*L'Égalité*» (जेनेवा से प्रकाशित) के अंक में '**कठघरे की ओर!**' शीर्षक में कहा गया था –

"दक्षिणी फ़ांस में कम्यून के आन्दोलन की पराजय की कहानी का वर्णन करने का अभी समय नहीं आया है; परन्तु आज हम, जिनमें से अधिकांश ३० अप्रैल को लियों के विप्लव की निन्दनीय पराजय के साक्षी रहे हैं, इतना घोषित कर सकते हैं कि विप्लव की विफलता का एक कारण गा० ब्लां की बुज़दिली,

ख़ुशक़िस्मती से गोली से नहीं उड़ा दिये गये हैं और हम यहां इन लोगों (अर्थात् महत्वाकांक्षी सांसदों, आत्मतुष्ट जनतंत्रवादियों, हर रंग के मिथ्या जनवादियों) के सामने वह झंडा, जिसके नीचे हम लड़ रहे हैं, प्रतिष्ठापित करने के लिए मौजूद हैं, विस्मित यूरोप के सामने वह आवाज़ बुलन्द करने के लिए मौजूद हैं जो हमारे अन्त:करण से निकलती है और जो शीघ्र तमाम फ़्रांसीसियों के दिलों में प्रतिध्वनित हो उठेगी, यह आवाज़ है **'सम्राट ज़िंदाबाद!'**

"अपमानित तथा तिरस्कृत नेपोलियन तृतीय को शानदार ढंग से पुन:प्रतिष्ठित किया जाना चाहिए", –

और अल्बेर रिशार और गास्पर ब्लांक को जिन्हें आक्रमण तृतीय के गुप्त कोषों से धन दिया गया, पुन:प्रतिष्ठित करने का यह विशेष कार्य सौंपा जाता है।

प्रसंगत: वे स्वीकार करते हैं कि

"अपने विचारों के स्वाभाविक विकास ने हमें साम्राज्य का पक्षधर बनाया है।"

यह एक ऐसी स्वीकारोक्ति है जिससे **सहबंध** में उनके सहधर्मियों को हर्ष होना चाहिए। «*Salidarité*» की तरुणाई के दिनों की ही तरह अ० रिशार

ग़द्दारी और बटमारी है जिसने हर जगह घुसकर अपने को पर्दे के पीछे रखनेवाले अ० रिशार के आदेशों की पूर्ति की।

"पहले से ही ख़ूब सोच-समझकर रची गयी तिकड़मों के ज़रिए इन धूर्तों ने इरादतन बहुत-से उन लोगों को फंसा दिया जिन्होंने विप्लव समितियों की तैयारी की कार्रवाइयों में भाग लिया था।

"यही नहीं, ये ग़द्दार लियों में इंटरनेशनल को इस हद तक बदनाम करने में सफल रहे कि पेरिस क्रान्ति के समय तक इंटरनेशनल को लियों के मज़दूर अधिकतम अविश्वास के साथ देखने लगे। यही संगठन के अभाव का, यही विप्लव की विफलता का, ऐसी विफलता का कारण है जिसके अवश्यम्भावी परिणामस्वरूप कम्यून का पतन हुआ, जिसे अपनी ही अलग-थलग शक्तियों के सहारे छोड़ दिया गया! इस रक्तरंजित सबक़ के बाद ही हमारा प्रचार लियों के मज़दूरों को इंटरनेशनल के झंडे के नीचे एकजुट कर सका है।

"अल्बेर रिशार बकूनिन और उनके चट्टे-बट्टों का प्रियजन और पैगम्बर था।"

तथा गा० ब्लांक "राजनीति से विरति" के बारे में फिर अपने पुराने फ़िक़रों को दुहराते हैं, जो "स्वाभाविक विकासक्रम" के सिद्धान्त के आधार पर केवल पूर्णतम निरंकुशतावाद के अन्तर्गत ही वास्तविकता बन सकती है, जिसमें मज़दूर राजनीति में दस्तंदाज़ी से उसी तरह विरत होंगे जिस तरह क़ैदी धूप में घूमने से विरत रहता है।

वे कहते हैं, "क्रान्तिकारियों का समय गुज़र चुका है... कम्युनिज़्म जर्मनी तथा इंगलैंड तक, विशेष रूप से जर्मनी तक सीमित है। प्रसंगतः, वह वहीं दीर्घ-काल से संजीदे रूप में विकसित हुआ है जहां से वह आगे चलकर पूरे इंटर-नेशनल में फैला है, और संघ में **जर्मन प्रभाव** के इस चिन्ताजनक विस्तार ने उसके विकास में, बल्कि यूं कहें कि उसे मध्य तथा दक्षिणी फ़्रांस में, जिन्हें किसी जर्मन ने कभी कोई नारा मुहैया नहीं किया, नयी दिशा देने में कोई कम योग नहीं दिया है।"

शायद यह स्वयं महानायक* की आवाज़ है जिसने सहबंध की स्थापना के समय से ही रूसी होने के नाते **लैटिन नस्लों** का प्रतिनिधित्व करने का विशेष मिशन ग्रहण किया है। अथवा क्या यह *«Révolution Sociale»* (२ नवम्बर १८७१) के "सच्चे मिशनरियों की" आवाज़ है जो

"इंटरनेशनल पर जर्मन तथा बिस्मार्कियन मनोवृत्ति थोपने का प्रयास कर रहे पश्चगमन की" निन्दा करती है।

परन्तु सौभाग्य से सच्ची परम्परा जीवित रह गयी है और श्री अल्बेर रिशार तथा गास्पर ब्लां को गोली से नहीं उड़ाया गया है! इस तरह उनका अपना "योगदान" यह है कि उन्होंने बोनापार्तपंथी शाखाओं की – तथ्यतः मूल रूप से "स्वायत्त" शाखाओं की – स्थापना के प्रयास के ज़रिए मध्य तथा दक्षिणी फ़्रांस में इंटरनेशनल के लिए "एक नयी दिशा निर्धारित" की है।

जहां तक लन्दन कांफ़्रेंस की सिफ़ारिश के अनुसार सर्वहारा को एक राज-नीतिक पार्टी के रूप में संगठित करने का सम्बन्ध है,

---

* मि० बकूनिन। – सं०

"साम्राज्य के पुनःस्थापन के बाद हम लोग"—रिशार तथा ब्लां—"समाजवादी सिद्धान्तों से ही नहीं, वरन् जनसाधारण के क्रान्तिकारी संगठन के **माध्यम** से उन्हें क्रियान्वित करने की सारी कोशिशों से जल्दी से निपटेंगे।" संक्षेप में "शाखाओं के" **महान** "स्वायत्त सिद्धान्त" का, जो "इंटरनेशनल की वास्तविक शक्ति है... **विशेष रूप से लैटिन नस्ल वाले** देशों में, उपयोग करते हुए"... (*«Révolution Sociale»*, ४ जनवरी),

ये सज्जन इंटरनेशनल में अराजकता को अपनी आशाओं का आधार बनाते हैं।

तो अराजकता उनके उस्ताद बकूनिन का जंगी घोड़ा है जिसने चन्द नारों को छोड़कर समाजवादी प्रणालियों से कुछ भी ग्रहण नहीं किया है। सारे समाजवादी अराजकतावाद को इस कार्यक्रम के रूप में देखते हैं: सर्वहारा आन्दोलन के लक्ष्य की, अर्थात् वर्गों के उन्मूलन की एक बार पूर्ति हो जाने के बाद राज्य की सत्ता, जो उत्पादकों की बहुसंख्या को मुट्ठी भर शोषक अल्पसंख्या के अधीन रखने का काम करती है, लुप्त हो जाती है तथा सरकार के कार्य मात्र प्रशासनिक कार्य बन जाते हैं। सहबंध बिल्कुल उल्टी तस्वीर खींचता है। वह सर्वहाराओं की क़तारों में अराजकता को शोषकों के हाथों में सामाजिक तथा राजनीतिक शक्तियों के जमाव को भंग करने का सबसे अमोघ अस्त्र मानता है। इस बहाने की आड़ में वह इंटरनेशनल से ऐसे समय, जब पुरानी दुनिया उसे कुचलने का रास्ता ढूंढ़ रही है, अपने संगठन के स्थान पर अराजकता स्थापित करने के लिए कह रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय पुलिस थियेरीय जनतंत्र को शाही चोग़ा*

---

*दूफ़ोर क़ानून-संबंधी रिपोर्ट में देहाती सभा के सदस्य साकाज़ सर्वोपरि इंटरनेशनल के "संगठन" पर प्रहार करता है। वह उस संगठन से निश्चित रूप से घृणा करता है। इस "ख़तरनाक संघ की बढ़ती लोकप्रियता" की पुष्टि कर चुकने के बाद वह आगे कहता है, "यह संघ... अपने से पहले के पंथों के गुप्त तरीक़ों को ठुकराता है। उसका संगठन बिल्कुल खुले तौर पर बनाया तथा परिवर्तित किया गया। इस संगठन ने अपनी शक्ति के बल पर... अपने कार्यकलाप तथा प्रभाव का दायरा निरन्तर बढ़ाया है। वह दुनिया भर में फैलता जा रहा है।" फिर वह "संगठन का संक्षिप्त विवरण" देता है और यह निष्कर्ष निकालता है: ऐसी है इस विशाल संगठन की चतुराई भरी एकता में निहित... उसकी योजना। उसकी शक्ति उसकी मूल अवधारणा में ही निहित है। वह अपने

पहिनाते हुए उसे बरक़रार रखने के लिए बेहतर चीज़ की तलाश नहीं कर सकती।

लन्दन, ५ मार्च १८७२
३३, राटबोन प्लेस।
मार्क्स तथा एंगेल्स द्वारा
मध्य जनवरी और ५ मार्च

अंग्रेज़ी से अनूदित।

१८७२ के बीच लिखित।
१८७२ में जेनेवा में पुस्तिका के रूप में प्रकाशित।

समर्थकों की, जो अपने समान कार्यकलाप में सूत्रबद्ध हैं, बहुत बड़ी तादाद पर तथा अन्ततः उस अजेय संवेग पर अवलम्बित है जो उन्हें आन्दोलित करता है।"

कार्ल मार्क्स

पेरिस कम्यून की जयन्ती सभा के प्रस्ताव[45]

१८ मार्च १८७१ की जयन्ती मनाने के लिए आयोजित सभा निम्नलिखित प्रस्ताव स्वीकार करती है:

१

वह १८ मार्च को उद्घाटित कीर्तिमय आन्दोलन को महान सामाजिक क्रान्ति की प्रभातवेला के रूप में देखती है जो मानवजाति को वर्ग शासन से सदा-सर्वदा के लिए मुक्त कर देगी।

२

वह घोषित करती है कि मजदूर वर्ग के प्रति अपनी घृणा द्वारा पूरे यूरोप में एकीकृत बुर्जुआ वर्गों की अयोग्यता तथा अपराधों ने पुराने समाज को, जो किसी भी तरह की शासन व्यवस्था के – राजतंत्रवादी अथवा जनतंत्रवादी – अन्तर्गत हो, मौत की सजा दे दी है।

३

वह घोषित करती है कि इंटरनेशनल के विरुद्ध तमाम सरकारों के जेहाद तथा वेर्साई के हत्यारों और साथ ही उनके प्रशियाई विजेताओं का आतंक उनकी

सफलताओं के खोखलेपन को प्रकट करते हैं तथा इस बात का प्रमाण हैं कि वीर हरावल के पीछे, जिसे थियेर और प्रशा के विल्हेल्म की संयुक्त शक्तियों ने कुचल दिया है, पूरे संसार के सर्वहाराओं की भीमकाय सेना खड़ी है।

मार्क्स द्वारा १३ और १८ मार्च १८७२ के बीच लिखित।

२४ मार्च, १८७२ को «*La Libertè*» के अंक १२ तथा ३० मार्च, १८७२ को «*The International Herald*» के अंक ३ में प्रकशित।

अंग्रेजी से अनूदित।

कार्ल मार्क्स

भूमि का राष्ट्रीयकरण[46]

भूस्वामित्व सम्पूर्ण सम्पदा का मूल स्रोत है और वह एक ऐसी बहुत बड़ी समस्या बन गया है जिसके समाधान पर मज़दूर वर्ग का भविष्य निर्भर करता है।

यहां भूमि पर निजी स्वामित्व के पक्ष-समर्थकों – विधिशास्त्रियों, दार्शनिकों और राजनीतिक अर्थशास्त्रियों द्वारा प्रस्तुत सारे तर्कों का विवेचन करने का मेरा इरादा नहीं है, मैं यहां अपनी बात सबसे पहले यह कहने तक सीमित रखूंगा कि इन लोगों ने हस्तगतकरण के मूल तथ्य को **"नैसर्गिक अधिकार"** की आड़ में छुपाने के लिए एड़ी-चोटी का ज़ोर लगाया है। यदि हस्तगतकरण चन्द लोगों का नैसर्गिक अधिकार है तो अधिकतर लोगों को केवल इतना ही करना है कि वे उसे, जो उनसे छीन लिया गया है, पुनः प्राप्त करने का नैसर्गिक अधिकार प्राप्त करने के लिए पर्याप्त शक्ति बटोरें।

इतिहास की अग्रगति में विजेताओं ने पाशविक बल द्वारा हासिल अपने मूल अधिकारों को स्वयं थोपे गये क़ानूनों के माध्यम से सामाजिक प्रतिष्ठा प्रदान करना सुविधाजनक पाया है।

फिर दार्शनिक आता है और यह सिद्ध करता है कि इन क़ानूनों का अर्थ मानवजाति की सार्वत्रिक सहमति है और वे उसे व्यक्त करते हैं। यदि भूमि पर निजी स्वामित्व सचमुच ऐसी सार्वत्रिक सहमति के आधार पर स्थापित है तो वह स्पष्टतया उस क्षण मिट जायेगा जिस क्षण समाज का बहुमत यह सहमति देने से इनकार कर देगा।

परन्तु स्वामित्व के तथाकथित "अधिकारों" की बात छोड़ते हुए मैं दावे के साथ कहता हूं कि समाज का आर्थिक विकास, आबादी की वृद्धि तथा जमाव–ये ठीक वे ही हालात हैं, जो पूंजीपति फ़ार्मर को कृषि में सामूहिक तथा संगठित श्रम का उपयोग करने के लिए और मशीनों तथा ऐसे ही अन्य आविष्कारों का आश्रय लेने के लिए मजबूर करते हैं–भूमि के राष्ट्रीयकरण को अधिकाधिक **"सामाजिक आवश्यकता"** बना देंगे जिसके मुक़ाबले में स्वामित्व के अधिकारों की सारी बातें बेकार सिद्ध होंगी। समाज की तात्कालिक आवश्यकताओं की पूर्ति होगी तथा उनकी पूर्ति करनी होगी, सामाजिक आवश्यकताओं से जन्म लेनेवाले परिवर्तन अपना रास्ता बनाते जायेंगे और देर-सबेर क़ानून को अपने हित में ढालेंगे।

हमें ज़रूरत है नित्यप्रति बढ़ते हुए उत्पादन की। उसकी आवश्यकताएं चन्द लोगों को उसे अपनी सनकों और निजी स्वार्थों के अनुसार विनियमित करने अथवा अज्ञानवश मिट्टी की शक्ति ख़त्म कर देने की इजाज़त देकर पूरी नहीं की जा सकतीं। सिंचाई, जल-निकास, भाप-चालित हलों, रासायनिक पदार्थों का उपयोग जैसी सारी आधुनिक विधियों को कृषि में बड़े पैमाने पर अमल में लाया जाना चाहिए। परन्तु हमारे पास जो वैज्ञानिक ज्ञान है और हमें कृषि के जो साधन–जैसे मशीनें–उपलब्ध हैं, उन्हें ज़मीन पर बहुत बड़े पैमाने की काश्त के बिना सफलतापूर्वक अमल में नहीं लाया जा सकता।

यदि बड़े पैमाने की काश्त (भले ही वर्तमान पूंजीवादी विधि के अन्तर्गत जो स्वयं काश्तकार को लद्दू जानवर की अधोगति में पहुंचा देती है) आर्थिक दृष्टि से छोटी तथा बिखरी हुई कृषि से कहीं श्रेष्ठ सिद्ध हो तो क्या वह राष्ट्रीय पैमाने पर व्यवहार में लाये जाने से उत्पादन को उत्प्रेरित नहीं करेगी?

एक ओर लोगों की सदा बढ़ती जानेवाली आवश्यकताएं तथा दूसरी ओर कृषि उपजों की सदा बढ़ती जानेवाली क़ीमतें इस बात का अकाट्य प्रमाण हैं कि भूमि का राष्ट्रीयकरण सामाजिक आवश्यकता बन चुका है।

जब खेती राष्ट्र के नियंत्रण में और उसके लाभार्थ की जायेगी, व्यक्तिगत दुरुपयोग के फलस्वरूप कृषि उपजों का इस तरह घटना निस्सन्देह असम्भव हो जायेगा।

यहां बहस के दौरान इस प्रश्न पर जितने नागरिकों की बात मैंने सुनी है, उन सबने भूमि के राष्ट्रीयकरण का पक्ष-समर्थन किया है परन्तु उन्होंने उसे बहुत भिन्न दृष्टिकोण से देखा है।

फ्रांस की अक्सर मिसाल के तौर पर चर्चा की गयी परन्तु अपने **कृषक स्वामित्व** के कारण वह राष्ट्रीयकरण के मामले में इंगलैंड से कोसों दूर है जहां ज़मींदारी है। यह सच है कि फ्रांस में ज़मीन उन सब को सुलभ है जो उसे ख़रीद सकते हैं, परन्तु इसी सुविधा ने उसे ऐसे छोटे-छोटे टुकड़ों में बांट दिया है जिसे बहुत कम साधन वाले लोग ख़रीदा करते हैं और जो स्वयं अपने व्यक्तिगत श्रम तथा अपने परिवारों के श्रम पर मुख्यतया निर्भर करते हैं। इस तरह का भूस्वामित्व तथा उसके कारण छोटे-छोटे खेतों पर काश्त जो आधुनिक कृषि सुधारों के सारे साधनों का उपयोग असम्भव बना देती है, स्वयं काश्तकार को सामाजिक प्रगति और सर्वोपरि ज़मीन के राष्ट्रीयकरण का कट्टर शत्रु बना देती है। वह जमीन से बंधा रहता है जिस से अपेक्षाकृत मामूली प्रतिफलों की प्राप्ति के लिए उसे अपनी सारी जीवन शक्ति नष्ट करनी पड़ती है; उसे अपनी उपज का बड़ा भाग राज्य को करों के रूप में, अदालती दुनिया को अदालती ख़र्चों के रूप में और सूदख़ोर को ब्याज के रूप में देना पड़ता है; वह अपने रोज़गार के तुच्छ क्षेत्र से बाहर होनेवाले सामाजिक आन्दोलनों से सर्वथा अनभिज्ञ रहता है; इन सब के बावजूद वह अपने खेत के छोटे-से टुकड़े से तथा उस पर नाममात्र के स्वामित्व से मतान्धतापूर्ण अनुराग के साथ चिपका रहता है। इस तरह फ्रांसीसी किसान को औद्योगिक मज़दूर वर्ग का सर्वाधिक घातक विरोधी बना दिया गया है।

इस तरह, कृषक स्वामित्व के भूमि के राष्ट्रीयकरण की राह में सबसे बड़ी रुकावट होने के कारण फ्रांस अपनी वर्तमान अवस्था में यक़ीनन वह स्थान नहीं है जहां हमें इस विरत समस्या के समाधान की तलाश करनी चाहिए।

पूंजीपति वर्ग की शासन व्यवस्था के अन्तर्गत ज़मीन के राष्ट्रीयकरण से तथा उसे छोटे-छोटे टुकड़ों में अलग-अलग व्यक्तियों या मेहनतकश लोगों के संघों को सौंपने से स्वयं उनके बीच अंधाधुंध प्रतिद्वन्द्विता पैदा होगी और इसके फलस्वरूप लगान में वृद्धि होगी जो फिर हस्तगतकारियों को उत्पादकों का ख़ून चूसने के लिए नयी सुविधाएं प्रदान करेगी।

१८६८ में ब्रसेल्स में हुई इंटरनेशनल की कांग्रेस में हमारे एक मित्र ने* कहा था –

---

*सीज़र द पाइप। – सं०

"भूमि पर निजी लघु स्वामित्व को विज्ञान का निर्णय तथा बड़े स्वामित्व को न्याय का निर्णय मृत्युदंड दे चुका है। केवल एक विकल्प रह जाता है: भूमि या तो ग्राम संघों की सम्पत्ति अथवा पूरे राष्ट्र की सम्पत्ति बने। यह प्रश्न भविष्य तय करेगा।"

मैं इसके विपरीत कहूंगा: सामाजिक आन्दोलन इस निर्णय की ओर ले जायेगा कि भूमि पर केवल स्वयं राष्ट्र का ही स्वामित्व हो सकता है। भूमि संघबद्ध देहाती श्रमिकों को सौंपने का अर्थ समाज को उत्पादकों के केवल एक विशिष्ट वर्ग के अधीन करना होगा।

भूमि का राष्ट्रीयकरण श्रम तथा पूंजी के सम्बन्धों में पूर्ण परिवर्तन ले आयेगा और अन्ततोगत्वा उत्पादन का पूंजीवादी रूप – वह चाहे औद्योगिक हो या कृषक – ख़त्म कर देगा। फिर वर्ग विभेद तथा विशेषाधिकार उस आर्थिक आधार के साथ लुप्त हो जायेंगे जिस पर वे अवलम्बित हैं। दूसरों के श्रम के सहारे जीवित रहना अतीत की बात बनकर रह जायेगी। स्वयं समाज से भिन्न कोई सरकार या राजकीय सत्ता नहीं रह जायेगी! कृषि, खनन, कारख़ाना उद्योग, संक्षेप में उत्पादन की तमाम शाखाएं सर्वाधिक सन्तोषजनक ढंग से संगठित की जायेंगी। **उत्पादन के साधनों का राष्ट्रीय केन्द्रीयकरण** स्वतंत्र तथा बराबरी का दर्जा प्राप्त उत्पादकों के ऐसे संघों को लेकर बननेवाले समाज का राष्ट्रीय आधार होगा जो समान तथा विवेकसम्मत योजना के आधार पर सामाजिक कारोबार किया करेंगे। ऐसा है वह मानवीय ध्येय जिसकी ओर १९वीं शताब्दी का महान आर्थिक आन्दोलन अग्रसर हो रहा है।

मार्क्स द्वारा मार्च-अप्रैल १८७२ में लिखित। अंग्रेज़ी से अनूदित।

«*The International Herald*» अख़बार के १५ जून १८७२ के अंक ११ में प्रकाशित।

कार्ल मार्क्स तथा फ़्रेडरिक एंगेल्स

हेग में हुई जनरल कांग्रेस के प्रस्तावों का एक अंश

२–७ सितम्बर १८७२[47]

१

नियमावली पर प्रस्ताव

लन्दन कांफ़्रेंस (सितम्बर १८७१)[48] के प्रस्ताव ६ का सार प्रस्तुत करनेवाली निम्नलिखित धारा नियमावली की धारा ७ के बाद जोड़ी जाये।

धारा ७ क। सम्पत्तिधारी वर्गों की संयुक्त सत्ता के विरुद्ध अपने संघर्ष में सर्वहारा अपने को एक विशेष राजनीतिक पार्टी में गठित करके ही वर्ग के रूप में काम कर सकते हैं जो सम्पत्तिधारी वर्गों की तमाम पुरानी पार्टियों के विरुद्ध हो।

राजनीतिक पार्टी में सर्वहारा का यह गठन सामाजिक क्रांति की और उसके अन्तिम लक्ष्य – वर्गों के उन्मूलन के लक्ष्य – की विजय सुनिश्चित करने के लिए अपरिहार्य है।

मज़दूर वर्ग की शक्तियों की संयुक्त ताक़त को, जो आर्थिक संघर्ष द्वारा हासिल हो चुकी है, इस वर्ग के हाथों में अपने शोषकों की राजनीतिक सत्ता के विरुद्ध संघर्ष में उत्तोलक का काम भी करना होगा।

चूंकि भूमि तथा पूंजी के अधिपति अपनी आर्थिक इजारेदारियों को बरक़रार रखने और श्रम को दास बनाने के लिए अपने राजनीतिक विशेषाधिकारों का सदैव उपयोग करते हैं, इसलिए राजनीतिक सत्ता विजित करना सर्वहारा का महान् कर्त्तव्य हो जाता है।

५ के विरुद्ध २६ मतों से अनुमोदित; ८ ने मतदान में भाग नहीं लिया...

मार्क्स तथा एंगेल्स द्वारा तैयार। अंग्रेज़ी से अनूदित।

«Resolution du congrès général ténu a la Haye du 2 au 7 septembre 1872», Londres, 1872 नामक पुस्तिका के रूप में तथा *«La Emancipacion»*, अंक ७२, २ नवम्बर १८७२ और *«The International Herald»* अंक ३७ में १४ दिसम्बर १८७२ को प्रकाशित।

कार्ल मार्क्स

हेग कांग्रेस

एम्स्टेरडम में ८ सितम्बर १८७२ को आयोजित सभा में किये गये भाषण का सम्वाददाता द्वारा लिखित रूप

मार्क्स ने कहा था – १८ वीं शताब्दी में राजा और महाराजा अपने राजवंशों के हितों पर विचार-विमर्श करने हेग में जमा हुआ करते थे।

सारे भय दिखाये जाने के बावजूद हमने यहीं मज़दूरों की कांग्रेस आयोजित करने का निर्णय किया। हम सबसे प्रतिक्रियावादी आबादी के बीच अपने महान संघ के अस्तित्व, उसके विस्तार, भविष्य में उसकी आशाओं को अभिपुष्ट करना चाहते थे।

हमारा निर्णय सुनने के बाद कहा गया कि हमने मैदान साफ़ करने के लिए दूत भेजे थे। हम इस बात से इनकार नहीं करते कि हमारे दूत सब जगह फैले हुए हैं; परन्तु उनमें से अधिकांश से हम अपरिचित हैं। हेग में हमारे दूत वे मज़दूर थे जिनका श्रम कमरतोड़ होता है; एम्सटरडम में भी हमारे दूत मज़दूर हैं जो १६ घंटे रोज़ मेहनत करते हैं। वे ही हमारे दूत हैं, और कोई नहीं। और समस्त देशों में, जहां हम पहुंचते हैं, हम देखते हैं कि वे हमारा मित्रतापूर्वक स्वागत करने के लिए इच्छुक हैं क्योंकि वे बहुत जल्द अनुभव कर लेते हैं कि उनकी दशा सुधारना ही हमारा ध्येय है।

हेग कांग्रेस ने तीन मुख्य कार्य किये:

उसने मेहनतकश वर्गों के लिए सामाजिक क्षेत्र की ही तरह राजनीतिक क्षेत्र में भी पुराने, ढह रहे समाज के विरुद्ध संघर्ष करने की ज़रूरत पर ज़ोर दिया। और हमें प्रसन्नता है कि लन्दन कांफ़्रेंस का यह प्रस्ताव अब हमारी नियमावली*

---

* देखें प्रस्तुत खण्ड। – सं०

में शामिल कर लिया गया है। हमारे बीच एक ऐसा समूह बन गया था जो मज़दूरों की राजनीति से विरति की वकालत कर रहा था।

हमने यह लक्षित करना महत्वपूर्ण माना कि हमने इन सिद्धान्तों को अपने ध्येय के लिए कितना ख़तरनाक और अभिशापपूर्ण माना।

मज़दूर को किसी न किसी दिन राजनीतिक सत्ता हासिल करनी होगी ताकि वह श्रम को नये ढर्रे पर संगठित कर सके। यदि मज़दूर वर्ग यह नहीं चाहता कि वह प्रथम ईसाइयों की ही तरह, जो राजनीति की उपेक्षा करते थे तथा उससे घृणा करते थे, पृथ्वी पर अपने राज से सदा-सर्वदा के लिए वंचित रहें, तो उसे पुराने संस्थानों का समर्थन करनेवाली पुरानी नीति को परास्त करना होगा।

परन्तु हमने कभी यह दावा नहीं किया कि यह लक्ष्य एक जैसे साधनों से हासिल होगा।

हम जानते हैं कि विभिन्न देशों के संस्थानों, रीति-रिवाजों तथा परम्पराओं को ध्यान में रखना आवश्यक है; और हम इस बात से इनकार नहीं करते कि अमरीका, इंगलैंड जैसे देशों में – और यदि आपके संस्थानों के बारे में मेरा ज्यादा अच्छा ज्ञान हो तो मैं इन देशों में हालैंड को भी शामिल करता – मेहनतकश जनता अपना ध्येय शान्तिपूर्ण साधनों से पूरा कर सकती है। यदि यह सच है तो हमें यह भी स्वीकार करना होगा कि महाद्वीप के अधिकांश देशों में शक्ति को ही हमारी क्रान्तियों का उत्तोलक बनना होगा; यह शक्ति ही है जिसका हमें श्रम का राज स्थापित करने के लिए किसी न किसी दिन आश्रय लेना पड़ेगा।

हेग कांग्रेस ने जनरल कौंसिल को नये तथा पहले से अधिक अधिकार दिये हैं। वास्तव में, ऐसे समय जब राजा लोग बर्लिन में जमा हुए हैं,[49] जहां सामन्ती व्यवस्था तथा पुराने ज़माने के प्रतिनिधियों की इस सभा में हमारे विरुद्ध नयी तथा अधिक कठोर दमनात्मक कार्रवाइयां तय की जानेवाली हैं और जब दमन-चक्र घूमना शुरू हो चुका है, हेग कांग्रेस ने अपनी जनरल कौंसिल के अधिकारों को बढ़ाना तथा शुरू होने ही वाले संघर्ष के लिए कार्रवाई का केन्द्रीयकरण करना, जिसे अलगाव निरर्थक बना देगा, आवश्यक तथा विवेकपूर्ण समझा है। इसके अलावा जनरल कौंसिल की सत्ता हमारे दुश्मनों के अलावा और किसमें घबराहट पैदा कर सकती है? तो क्या उसके पास अपनी इच्छा थोपने के लिए नौकरशाही मशीन और सशस्त्र पुलिस है? क्या उसकी सत्ता विशुद्धतः नैतिक नहीं है? क्या वह अपने सारे निर्णय फ़ेडरेशनों के हवाले नहीं करती जिन्हें ये निर्णय क्रियान्वित करने का काम सौंपा जाता है? इन परिस्थितियों में, बिना सेना, बिना पुलिस, बिना

सरकारी अमले के राजाओं को यदि अपनी शक्ति मात्र नैतिक प्रभाव तथा नैतिक सत्ता पर अवलम्बित रखनी पड़े तो वे क्रान्ति के पथ में अत्यन्त क्षीण बाधक होंगे।

आखिरी चीज, हेग कांग्रेस ने जनरल कौंसिल का कार्यालय न्यूयार्क स्थानान्तरित कर दिया है। बहुत-से लोग, स्वयं हमारे कुछ दोस्त तक इस निर्णय से विस्मित हो गये प्रतीत होते हैं। तो क्या वे यह भूल रहे हैं कि अमरीका मुख्यतया मेहनतकश लोगों का संसार बनता जा रहा है, कि हर साल पांच लाख व्यक्ति—मेहनतकश लोग—वहां जाकर बस रहे हैं, कि ऐसी धरती पर, जहां मेहनतकश छाया हुआ हो, इंटरनेशनल को अपनी जड़ मज़बूत बनानी चाहिए? और फिर कांग्रेस का निर्णय जनरल कौंसिल को ऐसे सदस्य सहयोजित करने का अधिकार देता है जिन्हें वह समान ध्येय के लाभार्थ आवश्यक तथा उपयोगी समझती हो। हमें आशा करनी चाहिए कि वह ऐसे लोग चुनने की बुद्धिमत्ता प्रदर्शित करेगी जिनमें अपना कार्यभार ठीक तरह वहन करने की योग्यता होगी तथा जो यूरोप में हमारे संघ के झंडे को दृढ़तापूर्वक पकड़े रह सकेंगे।

नागरिको, हमें इंटरनेशनल के मूल सिद्धान्त—एकजुटता—की बात सोचनी चाहिए। तमाम देशों के तमाम मेहनतकश लोगों के बीच इस जीवनदायी सिद्धान्त को दृढ़ आधार पर स्थापित करके ही हम अपने लिए निर्धारित महान लक्ष्य को पूरा कर सकते हैं। क्रांति को एकजुटता की ज़रूरत है और हमारे सामने इसकी एक बहुत बड़ी मिसाल पेरिस कम्यून के रूप में मौजूद है जिसका पतन इसलिए हुआ कि तमाम केंद्रों में, बर्लिन में, मैड्रिड में तथा अन्यत्र एकसाथ एक ऐसे महान क्रान्तिकारी आन्दोलन की आग नहीं भड़की जो पेरिस के सर्वहारा के विप्लव के स्तर तक पहुंच पाता।

जहां तक मेरा सम्बन्ध है, मैं तमाम मेहनतकश लोगों के बीच भविष्य में भी यह फलप्रद एकजुटता स्थापित करने के लिए प्रयत्न करता रहूंगा तथा अडिगतापूर्वक कार्य करता रहूंगा। मैं इंटरनेशनल से कदापि नहीं हट रहा हूं। और अपने पूर्व प्रयासों की तरह मेरा शेष जीवन भी सामाजिक विचारों की विजय के लिए अर्पित रहेगा जिनके परिणामस्वरूप—और आप इसे निश्चित समझें—सर्वहारा की विश्वव्यापी विजय होकर रहेगी।

१५ सितम्बर १८७२ को «*La Liberté*» के अंक ३७ तथा २ अक्तूबर १८७२ को «*Der Volksstaat*» के अंक ७९ में प्रकाशित। अंग्रेज़ी से अनूदित।

फ़ेडरिक एंगेल्स

आवास प्रश्न

१८८७ के दूसरे संस्करण की भूमिका

"आवास प्रश्न" शीर्षक कृति में वे तीन लेख हैं जो मैंने १८७२ में लाइपज़िग के अख़बार *«Volksstaat»*[50] के लिए लिखे थे। यह ठीक उस समय की बात है जब करोड़ों फ़्रांसीसी फ़्रांक जर्मनी में प्रवाहित होने लगे थे[51] — सरकारी ऋणों की अदायगी की गयी, क़िलों और बैरेकों का निर्माण हुआ, हथियारों और युद्ध सामग्री के ज़खीरों का नवीकरण किया गया; उपलब्ध पूंजी, प्रचलित मुद्रा की ही तरह, एकाएक विपुल मात्रा में बढ़ गयी; और यह सब ऐसे समय हुआ जब जर्मनी "संयुक्त साम्राज्य" के रूप में ही नहीं, वरन् एक बहुत बड़ी औद्योगिक शक्ति के रूप में विश्व मंच पर प्रकट हो रहा था। इन करोड़ों फ़्रांकों ने उसके नवजात बड़े उद्योग को सशक्त प्रेरणा दी; सर्वोपरि ये फ़्रांक ही युद्ध के बाद की अल्पकालीन, भ्रमों से परिपूर्ण समृद्धि काल के लिए तथा उसके फ़ौरन बाद, १८७३–१८७४ में उस जबर्दस्त दिवाला के लिए ज़िम्मेदार थे जिसके ज़रिए जर्मनी ने अपने को विश्व मंडी में अपने पांवों पर टिकने में समर्थ औद्योगिक देश सिद्ध किया।

जिस अवधि में पुरानी संस्कृति वाला कोई देश मैनुफ़ेक्चर तथा छोटे पैमाने के उत्पादन से बड़े पैमाने के उद्योग में संक्रमण करता है, ऐसा संक्रमण करता है जिसे इस तरह की अनुकूल परिस्थितियां त्वरित करती हों, वह "आवास की कमी" की भी अवधि होती है। एक ओर देहाती श्रमिक सहसा बहुत बड़ी तादाद में बड़े शहरों की ओर खिंचे आते हैं जो औद्योगिक केन्द्र बन जाते हैं; दूसरी ओर इन पुराने शहरों में मकान-निर्माण व्यवस्था बड़े पैमाने के नये उद्योग और

उसी हिसाब से बढ़नेवाले यातायात के अनुरूप नहीं रह जाती। सड़कें चौड़ी की जाती हैं, नयी सड़कें बनायी जाती हैं, ठीक शहरों के बीच रेलवे लाइनें बिछायी जाती हैं। ठीक उसी समय, जब मजदूरों की भारी भीड़ शहरों में पहुंचती रहती है, मजदूर बस्तियां बहुत बड़े पैमाने पर गिरा दी जाती हैं। इसलिए मजदूरों, छोटे व्यवसायियों और दस्तकारों के लिए, जो ग्राहकों के मामलों में मजदूरों पर निर्भर करते हैं, आवास की सहसा कमी हो जाती है। उन शहरों में, उदाहरण के लिए मैनचेस्टर, लीड्स, ब्रैडफ़ोर्ड, बार्मेन-एल्बेरफ़ेल्ड में, जो शुरू से ही औद्योगिक केन्द्रों के रूप में विकसित हुए, आवास की कमी सर्वथा अज्ञात होती है। दूसरी ओर लन्दन, पेरिस, बर्लिन, वियेना में इस कमी ने अपने समय में विकट रूप धारण किया था और तब से अधिकतर उसका यही स्वरूप क़ायम रहा है।

इसलिए उस समय से आवास की इसी विकट कमी को लेकर, जर्मनी में हो रही औद्योगिक क्रान्ति के इस लक्षण को लेकर अख़बारों में "आवास प्रश्न" पर व्यापक बहस छिड़ गयी। इन्होंने हर तरह की सामाजिक नीम-हकीमी को जन्म दिया। इस तरह के लेखकों ने *«Volksstaat»* में भी स्थान प्राप्त कर लिया। अज्ञात लेखक ने, जो आगे चलकर व्युर्टेम्बेर्ग के अ० म्यूलबर्गर एम० डी० सिद्ध हुए, प्रूदों के सामाजिक रामबाण के बारे में जर्मन मजदूरों को इस साधन के माध्यम से प्रबुद्ध करने के लिए यह अवसर अनुकूल समझा।[52] मैंने ये विचित्र लेख प्रकाशन के लिए स्वीकार किये जाने के बारे में जब सम्पादकों के सामने आश्चर्य प्रकट किया तो उन्होंने मुझे उनका उत्तर देने की चुनौती दी जिसे मैंने स्वीकार कर लिया (देखें भाग १, 'प्रूदों आवास प्रश्न किस तरह हल करते हैं')। इस लेखमाला के तुरंत बाद एक दूसरी लेखमाला छपी जिसमें मैंने डा० एमिल जाक्स[53] की एक कृति के आधार पर इस प्रश्न के बारे में लोकोपकारी-पूंजीवादी दृष्टिकोण का विवेचन किया (देखें भाग २, 'पूंजीपति वर्ग आवास प्रश्न किस तरह हल करता है')। काफ़ी लम्बी चुप्पी के बाद डा० म्यूलबर्गर ने मेरे लेखों का उत्तर देने का मुझे सम्मान प्रदान किया[54] और इस चीज ने मुझे प्रत्युत्तर देने के लिए बाधित किया (देखें भाग ३, 'प्रूदों तथा आवास प्रश्न पर परिशिष्ट'); इसके साथ वाद-विवाद तथा इस प्रश्न पर मेरा अध्ययन-कार्य समाप्त हो गया। यही इन तीन लेखमालाओं के मूल का इतिहास है जो पृथक पुस्तिका के रूप में भी प्रकाशित हो चुकी है। यदि अब इसका नया संस्करण निकालना आवश्यक हो गया है तो मैं इसके लिए निस्सन्देह जर्मन सरकार की शुभचिन्ता के लिए

आभारी हूं जिसने उस पर पाबन्दी लगाकर स्वभावतया उसकी बिक्री में ज़बर्दस्त वृद्धि कर दी। और मैं इस सुयोग का लाभ उठाकर उसे आदर के साथ धन्यवाद देना चाहता हूं।

मैंने इस नये संस्करण के लिए पाठ सामग्री संशोधित की है; कुछ परिवर्द्धन किया है, टिप्पणियां भी जोड़ी हैं तथा पहले भाग में आर्थिक विषय-सम्बन्धी एक मामूली ग़लती शुद्ध की है जिसे मेरे विरोधी डा० म्यूलबर्गर दुर्भाग्य से नहीं देख पाये। इसे संशोधित करते समय मुझे यह आभास हुआ कि अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर वर्ग आन्दोलन ने गत चौदह वर्षों के दौरान कितनी ज़बर्दस्त प्रगति की है। उस समय तक यह एक तथ्य था कि "बीस वर्षों तक रोमांस भाषाएं बोलनेवाले मज़दूरों के पास प्रूदों की कृतियों के अलावा और कोई मानसिक आहार नहीं था"* बशर्ते "अराजकतावाद" के जनक बकूनिन द्वारा, जिनकी दृष्टि में प्रूदों "हम सब के अध्यापक", notre maître à nous tous, हैं, प्रूदोंपंथ की इकतरफ़ा व्याख्या को ध्यान में न रखा जाये। भले ही फ़्रांस में प्रूदोंपंथियों का मज़दूरों के बीच छोटा-सा पंथ रहा हो, केवल वे ही ऐसे लोग थे जिनके पास निश्चित रूप से निरूपित एक कार्यक्रम था और जो कम्यून के अन्दर आर्थिक क्षेत्र का नेतृत्व ग्रहण करने में समर्थ रहे। बेल्जियम में प्रूदोंपंथ का वालोन के मज़दूरों के बीच निर्विवाद बोलबाला था और स्पेन तथा इटली में मज़दूर वर्ग आन्दोलन में चन्द अपवादों को छोड़कर वह जो अराजकतावादी नहीं था, निर्विवाद रूप में पूदोंपंथी था। और आज? फ़्रांस में प्रूदोंपंथ का मज़दूरों के बीच से पूरी तरह सफ़ाया हो चुका है; उसके केवल आमूल परिवर्तनवादी पूंजीपतियों तथा निम्नपूंजीपतियों के बीच ही समर्थक हैं जो अपने को प्रूदोंपंथियों की ही तरह "समाजवादी" कहते हैं लेकिन जिनके विरुद्ध समाजवादी मज़दूर पूरे जोश के साथ संघर्ष कर रहे हैं। बेल्जियम में फ़्लेमिंग्सों ने वालोनों को आन्दोलन के नेतृत्व से बाहर निकाल फेंका है, प्रूदोंपंथ को दूर फेंक दिया है और आन्दोलन का स्तर बहुत ऊपर उठा दिया है। इटली की तरह स्पेन में भी आठवें दशक की अराजकतावादी लहरें पीछे हट गयी हैं और वे अपने साथ प्रूदोंपंथ के अवशेषों को बहा ले गयी हैं। यदि इटली में नयी पार्टी अभी निर्माण की प्रक्रिया से गुज़र रही है तो स्पेन में छोटा-सा केन्द्रक – नया मैड्रिड फ़ेडरेशन – जो इंटरनेशनल की जनरल कौंसिल के प्रति वफ़ादार रहा, अब विकसित होकर एक शक्तिशाली पार्टी

* देखें प्रस्तुत खण्ड। – सं०

बन गया है जो – जैसा कि स्वयं जनतंत्रवादी अखबारों से पता चलता है – मज़दूरों पर पूंजीवादी जनतंत्रवादियों का प्रभाव अपने कोलाहलकारी अराजकतावादी पूर्ववर्तियों की तुलना में कहीं अधिक कारगर ढंग से नष्ट कर रहा है। लैटिन मज़दूरों के बीच प्रूदों की विस्मृत कृतियों का स्थान 'पूंजी', 'कम्युनिस्ट घोषणापत्र' तथा मार्क्सवादी चिन्तनधारा की कई अन्य कृतियों ने ले लिया है। मार्क्स की मुख्य मांग – एकच्छत्र राजनीतिक सत्ता प्राप्त कर सर्वहारा द्वारा समाज के नाम पर उत्पादन के समस्त साधनों का हस्तगतकरण – अब लैटिन देशों में भी पूरे क्रान्तिकारी मज़दूर वर्ग की मांग बन गयी है।

इसलिए यदि प्रूदोंपंथ को लैटिन देशों के मज़दूरों के बीच से अन्तिम रूप से मिटाया जा चुका है, यदि वह – अपनी वास्तविक नियति के अनुसार – फ़्रांसीसी, स्पेनिश, इतालवी तथा बेल्जियाई पूंजीवादी आमूल परिवर्तनवादियों की पूंजीवादी तथा निम्न-पूंजीवादी आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति के रूप में केवल उनकी सेवा करता है तो आज फिर क्यों उसकी ओर लौटा जाये? इन लेखों को दुबारा छाप कर क्यों एक मृत शत्रु से दुबारा लड़ा जाये?

सबसे पहले इसलिए कि ये लेख प्रूदों तथा उनके जर्मन प्रतिनिधि के साथ वाद-विवाद तक सीमित नहीं हैं। मार्क्स तथा मेरे बीच विद्यमान श्रम विभाजन के फलस्वरूप हम लोगों के विचारों को पत्र-पत्रिकाओं में – इसलिए, ख़ास तौर पर विरोधी दृष्टिकोणों के विरुद्ध संघर्ष में – प्रस्तुत करने का काम मेरे हिस्से आया ताकि मार्क्स को अपने महान आधारभूत कार्य के विशदीकरण के लिए समय मिल सके। दूसरी तरह के विचारों के विरुद्ध हमारे विचारों को अधिकतर वाद-विवाद के रूप में प्रस्तुत करना मेरे लिए आवश्यक बन गया। यही इस मामले में भी हुआ। भाग एक तथा तीन में प्रश्न के विषय में प्रूदों की अवधारणों की आलोचना ही नहीं है अपितु उसमें हमारी अपनी अवधारणाएं भी प्रस्तुत की गयी हैं।

दूसरे, प्रूदों ने यूरोपीय मज़दूर वर्ग के आन्दोलन में इतनी अधिक महत्वपूर्ण भूमिका अदा की कि उन्हें आसानी से विस्मृति के गर्त में नहीं धकेला जा सकता। वह सिद्धान्त की दृष्टि से ग़लत साबित हो चुके हैं और व्यवहार की दृष्टि से तिरस्कृत हो चुके हैं, फिर भी वह ऐतिहासिक दिलचस्पी का विषय बने हुए हैं। जो कोई आधुनिक समाजवाद का विस्तारपूर्वक अध्ययन करता है, उसे मज़दूर आन्दोलन में "विजित दृष्टिकोणों" से परिचित होना चाहिए। प्रूदों द्वारा सामाजिक सुधार के लिए व्यावहारिक प्रस्ताव प्रस्तुत किये जाने से कई वर्ष पहले ही मार्क्स की रचना 'दर्शन की दरिद्रता' प्रकट हो चुकी थी। इसमें मार्क्स प्रूदों के

विनिमय बैंक को भ्रूणावस्था में ही खोज सके तथा उसकी आलोचना कर सके थे। इसलिए इस दृष्टि से मेरी यह कृति मार्क्स की कृति का परिपूरक है हालांकि दुर्भाग्यवश यह पर्याप्त रूप से पूर्ण नहीं है। मार्क्स यह काम कहीं अधिक अच्छी तरह तथा कहीं अधिक आश्वस्तकारी ढंग से करते।

और आख़िरी चीज़, पूंजीवादी तथा निम्न-पूंजीवादी समाजवाद को जर्मनी में ठीक इस घड़ी तक सशक्त प्रतिनिधित्व प्राप्त है। एक ओर, उनका प्रतिनिधित्व काटेडेर-समाजवादी[55] तथा सब रंगों के लोकोपकारी कर रहे हैं जिनके बीच मज़दूरों की अपनी आवास स्थलियों का स्थायी स्वामी बनाने की इच्छा अब भी बड़ी भूमिका अदा कर रही है तथा इसलिए जिनके विरुद्ध मेरी पुस्तक अब भी सामयिक है। दूसरी ओर, स्वयं सामाजिक-जनवादी पार्टी, यही नहीं राइख़स्टाग दल की क़तारों तक में अब भी एक तरह के निम्न-पूंजीवादी समाजवाद को प्रतिनिधित्व प्राप्त है। वह यह रूप इस तरह ग्रहण करता है–जहां आधुनिक समाजवाद के आधारभूत सिद्धान्तों को तथा उत्पादन के सभी साधनों को सार्वजनिक स्वामित्व में रूपांतरित करना न्यायोचित माना जाता है, वहां यह भी घोषित किया जाता है कि इनकी पूर्ति दूर भविष्य में ही सम्भव है जो व्यवहारतः सर्वथा अगोचर है। इसलिए कहा जाता है कि फ़िलहाल तो सिर्फ़ सामाजिक पैवन्द लगाने का सहारा लेना पड़ेगा और परिस्थितियों के अनुसार "मेहनतकश वर्गों के" तथाकथित "उन्नयन" के लिए सर्वाधिक प्रतिक्रियावादी प्रयत्नों तक के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित की जा सकती है। इस प्रकार की प्रवृत्ति का अस्तित्व जर्मनी में, par excellence* कूपमंडूकता की धरती में सर्वथा अवश्यम्भावी है–विशेष रूप से ऐसे समय जब औद्योगिक विकास इस पुरानी तथा गहरी जड़ वाली कूपमंडूकता का उग्रतापूर्वक तथा बहुत बड़े पैमाने पर मूलोच्छेदन कर रहा है। परन्तु यह प्रवृत्ति हमारे मज़दूरों की उस विलक्षण सहज बुद्धि को देखते हुए आन्दोलन के लिए सर्वथा हानिरहित है जिसका परिचय वे समाजवादविरोधी क़ानून,[56] पुलिस तथा अदालतों के विरुद्ध गत आठ वर्षों के संघर्ष के दौरान इतने शानदार ढंग से दे चुके हैं। परन्तु स्पष्ट रूप से यह अनुभव करना आवश्यक है कि यह प्रवृत्ति मौजूद है। और आगे चलकर यदि यह प्रवृत्ति अधिक दृढ़ आकार तथा अधिक निश्चित रूपरेखा ग्रहण कर लेती है,–जो आवश्यक ही नहीं, वांछनीय भी है,–तो उसे अपने कार्यक्रम के निरूपण के लिए अपने पूर्ववर्तियों के

---

* मुख्यतया।–सं०

पास वापस जाना पड़ेगा और ऐसा करते समय वह शायद ही सूदों को नज़रंदाज़ कर सके।

"आवास प्रश्न" के लिए बड़े पूंजीपतियों तथा निम्नपूंजीपतियों दोनों के समाधानों का सारतत्व यह है कि मज़दूर के पास रहने के लिए अपना घर होना चाहिए। परन्तु यह एक ऐसा मुद्दा है जिसे पिछले बीस वर्षों के दौरान जर्मनी के औद्योगिक विकास ने बिल्कुल दूसरी रोशनी में दिखाया है। ऐसा और कोई देश नहीं है जहां उजरती मज़दूर के पास अपना घर ही नहीं, वरन् बाग़ या साथ ही खेत भी हो। इन मज़दूरों के अलावा ऐसे और बहुत-से मज़दूर भी हैं जिनके पास लगानदारों के रूप में घर, बाग़ या खेत भी हैं, जिन पर वे काफ़ी मजबूती से क़ाबिज़ हैं। सागबाड़ी अथवा छोटे पैमाने की खेती के साथ मिलकर ग्रामीण घरेलू उद्योग जर्मनी के बड़े पैमाने के नये उद्योग का व्यापक आधार बना हुआ है। पश्चिम में मज़दूर अधिकतर अपने घरों के स्वामी हैं तथा पूर्व में ये मुख्यतया किरायेदार हैं। हम घरेलू उद्योग को सागबाड़ी तथा खेती के साथ, और इसलिए सुरक्षित आवास के साथ मिला हुआ पाते हैं, और ऐसा वहीं नहीं है जहां हथबुनाई अब भी यांत्रिक करघे के विरुद्ध संघर्ष से जूझ रही है–लोवर राइनलैंड और वेस्टफ़ालिया में, सैक्सन एर्जगेबेर्गे और साइलीशिया में ही नहीं, वरन् उन सब स्थानों में भी–उदाहरण के लिए टुरिंगियन वन तथा रोन क्षेत्र में–मौजूद है जहां कोई न कोई घरेलू उद्योग अपने को ग्राम्य व्यवसाय के रूप में प्रतिष्ठापित कर चुका है। तम्बाकू की इजारेदारी पर वाद-विवाद के समय पता चला कि सिगार बनाने का काम बड़े पैमाने पर ग्राम्य घरेलू उद्योग के रूप में चल रहा है। जहां कहीं छोटे किसान की तंगहाली बढ़ती है–जैसा कि उदाहरण के लिए चन्द साल पहले आइफ़ेल[57] इलाक़े में हुआ–पूंजीवादी अख़बार तुरन्त एकमात्र उपचार के रूप में उपयोगी घरेलू उद्योग शुरू करने के लिए चीख़-पुकार मचाने लगते हैं। वस्तुतः जर्मन छोटे किसानों की बढ़ती हुई अभावग्रस्तता तथा जर्मन उद्योग में मौजूद आम स्थिति दोनों चीज़ें ग्राम्य उद्योग के सतत विस्तार का तक़ाज़ा करती हैं। यह जर्मनी का विशिष्ट लक्षण है। अपवाद के रूप में ही हमें फ़्रांस में भी इस जैसी कोई स्थिति देखने को मिलती है, इस तरह का अपवाद उदाहरण के लिए फ़्रांस के रेशम उत्पादन प्रदेश हैं। इंगलैंड में, जहां छोटे किसान नहीं हैं, ग्राम्य घरेलू उद्योग दिहाड़ीदार मज़दूरों के बीवी-बच्चों के श्रम पर अवलम्बित है। केवल आयरलैंड में ही हम पोशाक तैयार करनेवाले ग्राम्य घरेलू उद्योग को जर्मनी की तरह वास्तविक कृषक परिवारों द्वारा संचालित होते देखते

हैं। स्वभावतः हम यहां रूस तथा अन्य देशों की बात नहीं कर रहे हैं जिन्हें विश्व मंडी में प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं है।

इस तरह उद्योग के मामले में जर्मनी के व्यापक भू-क्षेत्रों में ऐसी हालत मौजूद है जो पहली नज़र में मशीनों के प्रचलन से पूर्व सामान्यतया व्याप्त हालत से मिलती-जुलती दिखायी देती है। परन्तु केवल पहली ही नज़र में ऐसा दिखायी देता है। पूर्ववर्ती काल के ग्राम्य घरेलू उद्योग, जो सागबाड़ी और खेती से जुड़ा हुआ था, कम से कम उन देशों में, जहां उद्योग विकसित हो रहा था, मज़दूर वर्ग के लिए सहनीय तथा यत्र-तत्र सुविधाजनक भौतिक स्थिति का आधार और साथ ही उसकी बौद्धिक और राजनीतिक नगण्यता का आधार था। हाथ की बनी वस्तु तथा उसकी लागत मंडी क़ीमत को निर्धारित किया करती थीं; श्रम उत्पादकता आज की तुलना में सर्वथा न्यून होने के कारण मंडी नियमतः पूर्ति की तुलना में अधिक तेज़ी के साथ विकसित होती थी। गत शताब्दी के लगभग मध्य तक इंगलैंड में और अंशतः फ़्रांस में — विशेष रूप से वस्त्र उद्योग के मामले में — यही होता रहा। परन्तु जर्मनी में, जिसने उस समय तीसवर्षीय युद्ध[58] की तबाही के बाद अत्यन्त प्रतिकूल परिस्थितियों के अन्तर्गत अपना पुनरुद्धार शुरू ही किया था, स्थिति निस्सन्देह सर्वथा भिन्न थी। उस समय जर्मनी का एकमात्र घरेलू उद्योग था लिनेन वस्त्र का बुनाई उद्योग, जो विश्व मंडी के लिए उत्पादन कर रहा था, वह करों तथा सामन्ती सेवाओं के भार से इतना दबा हुआ था कि उसने कृषक बुनकरों को शेष कृषक समुदाय के अत्यन्त निम्न जीवन स्तर से कभी ऊपर नहीं उठाया। फिर भी ग्रामीण औद्योगिक मज़दूर उस समय कुछ हद तक सुरक्षापूर्ण अस्तित्व का उपभोग कर रहा था।

मशीनों के प्रचलन पर यह सब बदल गया। अब मशीनों से निर्मित वस्तुएं क़ीमतें निर्धारित कर रही थीं तथा इस क़ीमत के साथ घरेलू औद्योगिक मज़दूर की उजरत घट गयी। परन्तु मजदूर को यह स्वीकार करना पड़ता था, वरना उसे किसी और काम की तलाश करनी पड़ती थी। और वह सर्वहारा बने बिना, अर्थात् अपना छोटा-सा घर, बाग़ या खेत — वह चाहे अपना हो या लगान पर हो — छोड़े बिना यह नहीं कर सकता था। बिरले ही मामलों में वह इसके लिए तैयार होता। इस तरह हाथ से काम करनेवाले पुराने देहाती बुनकरों की सागबाड़ी तथा खेती ऐसा कारण बन गया जिसके परिणामस्वरूप जर्मनी में यांत्रिक करघे के विरुद्ध हथकरघे का संघर्ष इतने लम्बे समय तक चलता रहा और उसका कोई निर्णायक अन्त नहीं हो सका। इस संघर्ष में ख़ास तौर पर इंगलैंड में पहली बार

यह चीज सामने आई कि जो परिस्थितियां पहले मजदूर की – अपने उत्पादन साधनों का स्वामी होने की – अपेक्षाकृत समृद्धि के आधार का काम देती थीं, वे ही अब उसके लिए अड़चन तथा बदकिस्मती का कारण बन गयीं। उद्योग के क्षेत्र में यांत्रिक करघे ने उसके हथकरघे को पराजित कर दिया, कृषि में छोटे पैमाने की खेती की तुलना में बड़े पैमाने की खेती का पलड़ा भारी हो गया। परन्तु जहां बहुत-से लोगों का सामूहिक श्रम तथा मशीनों और विज्ञान का उपयोग उत्पादन के दोनों क्षेत्रों में सामाजिक नियम बन गये, वहां मजदूर को उसके मकान, बाग़, खेत तथा हथकरघे ने निजी उत्पादन की पुरानी पड़ चुकी विधियों और हाथ से किये जानेवाले श्रम के साथ बांधा रखा। घर और बाग़ का स्वामित्व अब इधर-उधर जाने की पूर्ण स्वतंत्रता से कहीं कम लाभप्रद था। कोई भी कारख़ाना मजदूर हाथ से काम करनेवाले देहाती बुनकर की जगह लेने को तैयार नहीं था जो धीरे-धीरे परन्तु निश्चित रूप से भूख से मर रहा था।

जर्मनी ने विश्व मंडी में देर से प्रवेश किया। हमारे बड़े पैमाने के उद्योग का इतिहास पांचवें दशक से शुरू होता है। उसे पहली उत्प्रेरणा १८४८ की क्रांति से मिली और वह १८६६ तथा १८७० की क्रांतियों[59] द्वारा अपने रास्ते से सबसे विकट राजनीतिक बाधाएं दूर किये जाने के बाद ही पूरी तरह विकसित हो सका। परन्तु उसने दूसरों को विश्व मंडी पर पहले से ही काफ़ी हद तक छाया हुआ पाया। व्यापक ख़पत वाली वस्तुओं की इंगलैंड तथा परिष्कृत विलास सामग्रियों की पूर्ति फ़्रांस कर रहा था। जर्मनी क़ीमत के मामले में इंगलैंड को तथा गुण के मामले में फ़्रांस को परास्त नहीं कर सकता था। इसलिए फ़िलहाल इसके अलावा और कोई रास्ता नहीं था कि जर्मन उत्पादन के घिसे-पिटे रास्ते पर चल कर पहले अपनी उन वस्तुओं को लेकर विश्व मंडी में घुसे जो अंग्रेज़ों के लिए बहुत घटिया और फ़्रांसीसियों के लिए बहुत ही अनगढ़ थीं। निस्सन्देह धोखा देने की जर्मन प्रथा को – पहले बढ़िया नमूने और फिर उसके बाद घटिया माल भेजना – जल्द विश्व मंडी में पर्याप्त रूप से कड़ी सज़ा भुगतनी पड़ी और उसका लगभग परित्याग कर दिया गया। दूसरी ओर अत्युत्पादन में प्रतियोगिता के कारण विश्वसनीय अंग्रेज़ों तक को धीरे-धीरे घटिया क़िस्म के उत्पादन का रास्ता पकड़ना पड़ा और इस तरह जर्मनों को लाभप्रद स्थिति प्रदान प्राप्त हुई जिन्हें इस क्षेत्र में कोई हरा नहीं सकता। इस तरह हम अन्ततः बड़े पैमाने का उद्योग हासिल कर सके तथा विश्व मंडी में निश्चित भूमिका अदा कर सके। परन्तु हमारा बड़े पैमाने का उद्योग विशिष्ट रूप से घरेलू मंडी के लिए काम

करता है (लौह उद्योग को छोड़कर जो घरेलू मंडी की आवश्यकता से कहीं अधिक उत्पादित करता है) और हमारे अधिकांश निर्यात में विशाल परिमाण में छोटी-छोटी वस्तुएं होती हैं, जिनके लिए बड़े पैमाने का उद्योग हद से हद अर्द्धतैयार माल मुहैया करता है जबकि स्वयं इन छोटी वस्तुओं की पूर्ति मुख्यतया ग्राम्य घरेलू उद्योग करता है।

यहीं आधुनिक मज़दूर के लिए मकान तथा भूस्वामित्व का "वरदान" अपनी पूरी भव्यता के साथ दिखायी देता है। जर्मन घरेलू उद्योगों में जितनी कम शर्मनाक मज़दूरी दी जाती है, उतनी और शायद कहीं नहीं दी जाती, शायद आयरिश घरेलू उद्योगों तक में नहीं। मजदूर का परिवार अपने छोटे-से बाग़ या खेत से जो कुछ कमाता है, उसे पूंजीपति प्रतियोगिता का लाभ उठाकर मज़दूर की श्रम शक्ति की क़ीमत से काट लेता है। मज़दूर को जो भी उजरत दी जाती है उसे स्वीकार करने के लिए वह विवश होता है; एक तो इसलिए कि ऐसा न करने पर उन्हें कुछ भी नहीं मिलेगा और वे अपनी खेती की उपज के सहारे ही ज़िन्दा नहीं रह सकते और दूसरे इसलिए कि यही खेती तथा भूस्वामित्व उन्हें अपने स्थान से बांधे रखते हैं तथा कोई दूसरा रोज़गार तलाश करने के लिए इधर-उधर नहीं देखने देते। यह है वह आधार जो छोटी-छोटी वस्तुओं की एक पूरी शृंखला में विश्व मंडी में प्रतियोगिता करने की जर्मन क्षमता को बरक़रार रखता है। **पूंजी पर पूरा मुनाफ़ा सामान्य मजदूरी से काटा जाता है तथा पूरा अतिरिक्त मूल्य खरीददार को भेंट किया जा सकता है।** अधिकांश निर्यातित जर्मन वस्तुओं के असाधारण रूप से सस्ते होने का यही रहस्य है।

अन्य तमाम परिस्थितियों की तुलना में यही परिस्थिति अन्य औद्योगिक क्षेत्रों में भी जर्मन मज़दूरों की रहन-सहन की अवस्थाओं को पश्चिम यूरोपीय देशों से नीचे रखने के लिए अधिक उत्तरदायी है। श्रम की ऐसी क़ीमतों का, जिन्हें श्रम-शक्ति के मूल्य से परम्परागत रूप से कहीं नीचे रखा जाता है, सारा भार शहरी मज़दूरों, यहां तक कि बड़े शहरों तक में मज़दूरों की मज़दूरी को श्रम-शक्ति के मूल्य से नीचे दबाकर रखता है। यह इसलिए और भी ज्यादा होता है कि शहरों में भी निम्न मज़दूरी वाले घरेलू उद्योग ने पुरानी दस्तकारियों का स्थान ले लिया है और यहां भी मज़दूरी का आम स्तर और दब जाता है।

यहां हम स्पष्ट रूप से देखते हैं कि पूर्ववर्ती ऐतिहासिक मंज़िल में जो वस्तु मज़दूरों की अपेक्षाकृत समृद्धि का—अर्थात् कृषि का उद्योग से सम्बन्ध, मकान, बाग़, खेत तथा निस्सन्देह आवास-स्थल के स्वामित्व का—आधार थी, वह आज,

बड़े उद्योग के प्रभुत्व के अन्तर्गत मजदूर के लिए सबसे विकट बाधक ही नहीं, वरन् पूरे मजदूर वर्ग के लिए सबसे बड़ी बदक़िस्मती भी बनती जा रही है, पृथक-पृथक ज़िलों में तथा उत्पादन की अलग-अलग शाखाओं में ही नहीं, वरन् पूरे देश में भी मजदूरी को सामान्य स्तर से बेमिसाल नीचे रखे जाने का आधार बनती जा रही है। इसलिए यदि बड़े तथा निम्नपूंजीपति, जो मज़दूरी से इन असामान्य कटौतियों पर जीवित रहते हैं तथा उनसे अमीर बनते हैं, घरेलू उद्योग के लिए तथा इस बात के लिए उत्सुक हैं कि मजदूर अपने मकानों के मालिक हों और यदि वे यह मानते हैं कि नये घरेलू उद्योगों की स्थापना समस्त ग्रामीण विपत्तियों को दूर करने का एकमात्र उपचार है तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है!

यह मामले का एक पहलू है, परन्तु इसका उल्टा पहलू भी है। घरेलू उद्योग जर्मनी के निर्यात उद्योग और इसलिए बड़े पैमाने के पूरे उद्योग का व्यापक आधार बन गया है। इस वजह से वह जर्मनी के व्यापक क्षेत्रों में फैला तथा अब भी रोज़ फैलता जा रहा है। छोटे किसान की बर्बादी, जो उस समय से अवश्यम्भावी थी जब से अपने इस्तेमाल के लिए उसके औद्योगिक घरेलू उत्पादन को सस्ते तैयारशुदा वस्त्र उत्पादों तथा मशीनी उत्पादों ने उसी तरह नष्ट किया जिस तरह मार्क-प्रणाली[60] की समाप्ति ने, समान मार्क और अनिवार्य सस्यावर्तन के ख़ात्मे ने उसके पशुधन को और इस कारण खाद-उत्पादन को नष्ट किया था—यह बर्बादी सूदख़ोर का शिकार बननेवाले छोटे किसान को बलपूर्वक आधुनिक घरेलू उद्योग के पास पहुंचाती है। आयरलैंड में ज़मींदार के लगान की तरह जर्मनी में गिरवी रखनेवाले सूदख़ोर का ब्याज भी जमीन की उपज से अदा नहीं किया जा सकता, उसे तो केवल औद्योगिक किसान की मज़दूरी से ही चुकाया जा सकता है। घरेलू उद्योग के विस्तार के साथ एक के बाद दूसरा कृषक क्षेत्र वर्तमान युग के औद्योगिक विकास की ओर खिंचता आ रहा है। घरेलू उद्योग द्वारा ग्राम्य क्षेत्रों का यही वह क्रांतिकरण है जो औद्योगिक क्रांति को इंगलैंड तथा फ़्रांस की तुलना में जर्मनी में कहीं अधिक व्यापक क्षेत्र में फैला रहा है। यह हमारे उद्योग का ठीक अपेक्षाकृत निम्न स्तर ही उसके क्षेत्रीय विस्तार को और भी आवश्यक बना देता है। यही कारण है कि इंगलैंड तथा फ़्रांस के विपरीत जर्मनी में क्रांतिकारी मजदूर वर्ग आन्दोलन विशिष्ट रूप से शहरी केंद्रों तक सीमित रहने के बजाय देश के अधिकांश भाग में इतने प्रचंड रूप से बढ़ा है। यही चीज़ आन्दोलन की शान्त, निश्चित तथा अरोध्य अग्रगति के कारण पर प्रकाश डालती है। यह सर्वथा

६*

स्पष्ट है कि जर्मनी में राजधानी तथा अन्य बड़े नगरों में विजयी विप्लव तभी सम्भव होगा जब अधिकांश छोटे शहर तथा ग्राम्य ज़िलों का अधिकांश भाग क्रांतिकारी परिवर्तन के लिए परिपक्व हो जायेंगे। न्यूनाधिक सामान्य विकास की स्थिति में हम मज़दूर वर्ग की वैसी विजयें हासिल करने की स्थिति में कभी नहीं होंगे जो १८४८ तथा १८७१ में पेरिसवासियों ने हासिल की थीं। लेकिन ठीक इसी कारण हमें प्रतिक्रियावादी प्रान्तों के हाथों क्रांतिकारी राजधानी की पराजय भी नहीं झेलनी पड़ेगी जो पेरिस ने दोनों मौक़ों पर झेली थी। फ़्रांस में आन्दोलन का जन्म सदैव राजधानी से हुआ; जर्मनी में उसका जन्म बड़े उद्योग, मैनुफ़ेक्चर तथा घरेलू उद्योग के ज़िलों में हुआ; राजधानी पर बाद में ही विजय पायी गयी। इसलिए हो सकता है कि भविष्य में भी शायद पहल फ़्रांसीसियों के हाथ में रहे, लेकिन निर्णायक विजय जर्मनी में ही हो सकती है।

परन्तु यह ग्राम्य घरेलू उद्योग तथा मैनुफ़ेक्चर, जो अपने विस्तार के कारण जर्मन उत्पादन की निर्णायक शाखा बन गये हैं और इस तरह जर्मन कृषक समुदाय का अधिकाधिक क्रांतिकरण कर रहे हैं, आगे के क्रांतिकारी परिवर्तन की अभी प्रारम्भिक मंज़िल ही हैं। जैसा कि मार्क्स सिद्ध कर चुके हैं ('पूंजी', खंड १, तृतीय संस्करण, पृष्ठ ४८४–४९५), विकास की एक ख़ास मंज़िल पर मशीनों तथा कारख़ाना उत्पादन के कारण उसके लिए भी मौत की घड़ी बन जायेगी। और उस घड़ी की आवाज़ निकट ही है। परन्तु जर्मनी में ग्राम्य घरेलू उद्योग और मैनुफ़ेक्चर को मशीनों तथा कारख़ाना उत्पादन द्वारा नष्ट किये जाने का अर्थ है लाखों-लाख ग्राम्य उत्पादकों की आजीविका का चौपट किया जाना, छोटे जर्मन कृषक समुदाय के लगभग आधे भाग का सम्पत्तिहरण, घरेलू उद्योग का कारख़ाना उत्पादन में ही नहीं, अपितु कृषक अर्थव्यवस्था का बड़े पैमाने की पूंजीवादी कृषि में तथा छोटी भूसम्पत्ति का बड़ी जागीरों में रूपान्तरण – यह किसानों की बलि देकर पूंजी तथा बड़े भूस्वामित्व के पक्ष में औद्योगिक तथा कृषि क्रांति होगी। यदि जर्मनी की क़िस्मत में यही बदा है कि वह पुरानी सामाजिक अवस्थाओं के अन्तर्गत रहते हुए ही इस रूपान्तरण के बीच से गुज़रे तो वह निर्विवाद रूप से एक परिवर्तन-बिन्दु होगी। यदि उस समय तक किसी और देश का मज़दूर वर्ग पहल नहीं करेगा तो जर्मनी यक़ीनन पहले प्रहार करेगा और "यशस्वी सेना" के कृषक बेटे वीरतापूर्वक सहायता देने के लिए आगे बढ़ेंगे।

इस तरह पूंजीवादी तथा निम्न-पूंजीवादी कल्पना – जो प्रत्येक मज़दूर को अपने छोटे-से घर का स्वामित्व प्रदान करेगी तथा इस तरह उसे अर्द्धसामन्ती ढंग

से अपने पूंजीपति विशेष के साथ बंधी हुई रखेगी – अत्यन्त भिन्न रूप ग्रहण कर लेती है। उसके साकार होने के बदले जो चीज़ें सामने आती हैं, वे हैं – सारे छोटे ग्राम्य मकान मालिकों का औद्योगिक घरेलू मज़दूरों में रूपान्तरण; पुराने अलगाव का ध्वंस, उसके साथ छोटे किसानों की, जो "सामाजिक भंवर" में खींच लिये जाते हैं, राजनीतिक नगण्यता का ध्वंस; औद्योगिक क्रांति का ग्राम्य क्षेत्रों में विस्तार और इस तरह आबादी के सबसे गतिहीन तथा सबसे अनुदारवादी भाग का क्रांतिकारी सरगर्म अड्डे में रूपान्तरण; और इन सब के चरम बिन्दु के रूप में घरेलू उद्योग में जुटे किसानों का मशीनों द्वारा सम्पत्तिहरण, जिन्हें वे बलपूर्वक विप्लव की गोद में धकेलती हैं।

हम पूंजीवादी-समाजवादी लोकोपकारियों को अपने आदर्शों का तब तक सहर्ष आनन्द लेने दे सकते हैं जब तक वे इसे पूरा करने के लिए पूंजीपतियों के रूप में अपना सामाजिक कार्य अपने हितों के विरुद्ध और सामाजिक क्रान्ति के लाभार्थ तथा अग्रगति के हेतु जारी रखेंगे।

लन्दन, १० जनवरी १८८७ **फ़्रेडरिक एंगेल्स**

१५ तथा २२ जनवरी १८८७ को *«Der Sozial-demokrat»* के अंक ३ तथा ४ में और फ़्रेडरिक एंगेल्स की पुस्तक *«Zur Wohnungsfrage»* (Hottingen—Zürich, 1887) में प्रकाशित।

अंग्रेज़ी से अनूदित।

फ्रेडरिक एंगेल्स

आवास प्रश्न

भाग १

प्रूदों आवास प्रश्न किस तरह हल करते हैं

«Volksstaat» के अंक १० तथा आगे के अंकों में आवास प्रश्न पर एक लेखमाला प्रकाशित हुई है जिसमें छः लेख हैं। ये लेख केवल इस कारण ध्यान देने योग्य हैं कि वे (पांचवें दशक की बहुत पहले ही विस्मृत कुछ अर्द्ध-गल्प-साहित्यिक रचनाओं को छोड़कर) प्रूदोंपंथ को जर्मनी में प्रत्यारोपित करने का पहला प्रयास है। यह जर्मन समाजवाद के पूरे विकास प्रवाह की, जिसने २५ वर्ष पहले ही ठीक प्रूदोंपंथी विचारों पर निर्णायक प्रहार किया था,* तुलना में उलटी दिशा में इतना बड़ा पग है कि इस प्रयास का तुरन्त उत्तर देना उचित है।

आवास की तथाकथित कमी, जिसकी ओर इन दिनों अख़बारों में इतना अधिक ध्यान दिया जा रहा है, इस तथ्य में निहित नहीं है कि मज़दूर वर्ग सामान्यतया ख़राब, भीड़भरे तथा अस्वास्थ्यकर घरों में रहता है। **यह** कमी कोई वर्तमान युग की ही विशिष्टता नहीं है; यह कोई ऐसी एक तक़लीफ़ भी नहीं है जो तमाम पूर्ववर्ती उत्पीड़ित वर्गों के विपरीत केवल आधुनिक सर्वहारा के लिए ही अभिलाक्षणिक हो। इसके विपरीत हम कह सकते हैं कि समस्त युगों में समस्त उत्पीड़ित वर्गों ने इसे भोगा है। आवास की **इस** कमी को दूर करने का **एक ही** साधन है – मेहनतकश वर्ग का सत्तारूढ़ वर्ग द्वारा किये जानेवाले शोषण तथा उत्पीड़न का पूरी तरह ख़ात्मा कर देना। आज आवास की कमी का जो

---

* मार्क्स, 'दर्शन की दरिद्रता', ब्रसेल्स तथा पेरिस, १८४७।

अर्थ लगाया जाता है, वह है आबादी के सहसा बड़े शहरों की ओर बढ़ने के फलस्वरूप मज़दूरों की यों भी ख़राब आवास अवस्थाओं का विशेष रूप से और बिगड़ जाना; मकान भाड़े में अपरिमित वृद्धि, पृथक-पृथक घरों में और ज्यादा भीड़-भाड़ तथा कुछ के रहने के लिए जगह पाना ही असम्भव हो जाना। आवास की इस कमी की केवल इसलिए इतनी ज़्यादा चर्चा हो रही है कि यह मज़दूर वर्ग तक सीमित नहीं है अपितु उसका निम्नपूंजीपति वर्ग पर भी असर पड़ा है।

आवास की कमी, जिससे हमारे बड़े आधुनिक शहरों में मज़दूर तथा निम्नपूंजीपति वर्ग का एक भाग पीड़ित है, उन अनगिनत, **अपेक्षाकृत छोटी**, आनुषंगिक बुराइयों में से एक है जिन्हें उत्पादन की आधुनिक पूंजीवादी पद्धति जन्म देती है। यह पूंजीपति द्वारा मज़दूर का मज़दूर **के रूप में** शोषण का प्रत्यक्ष फल कदापि नहीं है। यह शोषण ही वह मूल बुराई है जिसे सामाजिक क्रान्ति उत्पादन की पूंजीवादी पद्धति का उन्मूलन कर मिटा देना चाहती है। उत्पादन की पूंजीवादी पद्धति की आधारशिला यह तथ्य है कि हमारी वर्तमान सामाजिक व्यवस्था पूंजीपति को मज़दूर की श्रम शक्ति को उसके मूल्य पर ख़रीदने परन्तु उससे कहीं अधिक वसूल करने में समर्थ बनाती है। इसे पूंजीपति मज़दूर से उससे कहीं अधिक समय तक काम कराके हासिल करता है जो श्रम शक्ति के लिए चुकायी जानेवाली क़ीमत के पुनरुत्पादन के लिए आवश्यक होता है। इस ढंग से उत्पादित अतिरिक्त मूल्य पूंजीपतियों और ज़मींदारों तथा उनके वेतनभोगी नौकर-चाकरों के बीच – पोप और सम्राट से लेकर रात को चौकीदारी करनेवालों, आदि के बीच – वितरित हो जाता है। हमारा यहां इस चीज़ से सरोकार नहीं है कि यह वितरण कैसे होता है। परन्तु इतना निश्चित है कि वे सब, जो काम नहीं करते, इस अतिरिक्त मूल्य से होनेवाली प्राप्ति के सहारे ही जीवित रह सकते हैं जो उनके पास किसी भी रूप में पहुंचती है। (कार्ल मार्क्स की '**पूंजी**' देखें जिसमें इसे पहली बार प्रतिपादित किया गया था।)

मज़दूर वर्ग जिस अतिरिक्त मूल्य का उत्पादन करता है तथा जो उसे कुछ भुगतान किये बिना उससे छीन लिया जाता है, उसका ग़ैर मेहनतकश वर्गों के बीच अत्यन्त शिक्षाप्रद झगड़ों और पारस्परिक धोखाधड़ी के बीच वितरण होता है। चूंकि यह वितरण क्रय और विक्रय के माध्यम से होता है इसलिए इसकी एक प्रमुख विधि यह है कि बेचनेवाला ख़रीदनेवाले को ठगता है; और ख़ास तौर पर बड़े शहरों में ख़ुदरा व्यापार में यह चीज़ बेचनेवाले के अस्तित्व के लिए मूल शर्त बन गयी है। परन्तु अगर मज़दूर को पंसारी या नानबाई क़ीमत में

या माल के गुण के मामले में ठगता है तो ऐसा उसके साथ मज़दूर होने की ख़ास हैसियत के कारण नहीं होता। इसके विपरीत ठगी की एक निश्चित मात्रा ज्यों ही किसी जगह सामाजिक नियम बन जाती है, वहां अन्ततोगत्वा उसकी पूर्ति मज़दूरी में उसी हिसाब से वृद्धि करके करनी पड़ती है। मज़दूर दुकानदार के सामने ख़रीददार के रूप में, यानी धन या उधार के पैसे के मालिक के रूप में पहुंचता है, मज़दूर के यानी श्रम शक्ति बेचनेवाले के रूप में कदापि नहीं। ठगी दौलतमन्द सामाजिक वर्गों की तुलना में उस पर और पूरे सम्पत्तिहीन वर्ग पर अधिक चोट कर सकती है परन्तु वह ऐसी बुराई नहीं है जो केवल उसी पर चोट करती हो, उसके ही वर्ग के लिए विशिष्ट हो।

यही बात आवास की कमी पर लागू होती है। बड़े आधुनिक शहरों के विस्तार के कारण उनके कुछ भागों में, विशेष रूप से केन्द्रीय भागों में ज़मीन को कृत्रिम रूप से बढ़ाये गये मूल्य, अकसर अपरिमित रूप से बढ़े हुए मूल्य पर बेचा जाता है; इन इलाक़ों में बनी इमारतें इस मूल्य को बढ़ाने के बजाय उसे घटाती हैं क्योंकि ये इमारतें परिवर्तित परिस्थितियों के अनुरूप नहीं रह जातीं। उन्हें गिरा दिया जाता है तथा उनकी जगह नयी इमारतें बनायी जाती हैं। यह सर्वोपरि केन्द्रीय इलाक़ों में स्थित मज़दूरों के मकानों के साथ होता है, जिनके किराये अधिकतम भीड़ के बावजूद एक निश्चित अधिकतम सीमा से या तो कभी बढ़ ही नहीं सकते या फिर बहुत धीरे-धीरे बढ़ते हैं। ये मकान गिरा दिये जाते हैं और उनकी जगह पर दुकानें, गोदाम तथा सार्वजनिक इमारतें खड़ी की जाती हैं। बोनापार्तपंथियों ने पेरिस में अपने ओस्मान के ज़रिये इस ठगी के लिए और अपने को मालामाल बनाने के लिए इस प्रवृत्ति का भरपूर उपयोग किया था। परन्तु ओस्मान की भावना लन्दन, मानचेस्टर तथा लिवरपूल में भी पहुंची है और वह बर्लिन तथा वियेना में भी अपने लिए सर्वथा घर जैसा वातावरण अनुभव कर रही है। नतीजा यह है कि मज़दूरों को शहरों के केन्द्रीय इलाक़ों से बाहरी भागों में खदेड़ा जा रहा है; मज़दूरों के रहने के लिए घर, सामान्यतया छोटे घर दुर्लभ और महंगे, अकसर सर्वथा अप्राप्य बनते जा रहे हैं, क्योंकि इन परिस्थितियों के अन्तर्गत भवन निर्माण उद्योग, जिसे अधिक महंगे आवासगृह सट्टेबाज़ी के लिए कहीं बेहतर क्षेत्र मुहैया करते हैं, मज़दूरों के लिए आवासगृहों का निर्माण अपवादस्वरूप ही करता है।

इसलिए आवास की यह कमी यक़ीनन मज़दूर पर किसी भी अधिक ख़ुशहाल वर्ग से ज़्यादा चोट करती है परन्तु यह विशिष्ट रूप से मज़दूर वर्ग पर बोझ

डालनेवाली वैसी ही बुराई है जैसी दुकानदार की ठगी है। जहां तक मज़दूर वर्ग का सम्बन्ध है, यह बुराई जब एक निश्चित स्तर पर पहुंच जाती है तथा एक निश्चित स्थायित्व प्राप्त कर लेती है, उसे भी उतना ही निश्चित आर्थिक सन्तुलन मिल जाता है।

मुख्यतया ठीक ये ही वे बुराइयां हैं, मज़दूर वर्ग द्वारा अन्य वर्गों के साथ, ख़ास तौर पर निम्नपूंजीपति वर्ग के साथ मिलकर वहन की जानेवाली ये ही वे बुराइयां हैं जिनमें अपने को व्यस्त रखना निम्न-पूंजीवादी समाजवाद – जिसके प्रूदों अनुयायी हैं – पसन्द करता है। इसलिए यह ज़रा भी संयोग की बात नहीं है कि हमारे जर्मन प्रूदोंपंथी* मुख्यतया आवास प्रश्न को ग्रहण कर लेते हैं, जो – जैसा कि हम देख चुके हैं – कदापि विशिष्टतया मज़दूर वर्ग का प्रश्न नहीं है; और यह भी कोई संयोग की बात नहीं है कि वह इसके विपरीत आवास प्रश्न को वास्तविक रूप से, विशिष्ट रूप से मज़दूर वर्ग का प्रश्न मानते हैं।

"**किरायेदार का मकान-मालिक** के साथ सम्बन्ध **उजरती मज़दूर के पूंजीपति** के साथ सम्बन्ध जैसा है।"

यह सरासर झूठ है।

आवास प्रश्न में हमारे सामने एक दूसरे के सामने खड़े दो पक्ष हैं – किरायेदार और मकानदार, यानी मकान-मालिक। किरायेदार मकान-मालिक के घर को अस्थायी उपयोग के लिए ख़रीदना चाहता है; उसके पास धन अथवा उधार का पैसा है, भले ही किराये में वृद्धि के रूप में भारी दर पर यह उधार स्वयं मकान-मालिक से लेना पड़ा हो। यह तो सामान्य माल बिक्री है; यह सर्वहारा तथा बुर्जुआ के बीच, मज़दूर तथा पूंजीपति के बीच लेन-देन नहीं है। किरायेदार – भले ही वह मज़दूर हो – **धन वाले व्यक्ति** के रूप में प्रकट होता है; वह अपना माल, – ऐसा माल, जो विशिष्ट रूप में उसका अपना माल है, यानी अपनी श्रम शक्ति – पहले ही बेच चुका होगा ताकि वह रहने की जगह के इस्तेमाल के लिए ख़रीददार के रूप में प्रकट हो सके या फिर उसे अपनी श्रम शक्ति की आसन्न बिक्री की गारंटी देने की स्थिति में होना चाहिए। वे विशिष्ट परिणाम, जिन्हें पूंजीपति को श्रम शक्ति की बिक्री जन्म देती है, यहां सर्वथा

* आर्थर म्यूलबर्गर। – सं०

ग़ायब होते हैं। पूंजीपति ख़रीदी गयी श्रम शक्ति से पहले अपना मूल्य, फिर अतिरिक्त मूल्य पुनरुत्पादित कैराता है जो पूंजीपति वर्ग के बीच वितरण तक अस्थायी रूप से उसके हाथ में रहता है। इसलिए इस मामले में अतिरिक्त मूल्य उत्पादित होता है, विद्यमान मूल्य का कुल योग बढ़ता है। किराये के लेन-देन में स्थिति सर्वथा भिन्न होती है। मकान-मालिक किरायेदार से चाहे कितना ही वसूल ले, यह केवल **मौजूद**, पहले से **उत्पादित** मूल्य का ही हस्तान्तरण है और मकान-मालिक तथा किरायेदार दोनों के पास के मूल्यों का **कुल योग** पहले जितना बना रहता है। पूंजीपति श्रम का भुगतान चाहे उसके मूल्य पर, या उससे कम या ज़्यादा करे, मज़दूर के श्रम के उत्पाद का एक हिस्सा हमेशा ठग लिया जाता है; किरायादार तभी ठगा जाता है जब उसे रहने की जगह के मूल्य से ज़्यादा किराया देने के लिए बाधित किया जाता है। इसलिए मकान-मालिक तथा किराये-दार के सम्बन्ध को मज़दूर तथा पूंजीपति के सम्बन्ध के बराबर बनाने की कोशिश करना मकान-मालिक और किरायेदार के सम्बन्ध को सर्वथा ग़लत ढंग से प्रस्तुत करना है। इसके विपरीत हम यहां दो नागरिकों के बीच माल का सर्वथा सामान्य लेन-देन पाते हैं और यह लेन-देन आर्थिक नियमों के अनुसार होता है जो सामान्य रूप में माल की बिक्री और विशेष रूप से माल रूपी "भू-सम्पत्ति" की बिक्री को विनियमित करते हैं। मकान या मकान के एक भाग के निर्माण तथा रख-रखाव पर आनेवाली लागत का सबसे पहले हिसाब लगाया जाता है; फिर ज़मीन का मूल्य आता है जिसे मकान की अधिक या कम अनुकूल स्थिति निर्धारित करती है; समय विशेष पर विद्यमान पूर्ति तथा मांग के बीच सम्बन्ध अन्त में आता है। यह सामान्य आर्थिक सम्बन्ध हमारे प्रूदोंवादी के मस्तिष्क में इस प्रकार प्रकट होता है –

"मकान एक बार तैयार हो जाने के बाद सामाजिक श्रम के एक निश्चित अंश पर **स्थायी क़ानूनी हक़** का काम देता है हालांकि मकान का वास्तविक मूल्य किराये के रूप में मकान-मालिक को पर्याप्त राशि से कहीं ज़्यादा बहुत पहले ही अदा किया जा चुका होता है। इस तरह पता चलता है कि मकान, जो उदाहरण के लिए पचास वर्ष पहले निर्मित किया गया था, किराये से इस अवधि में अपनी मूल लागत से दो, तीन, पांच, दस, यही नहीं इससे अधिक गुना हासिल कर लेता है।"

यहां हमारे समक्ष प्रूदों सुस्पष्ट रूप से प्रकट होते हैं। सबसे पहली चीज़, यह भुला दिया जाता है कि किराये से मकान की लागत पर ब्याज की वसूली ही नहीं होनी चाहिए, बल्कि मरम्मत का ख़र्च, अशोध्य ऋणों तथा अप्रदत्त

किराये की औसत राशि और साथ ही उस रक़म की भी वसूली होनी चाहिए जो समय-समय पर मकान के ख़ाली होने से नहीं मिल सकती; अन्त में उससे मकान पर, जो समय गुज़रने के साथ रहने लायक़ नहीं रह जाता तथा बेकार हो जाता है, लगी पूंजी की भी वार्षिक किश्तों में अदायगी होनी चाहिए। दूसरी चीज़, यह भुला दिया जाता है कि किराये को उस ज़मीन के, जिस पर इमारत बनी है, बढ़े हुए मूल्य पर ब्याज की भी अदायगी करनी चाहिए और इस कारण इसका एक अंश ज़मीन का किराया होता है। यह सच है कि हमारे प्रूदोंपंथी तत्काल ऐलान करते हैं कि चूंकि ज़मीन के मालिक द्वारा कुछ भी योग दिये बिना ही यह मूल्य-वृद्धि होती है, इसलिए उस पर उसका नहीं, वरन् पूरे समाज का अधिकार होता है। परन्तु वह इस तथ्य को नज़रअन्दाज़ कर बैठते हैं कि वे तो इस तरह वस्तुतः भू-स्वामित्व के उन्मूलन की ही मांग कर रहे हैं, परन्तु हम यहां इस प्रश्न पर विचार नहीं करेंगे क्योंकि इससे हम अपने विषय से बहुत दूर हट जायेंगे। अन्ततः वह इस तथ्य को नज़रअन्दाज़ कर बैठते हैं कि पूरा सौदा मकान-मालिक से मकान की ख़रीद का नहीं है, वरन् उससे कुछ समय के लिए मकान के उपयोग की ख़रीद का है। कोई आर्थिक घटना-व्यापार किन वास्तविक परिस्थितियों में घटित होता है, इसे देखने का प्रूदों ने कभी कष्ट नहीं उठाया, इसलिए वह स्वभावतया यह बताने में भी असमर्थ हैं कि किसी मकान की मूल लागत-क़ीमत की कैसे कतिपय परिस्थितियों में पचास वर्षों के दौरान किराये के रूप में दस गुना अधिक अदायगी हो जाती है। इस प्रश्न का विवेचन करने के बजाय, जो आर्थिक दृष्टि से क़तई कठिन नहीं है, और यह सिद्ध करने के बजाय कि यह क्या सचमुच आर्थिक नियमों के विरुद्ध है और यदि विरुद्ध है भी तो कैसे, प्रूदों अर्थशास्त्र से सीधे विधिशास्त्र के क्षेत्र में छलांग लगाते हैं—"मकान एक बार तैयार हो जाने के बाद" निश्चित वार्षिक अदायगी के "**स्थायी क़ानूनी हक़** का काम देता है।" यह कैसे होता है, मकान **कैसे** क़ानूनी हक़ **बन जाता है**, इस पर प्रूदों चुप्पी साध लेते हैं। और यही वह चीज़ है जो प्रूदों को समझानी चाहिए थी। अगर उन्होंने इस प्रश्न की जांच की होती तो उन्हें पता चल जाता कि दुनिया में सारे क़ानूनी हक़—वे चाहे कितने ही स्थायी क्यों न हों—मकान को पचास वर्षों के दौरान किराये के रूप में अपनी दस गुना लागत-क़ीमत वसूलने में समर्थ नहीं बना सकते और यह काम केवल आर्थिक परिस्थितियां ही (जो क़ानूनी हक़ों के रूप में सामाजिक मान्यता प्राप्त कर सकती हैं) कर सकती हैं। ऐसा करने पर वह फिर वहीं पहुंच जाते जहां से वह चले थे।

पूरी प्रूदोंवादी शिक्षा आर्थिक वास्तविकता से क़ानूनी शब्दावली में आत्म-रक्षात्मक छलांग लगाने पर आधारित है। हमारे साहसी प्रूदों आर्थिक सम्पर्क से जितनी बार भटक जाते हैं – और हर गम्भीर समस्या के मामले में उनके साथ यही होता है – वह क़ानून का सहारा लेते हैं तथा **शाश्वत न्याय** की दुहाई देने लगते हैं।

"प्रूदों पहले माल उत्पादन से मेल खानेवाले क़ानूनी सम्बन्धों से शाश्वत न्याय के अपने आदर्श की कल्पना प्राप्त करते हैं, और इस तरह वह साबित कर देते हैं – और इससे सभी कूपमंडूकों को सान्त्वना मिलती है – कि माल उत्पादन का रूप न्याय जैसा ही शाश्वत है। फिर वह उल्टे वास्तविक माल उत्पादन में और उससे मेल खानेवाले वास्तविक क़ानून में न्याय के इस आदर्श के अनुसार सुधार करना चाहते हैं। उस रसायनज्ञ के बारे में हमारी क्या राय होगी जो पदार्थ के संयोजन और अपघटन में आणुविक परिवर्तनों के वास्तविक नियमों का अध्ययन करने और उसकी बुनियाद पर निश्चित समस्याओं को हल करने के बजाय «naturalité» * और «affinité» ** का 'शाश्वत विचारों' की सहायता से पदार्थ के संयोजन और अपघटन का नियमन करने का दावा करता? जब हम यह कहते हैं कि सूदख़ोरी «justice éternelle» *** «équité éternelle» ****, «mutualité éternelle» ***** और अन्य «vérités éternelles» *) के ख़िलाफ़ जाती है, तब क्या हमें उससे सूदख़ोरी के बारे में सचमुच कुछ अधिक जानकारी प्राप्त हो जाती है, जो धर्म के पितामहों की इन उक्तियों से प्राप्त होती है कि सूदख़ोरी «grâce éternelle», «foi éternelle» **) और «la volonté éternelle de Dieu» ***) के प्रतिकूल है? ****) (मार्क्स, 'पूंजी'।)

हमारे प्रूदोंपंथी *****) का अपने गुरु से बेहतर हश्र नहीं होता –

---

* स्वाभाविकता। – सं०

** बंधुता। – सं०

*** शाश्वत न्याय। – सं०

**** शाश्वत साम्य। – सं०

***** शाश्वत पारस्परिकता। – सं०

*) शाश्वत सत्य। – सं०

**) शाश्वत अनुकम्पा; शाश्वत विश्वास। – सं०

***) भगवान की शाश्वत इच्छा। – सं०

****) कार्ल मार्क्स, 'पूंजी'। – सं०

*****) आर्थर म्यूलबर्गर। – सं०

"किराया-क़रार उन हज़ारों विनियमों में से एक है जो पशु के शरीर में रक्त-संचार की तरह आधुनिक समाज के जीवन में आवश्यक होते हैं। यदि ये विनियम **अधिकार की अवधारणा** से ओतप्रोत हों, अर्थात् उन्हें सर्वत्र न्याय की कड़ी अपेक्षाओं के अनुसार अमल में लाया जाये तो यह, स्वभावतया, समाज के हित में होगा। कहने का मतलब है, समाज के आर्थिक जीवन को **आर्थिक अधिकार** की बुलन्दी तक पहुंचा देना चाहिए। परन्तु, जैसा कि हमें पता है, जो रहा है, वह इसके विपरीत है।"

क्या इस बात पर विश्वास किया जा सकता है कि मार्क्स द्वारा प्रूदोंपंथ को ठीक इसी दृष्टिकोण से इतने सार रूप में तथा इतने आश्वस्तकारी ढंग से विवेचित किये जाने के पांच साल बाद भी कोई जर्मन भाषा में ऐसी भ्रान्त सामग्री प्रकाशित करेगा? इस बेसिरपैर की बात का मतलब क्या है? इससे अधिक कुछ नहीं कि मौजूदा समाज को शासित करनेवाले आर्थिक नियमों के व्यावहारिक प्रभाव न्याय के विषय में लेखक की समझदारी के विपरीत हैं, और यह कि वह मन में यह सदाशयपूर्ण कामना संजोये हुए हैं कि इस तरह की व्यवस्था की जा सकती है जिससे स्थिति ठीक हो सके। जी हां, यदि मेंढकों की पूंछ होती तो वे मेंढक न रह जाते! और फिर उत्पादन की पूंजीवादी पद्धति क्या "अधिकार की अवधारणा से ओतप्रोत" नहीं है, यानी मज़दूरों का शोषण करने के अपने विशेषाधिकार की अवधारणा से ओतप्रोत नहीं है? और यदि लेखक हमसे यह कहते हैं कि यह अधिकार के बारे में **उनकी अपनी** अवधारणा नहीं है तो क्या हम एक पग आगे बढ़े हैं?

परन्तु चलिये, आवास प्रश्न की ओर लौटें। हमारे प्रूदोंपंथी अब "अधिकार की" अपनी "अवधारणा" को बेलगाम छोड़ देते हैं और हमारे सामने निम्नलिखित हृदयस्पर्शी ओजस्वी व्याख्यान देते हैं–

"हम यह दावा करने में संकोच नहीं करते कि हमारी स्तुत्य शताब्दी की पूरी संस्कृति पर इस तथ्य से बड़ा और कोई क्रूर व्यंग्य नहीं हो सकता कि बड़े शहरों में ९० प्रतिशत तथा इससे अधिक आबादी के पास ऐसा आवास नहीं है जिसे वह अपना कह सके। नैतिक तथा पारिवारिक अस्तित्व, घरबार का मूल बिन्दु सामाजिक भंवर में डूबता जा रहा है... इस मामले में हम वहशियों के बहुत नीचे हैं। कन्दरावासी के पास अपनी कन्दरा, आस्ट्रेलियाई के पास अपनी मिट्टी की झोंपड़ी, रेड इंडियन के पास अपना चौका-चूल्हा होता था, लेकिन आधुनिक सर्वहारा त्रिशंकु बना हुआ है", आदि।

इस विलाप में प्रूदोंपंथ अपने पूरे प्रतिक्रियावादी रूप में मौजूद है। आधुनिक क्रान्तिकारी वर्ग – सर्वहारा वर्ग – के निर्माण के लिए उस नाभि-रज्जु को काटना नितान्त आवश्यक था जिससे पुराने ज़माने का मज़दूर ज़मीन से जुड़ा हुआ था। हाथ से काम करनेवाला बुनकर, जिसके पास करघे के अलावा अपना छोटा-सा घर, बाग़ और खेत होता था, अपने सारे दुख-कष्टों तथा सारे राजनीतिक दबाव के बावजूद शान्त, सन्तुष्ट, "धर्मपरायण तथा प्रतिष्ठाप्राप्त" व्यक्ति था। वह अमीर, पादरी तथा पदाधिकारियों के आगे सिर झुकाया करता था और आन्तरिक रूप से पूरी तरह दास था। यह ठीक आधुनिक, बड़े पैमाने का उद्योग ही है जिसने श्रमिक को, जो पहले से ज़मीन से बंधा हुआ था, पूर्णतया सम्पत्ति-च्युत सर्वहारा बना दिया, उसे तमाम परम्परागत बेड़ियों से मुक्त कर दिया, एक «Vogelfrei»* सर्वहारा बना दिया; यह ठीक आर्थिक क्रान्ति ही है जिसने एकमात्र ऐसी अवस्थाओं का सृजन किया है जिनके अन्तर्गत पूंजीवादी उत्पादन के रूप में मेहनतकश वर्ग का शोषण अपने अन्तिम रूप समेत मिटाया जा सकता है। और तब विलाप करते हुए यह प्रूदोंपंथी सामने आते हैं और मज़दूरों को घर-बार से बाहर निकाले जाने पर इस तरह सिसकियां भरते हैं मानों यह उनकी बौद्धिक मुक्ति की ठीक पहली शर्त नहीं, बल्कि प्रतिगामी पग है।

२७ वर्ष पहले मैंने 'इंगलैंड में मज़दूर वर्ग की स्थिति' पुस्तक में इंगलैंड में १८वीं शताब्दी में मज़दूरों के अपने घर-बार से खदेड़े जाने की ठीक इस प्रक्रिया का वर्णन किया था। घृणित कृत्यों का, जिनके लिए ज़मीन तथा कारख़ानों के मालिक अपराधी थे, इस निष्कासन का सर्वोपरि सम्बन्धित मज़दूरों पर अनिवार्यतः पड़नेवाले भौतिक तथा नैतिक दोनों प्रकार के हानिकर प्रभावों का भी उसमें यथोचित वर्णन किया गया है। परन्तु क्या मेरे दिमाग़ में इसे, जो परिस्थितियों को देखते हुए विकास की सर्वथा आवश्यक ऐतिहासिक प्रक्रिया थी, कोई ऐसी चीज़ मानने की बात पैदा हो सकती थी जो "वहशियों के नीचे" भी पहुंचानेवाला प्रतिगामी पग हो? असम्भव। १८७२ का अंग्रेज़ सर्वहारा अपने घर-बार वाले १७७२ के देहाती बुनकर से अपरिमित रूप से ऊंचे स्तर पर है। अपनी कन्दरा वाला कन्दरावासी, अपनी मिट्टी की झोंपड़ी वाला आस्ट्रेलियाई या अपने चौके-चूल्हे वाला रेड इंडियन क्या कभी जून विप्लव[61] सम्पन्न कर पाता अथवा पेरिस कम्यून को साकार बना पाता?

---

*दो अर्थों वाला शब्द – "पक्षी की तरह मुक्त", "विधि-बहिष्कृत"। – सं०

बड़े पैमाने पर पूंजीवादी उत्पादन के प्रचलन के बाद मज़दूरों की स्थिति भौतिक रूप से और बिगड़ी है, इस पर केवल पूंजीपति वर्ग संदेह करता है। परन्तु क्या हमें इसलिए पीछे मुड़कर मिस्र देश में मांस की हांडियों[62], (वह भी इनेगिने), छोटे पैमाने के देहाती उद्योग की ओर, जो केवल दासवत् आत्माएं पैदा करता था, अथवा "वहशियों" की ओर ललचायी दृष्टि से देखना चाहिए? बात इसके विपरीत है। बड़े पैमाने के आधुनिक उद्योग द्वारा सर्जित, ज़मीन से बांधनेवाली बेड़ियों समेत विरासत में मिली सारी बेड़ियों से मुक्त और बड़े शहरों में झुंड के झुंड भरता जा रहा सर्वहारा ही महान सामाजिक रूपान्तरण का कार्य सम्पन्न कर सकता है जो समस्त वर्ग शोषण तथा समस्त वर्ग शासन का अन्त कर देगा। घर-बार वाले पुराने ग्रामीण बुनकर यह कभी न कर पाते; वे इस तरह के विचार को अमल में लाने की इच्छा करना तो रहा दूर, उसे दिमाग़ में भी नहीं ला सकते थे।

दूसरी ओर, प्रूदों के लिए गत सौ वर्षों की औद्योगिक क्रान्ति, भाप शक्ति का प्रचलन तथा बड़े पैमाने का कारख़ाना उत्पादन, जो शारीरिक श्रम की जगह पर मशीनों की प्रतिस्थापना करता है और श्रम उत्पादकता को हज़ार गुना बढ़ाता है, अत्यन्त घृणित घटनाएं हैं, जो कभी होनी ही नहीं चाहिए थीं। निम्न-पूंजीवादी प्रूदों ऐसे संसार की कल्पना करते हैं जिसमें प्रत्येक व्यक्ति तत्काल उपभोगयोग्य तथा मंडी में विनिमययोग्य स्वतंत्र तथा पृथक वस्तु उत्पादित करता है। फिर जब तक प्रत्येक व्यक्ति को दूसरी वस्तु के रूप में अपने श्रम का पूर्ण मूल्य वापस मिलता रहता है, तब तक "शाश्वत न्याय" की पूर्ति होती रहती है तथा यथासम्भव सर्वोत्तम संसार का सृजन हो जाता है। परन्तु प्रूदों के इस यथासम्भव सर्वोत्तम संसार को औद्योगिक विकास की अग्रगति ने भ्रूणावस्था में ही कुचल डाला है, उसे पांवों तले रौंद डाला है; यह औद्योगिक विकास उद्योग की तमाम बड़ी शाखाओं में व्यक्तिगत श्रम को पहले ही नष्ट कर चुका है और जो छोटी तथा उनसे और भी छोटी शाखाओं में उसे नित्यप्रति नष्ट करता जा रहा है, जो उसके स्थान पर मशीनों तथा प्रकृति की वश में की गयी शक्तियों का अवलम्बन प्राप्त उस सामाजिक श्रम को प्रतिष्ठित कर रहा है जिसका तत्काल विनिमययोग्य अथवा उपभोगयोग्य उत्पाद कई लोगों के, जिनके हाथों से वह गुज़रता है, संयुक्त कार्य का फल है। ठीक यही औद्योगिक क्रांति है जिसने मानव श्रम की उत्पादक शक्ति को इतने ऊंचे स्तर पर पहुंचा दिया है कि मानवजाति के इतिहास में पहली बार – सबके मध्य श्रम का युक्तिसंगत विभाजन होने पर –

इतना उत्पादित करने की सम्भावना विद्यमान है जो समाज के तमाम सदस्यों के प्रचुर उपभोग के लिए तथा प्रचुर आरक्षित कोष के लिए ही नहीं, अपितु हर एक के वास्ते इतनी फ़ुरसत सुलभ कराने के लिए भी पर्याप्त होगा कि ऐतिहासिक रूप से धरोहर के रूप में प्राप्त संस्कृति में जो कुछ भी – विज्ञान, कला, संसर्ग के रूप – वास्तव में अक्षुण्ण रखने योग्य है, उसे अक्षुण्ण ही नहीं रखा जायेगा, अपितु उसे सत्ताधारी वर्ग की इजारेदारी से पूरे समाज की समान सम्पत्ति में बदला जा सकेगा और उसका आगे विकास भी किया जा सकेगा। यहीं निर्णायक बिन्दु है – मानव श्रम की उत्पादक शक्ति ज्योंही इस बुलन्दी पर पहुंचती है, सत्ताधारी वर्ग के अस्तित्व के पक्षसमर्थन का हर क़िस्म का बहाना ख़त्म हो जाता है। आख़िर जिस अन्तिम आधार पर वर्ग विभेदों का पक्षसमर्थन किया जाता था, वह सदैव यही होता था – हमेशा एक ऐसा वर्ग होना चाहिए जिसे रोज़ रोज़ी-रोटी कमाने की चिन्ता न करनी पड़े ताकि उसके पास समाज के बौद्धिक कार्यों की देखरेख के लिए समय रह सके। इस तरह की बकवास को, जिसे अब तक बहुत अधिक ऐतिहासिक औचित्य प्राप्त था, पिछले सौ वर्षों की औद्योगिक क्रान्ति ने जड़ से ही ख़त्म कर दिया है। सत्ताधारी वर्ग का अस्तित्व औद्योगिक उत्पादक शक्ति के विकास की राह में तथा उतना ही विज्ञान, कला और ख़ास तौर पर सांस्कृतिक संसर्ग के अन्य रूपों के विकास की राह में नित्यप्रति अधिकाधिक बाधक बनता जा रहा है। इससे पहले ऐसे उजड्ड कभी नहीं थे जितने हमारे ये आधुनिक पूंजीपति हैं।

परन्तु मित्र प्रूदों से इस सब का कोई वास्ता नहीं है। वह तो "शाश्वत न्याय" चाहते हैं, और कुछ नहीं। हरेक को अपने उत्पाद के बदले अपने श्रम की पूरी आय, अपने श्रम का पूर्ण मूल्य प्राप्त करना है। परन्तु इसका आधुनिक उद्योग के उत्पाद में हिसाब लगाना पेचीदा मामला है। आधुनिक उद्योग कुल उत्पाद में व्यक्ति के विशेष भाग को ढंक देता है जो पुरानी व्यक्तिगत दस्तकारी में स्पष्टतया तैयार उत्पाद के रूप में प्रकट होता था। इसके अलावा आधुनिक उद्योग वैयक्तिक विनिमय को, जिस पर प्रूदों की पूरी प्रणाली निर्मित है, अर्थात् दो व्यक्तियों के बीच उस प्रत्यक्ष विनिमय को अधिकाधिक मिटाता जाता है जिसमें एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के उत्पाद का उपभोगार्थ विनिमय करता है। इसी लिए पूरे के पूरे प्रूदोंपंथ में एक प्रतिक्रियावादी पुट विद्यमान है, वह है औद्योगिक क्रान्ति से घृणा और पूरे आधुनिक उद्योग को, भाप इंजनों, यांत्रिक करघों और दूसरी मुसीबतों को ख़त्म करने तथा पुराने, सम्मानजनक शारीरिक श्रम की ओर

लौटने की कभी प्रत्यक्ष तो कभी अप्रत्यक्ष रूप से अभिव्यक्त इच्छा। इस तरह यदि हम अपनी उत्पादक शक्ति का एक हज़ार में से ९९९ अंश खो बैठें, यदि पूरी मानवजाति को निकृष्टतम दासवत् श्रम के गर्त्त में धकेल दिया जाये, यदि भुखमरी आम नियम बन जाये, तो भी इन सब से क्या बनता-बिगड़ता है यदि हम विनिमय को इस ढंग से संगठित कर दें कि हर एक को "अपने श्रम की पूरी आय" मिल जाये और "शाश्वत न्याय" को मूर्त्त रूप दे दिया जाये?

Fiat justitia, pereat mundus!

इन्साफ़ होना चाहिए, दुनिया जहन्नुम में जाये!

और यदि इस प्रूदोंपंथी प्रतिक्रान्ति को सम्पन्न करना ज़रा भी सम्भव हो तो दुनिया निश्चय ही जहन्नुम में पहुंच जायेगी।

परन्तु यह स्वयंसिद्ध है कि बड़े पैमाने के आधुनिक उद्योग वाले सामाजिक उत्पादन में भी हर व्यक्ति के लिए "अपने श्रम की पूरी आय की प्राप्ति" – यदि इस वाक्यांश का कोई अर्थ है – सुनिश्चित करना सम्भव है। और इस वाक्यांश का तभी अर्थ हो सकता है जब उसकी परिधि में यह भाव नहीं हो कि हर व्यक्ति "अपने श्रम की पूरी आय" का स्वामी बने, अपितु यह भाव शामिल हो कि पूरी तरह मजदूरों को लेकर बननेवाला सारा समाज अपने श्रम के कुल उत्पाद का स्वामी बनेगा जिसका एक भाग वह अपने सदस्यों के बीच उपभोग के लिए बांटेगा, एक भाग उत्पादन साधनों के प्रतिस्थापन और उनकी वृद्धि के लिए इस्तेमाल करेगा तथा एक भाग उत्पादन एवं उपभोग की आरक्षित निधि तैयार करने के लिए जमा करेगा।

* * *

ऊपर जो कुछ कहा गया है, उसके बल पर हम पहले ही जान लेते हैं कि हमारे प्रूदोंपंथी इस महान आवास प्रश्न को किस तरह हल करेंगे। एक ओर हमारे सामने यह मांग है कि प्रत्येक मज़दूर का अपना मकान हो ताकि हम आगे से "**वहशियों के नीचे**" न रहें। दूसरी ओर हमें वह यक़ीन दिलाते हैं कि किसी मकान की मूल लागत की किराये के रूप में दो, तीन पांच या दस गुनी वापसी – जैसा कि वस्तुतः होता है – **क़ानूनी हक़** पर आधारित है और यह क़ानूनी हक़ "**शाश्वत न्याय**" के विरुद्ध है। इसका समाधान बिल्कुल सरल है – हम क़ानूनी हक़ मिटा देते हैं तथा शाश्वत न्याय के बल पर घोषित करते हैं कि चुकाया जानेवाला किराया स्वयं आवास की लागत की अदायगी है। यदि कोई अपनी

पूर्वस्थापनाओं को इस तरतीब से रखे कि उनमें निष्कर्ष पहले से मौजूद हो तो अपने झोले से पहले से तैयार किये हुए फल को प्रस्तुत करने और उसके परिणाम-गत अडिग तर्क की ओर गर्वपूर्वक इंगित करने के लिए निस्सन्देह उससे ज़्यादा दक्षता की ज़रूरत नहीं होगी जो किसी भी कठ-वैद्य के पास होती है।

यहां भी यही होता है। मकानों को किराये पर उठाने की व्यवस्था का अन्त करना परम आवश्यक बना दिया जाता है तथा उसे इस मांग के रूप में प्रस्तुत किया जाता है कि हर किरायेदार को अपने आवास का मालिक बना दिया जाये। परन्तु यह कैसे किया जाये? बहुत आसानी से –

"किराये पर उठाये जानेवाले मकानों का विमोचन हो जायेगा... पहले के मकान-मालिक को उसके मकान की एक-एक दमड़ी चुका दी जायेगी। किराया जहां पहले की तरह पूंजी के स्थायी हक़ के लिए किरायेदार द्वारा किया जानेवाला भुगतान बना रह जायेगा, वहां किराये पर उठाये जानेवाले मकानों के विमोचन की घोषणा के दिन से यह ठीक-ठीक निश्चित राशि, जो किरायादार चुकाता है, उस मकान की वार्षिक किश्त बन जायेगी जो उसकी अपनी सम्पत्ति बन जाता है... समाज... इस तरह मकानों के स्वतंत्र, आज़ाद स्वामियों का कुल योग बन जाता है।"

मकान-मालिक बिना काम किये ज़मीन का किराया ले सके और मकान में लगायी गयी पूंजी से ब्याज वसूल कर सके, इसे प्रूदोंपंथी* शाश्वत सत्य के विरुद्ध अपराध मानता है। वह फ़र्मान जारी करता है कि यह ख़त्म होना चाहिए, कि मकानों में लगायी गयी पूंजी से आगे ब्याज नहीं मिला करेगा, कि ज़मीन के किराये की भी – जहां तक वह ख़रीदी गयी भू-सम्पत्ति है – वसूली नहीं की जायेगी। अब हमने देख लिया है कि उत्पादन की पूंजीवादी पद्धति, जो वर्तमान समाज का आधार है, इससे कदापि प्रभावित नहीं होती। मज़दूर के शोषण की धुरी है पूंजीपति के हाथों उसकी श्रम शक्ति की बिक्री तथा इस लेन-देन का पूंजीपति द्वारा किया जानेवाला उपयोग, यह तथ्य कि पूंजीपति मज़दूर को अपनी श्रम शक्ति के मूल्य से कहीं अधिक उत्पादित करने के लिए बाधित करता है। पूंजी-पति तथा मज़दूर के बीच यही लेन-देन वह सारा अतिरिक्त मूल्य उत्पादित करता है जो आगे चलकर नाना प्रकार के पूंजीपतियों तथा उनके चाकरों के बीच ज़मीन

* म्यूलबर्गर। – सं०

के किराये, वाणिज्यिक मुनाफ़े, पूंजी पर ब्याज, कर, आदि के रूप में बंटता है। तब हमारे प्रूदोंपंथी सामने आते हैं और यह मानते हैं कि यदि हम **एक ही क़िस्म** के पूंजीपतियों को, जो सीधे श्रम शक्ति नहीं ख़रीदते तथा इस तरह जिनके कारण कोई अतिरिक्त मूल्य पैदा नहीं होता है, मुनाफ़ा कमाने अथवा ब्याज कमाने से रोक दें तो यह कार्य आगे की ओर क़दम होगा! मज़दूर वर्ग से प्राप्त किया जानेवाला विपुल अवेतन श्रम ठीक उतना ही बना रहेगा भले ही मकान-मालिक को कल ज़मीन का किराया और ब्याज लेने की सम्भावना से वंचित कर दिया जाये। परन्तु यह चीज़ हमारे प्रूदोंपंथी को यह घोषणा करने से नहीं रोकती –

"किराये पर मकान उठाने की व्यवस्था का उन्मूलन इसलिए उन **सबसे फलप्रद तथा भव्य आकांक्षाओं** में से एक है जो क्रान्तिकारी विचार के गर्भ से जन्मी हैं और इसे सामाजिक जनवाद की एक **प्रमुख मांग** बन जानी चाहिए।"

यह उनके गुरु प्रूदों की बाज़ारू चीख़-पुकार की हू-ब-हू नक़ल है जो उस मुर्ग़ी की तरह है जिसकी कुड़कुड़ाहट अंडे के आकार के सर्वथा उलट होती है।

अब ज़रा उस मनोहारी स्थिति की कल्पना तो कीजिये जब प्रत्येक मज़दूर, निम्नपूंजीपति तथा पूंजीपति को वार्षिक किश्त देकर अपने घर का पहले आंशिक और फिर पूरा मालिक बनने के लिए विवश किया जाता है! इंगलैंड के औद्योगिक ज़िलों में इसमें कुछ तुक हो सकता है जहां बड़े पैमाने का उद्योग है परन्तु मज़दूरों के अपने छोटे-छोटे घर हैं और जहां हर विवाहित मज़दूर के पास अपना छोटा-सा घर है। परन्तु पेरिस में तथा महाद्वीप के अधिकांश बड़े नगरों में छोटे पैमाने के उद्योग के साथ-साथ बड़े-बड़े घर हैं, जिनमें से प्रत्येक में दस, बीस या तीस परिवार साथ-साथ रहते हैं। मान लें कि विश्व-मुक्तिदायी आज्ञप्ति के जारी होने के दिन, जब किराये के मकानों के छुड़ाये जाने की घोषणा होगी, पीटर नामक व्यक्ति, जो बर्लिन के एक इंजीनियरी कारख़ाने में काम कर रहा है, एक साल बाद, हैम्बर्ग टोर के आस-पड़ौस में किसी मकान की पांचवीं मंज़िल पर एक छोटे-से कमरे के पन्द्रहवें भाग का मालिक बन जाता है। इतने में वह नौकरी खो बैठता है और शीघ्र हनोवर में पोटगोफ़ नामक स्थान में तीसरी मंज़िल में उसी तरह के फ़्लैट में पहुंच जाता है जहां से आंगन का बहुत सुन्दर दृश्य दिखायी देता है। वहां पांच माह रहने के बाद उसने इस सम्पत्ति का १/३६ भाग हासिल किया ही था कि हड़ताल हो जाती है और इस कारण वह म्यूनिख़ पहुंच जाता

है और ग्यारह माह तक वह ओबेर-आंगेरगास्से में किसी मकान के अंधेरे-से तहख़ाने में ठीक ११/१८० हिस्से का मालिक बन जाता है। इसी तरह आगे हटाये जाते रहने से, जो आजकल मज़दूरों के साथ अक्सर हो रहा है, उसके मत्थे ये और मढ़ दिये जायेंगे—सेंट गालेन में ऐसे घर का ७/३६० हिस्सा, जो पहले से कम वांछनीय नहीं होगा, लीड्स में एक अन्य घर का २३/१८० हिस्सा तथा सेरेन में एक तीसरे घर का ३४७/५६२२३ हिस्सा—ठीक इस तरह आकलित कि "शाश्वत न्याय" का अतिक्रमण न हो। अब बताइये कि हमारे पीटर महाशय फ़्लैटों के इन हिस्सों का क्या उपयोग करें? उसे इन हिस्सों का वास्तविक मूल्य कौन देगा? उसे अपने विभिन्न फ़्लैटों में बाक़ी हिस्सों के मालिक या मालिक लोग कहां मिलेंगे? और किसी ऐसे बड़े मकान के मामले में सम्पत्ति सम्बन्ध क्या होंगे जिसकी मंज़िलों में, मान लें, कुल मिलाकर २० फ़्लैट हैं, और जिसके अलग-अलग हिस्सों के मालिक विमोचन की अवधि ख़त्म होने तथा मकानों को भाड़े पर उठाने की व्यवस्था के ख़त्म होने की दशा में शायद तीन सौ होंगे जो दुनिया भर में बिखरे हुए होंगे? हमारे प्रूदोंवादी जवाब में कहेंगे कि उस समय तक प्रूदों का विनिमय-बैंक अस्तित्व में आ जायेगा जो हरेक को किसी भी श्रम उत्पाद के लिए पूरी-पूरी श्रम आय किसी भी समय चुका दिया करेगा और इसलिए वह किसी फ़्लैट में हिस्से का भी पूरा मूल्य चुका देगा। परन्तु हमारा यहां प्रूदोंपंथी विनिमय-बैंक से कोई सरोकार नहीं है क्योंकि पहले तो इसलिए कि आवास प्रश्न से सम्बन्धित लेखों में इसकी कहीं चर्चा नहीं है; दूसरी चीज़ यह है कि वह इस विचित्र भूल पर आधारित है कि यदि कोई माल बेचना चाहता है तो उसे अवश्य उसे पूरी क़ीमत पर ख़रीदनेवाला ग्राहक मिल जायेगा, और तीसरी चीज़ यह है कि प्रूदों के आविष्कार से बहुत पहले ही श्रम विनिमय बाजार[63] के नाम से इसका एकाधिक बार दिवाला पिट चुका था।

मज़दूर को अपना घर **ख़रीदना** चाहिए, यह पूरी अवधारणा, जैसा कि हम उल्लेख कर चुके हैं, मूलतया प्रतिक्रियावादी प्रूदोंपंथी सिद्धान्त पर आधारित है जिसके अनुसार बड़े पैमाने के आधुनिक उद्योग द्वारा पैदा की गयी अवस्थाएं एक घिनौनी रसौली हैं और समाज को बलपूर्वक उस प्रवृत्ति की ओर से, जिसका वह एक सौ वर्ष से अनुसरण करता आया है, मोड़कर ऐसी अवस्था की ओर लौटाना चाहिए जिसमें अलग-अलग व्यक्तियों के पुराने टिकाऊ दस्तकारी का बोलबाला होगा और जो साधारणतया छोटे पैमाने के उद्योग के, जो विध्वस्त हो चुका और होता जा रहा है, आदर्शीकृत पुनरुद्धार के अलावा और कुछ नहीं है। यदि

मज़दूरों को एक बार फिर इन टिकाऊ परिस्थितियों की ओर पहुंचा दिया जाये और "सामाजिक भंवर" को यदि उपयुक्त ढंग से ख़त्म कर दिया जाये तो मज़दूर निस्सन्देह "घर-बार" के स्वामित्व का उपयोग कर सकते हैं और उपरिलिखित विमोचन सिद्धान्त कम बेतुकी प्रतीत होने लगती है। परन्तु प्रूदों सिर्फ़ यह भूल जाते हैं कि यह सब सम्पन्न करने के लिए उन्हें विश्व इतिहास की घड़ी की सुइयों को सौ साल पीछे घुमाना होगा और ऐसी सूरत में वह समकालीन मज़दूरों को अपने पितामहों और प्रपितामहों की तरह फिर संकीर्ण मनोवृत्ति वाली, घिघियानेवाली, चापलूसी करनेवाली दासवत् आत्माएं बना देंगे।

वैसे जहां तक आवास प्रश्न के प्रूदोंपंथी समाधान में कोई युक्तिसंगत तथा व्यवहार योग्य तत्व है, उसे पहले से ही मूर्त्त रूप दिया जा रहा है परन्तु यह "क्रान्तिकारी विचार के गर्भ" से उद्भूत नहीं होता, बल्कि... स्वयं बड़े पूंजीपतियों के बीच जन्म लेता है। आइये, ज़रा देखें मैड्रिड से निकलनेवाला बेहतरीन स्पेनी अख़बार *«La Emancipacion»*[64] अपने १६ मार्च १८७२ के अंक में क्या कहता है—

"आवास प्रश्न को हल करने का एक और तरीक़ा है, प्रूदों द्वारा सुझाया गया तरीक़ा ; पहली नज़र में वह चकाचौंध ज़रूर कर देता है, परन्तु अधिक सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर वह अपनी पूर्ण पुंसत्वहीनता प्रकट कर देता है। प्रूदों ने सुझाव दिया कि किरायेदारों को किश्तों में योजना के आधार पर ख़रीददार बना देना चाहिए, कि अदा किये जानेवाले वार्षिक किराये को आवास विशेष के मूल्य की किश्तों में वापसी माना जाना चाहिए ताकि एक निश्चित समय के बाद किरायादार उसका मालिक बन सके। इस तरीक़े को तो, जिसे प्रूदों बहुत क्रान्तिकारी मानते थे, सट्टेबाज़ों की कम्पनियां तमाम देशों में अमल में ला रही हैं, जो किराया बढ़ाकर इस तरह मकानों का दुगुना और तिगुना मूल्य वसूल कर रही हैं। उत्तर-पूर्वी फ़्रांस में श्री दोल्फ़ुस तथा अन्य बड़े कारख़ानेदारों ने धन कमाने के लिए ही नहीं, वरन् एक राजनीतिक विचार को लेकर भी यह प्रणाली क्रियान्वित की है।

"सत्ताधारी वर्ग के सबसे चतुर नेताओं की कोशिशों का हमेशा यह लक्ष्य रहा है कि छोटे-छोटे सम्पत्ति स्वामियों की संख्या बढ़ती रहे ताकि सर्वहारा के विरुद्ध अपने लिए एक सेना तैयार की जा सके। गत शताब्दी की पूंजीवादी क्रान्तियों ने सामन्तों तथा चर्च की बड़ी-बड़ी जागीरों को छोटे-छोटे भू-खंडों में बांटा—ठीक उसी तरह जिस तरह स्पेनी जनतंत्रवादी अपने यहां अब भी मौजूद बड़ी जागीरों को बांटना चाहते हैं—और इस तरह उन्होंने छोटे भूस्वामियों का एक वर्ग पैदा कर दिया जो तब से समाज में सबसे प्रतिक्रियावादी तत्व तथा

शहरी सर्वहारा के क्रान्तिकारी आन्दोलन की राह में स्थायी बाधक बना हुआ है। नेपोलियन तृतीय का इरादा सरकारी ऋण के छोटी-छोटी राशियों के बांड जारी कर शहरों में ठीक ऐसा ही वर्ग तैयार करने का था, और श्री दोल्फ़ुस तथा उनके सहयोगियों ने अपने मज़दूरों को छोटे-छोटे घर वार्षिक किश्तों पर बेचकर उनकी सारी क्रान्तिकारी भावना का गला घोंटने और साथ ही इस सम्पत्ति द्वारा मज़दूरों को कारख़ाने से बांधने का प्रयास किया था। इस तरह प्रूदों की योजना ने मज़दूर वर्ग को राहत पहुंचाना तो रहा बहुत दूर, वह सीधे उनके ही विरुद्ध सिद्ध हुई।"*

तो फिर आवास प्रश्न किस तरह हल किया जाये? वर्तमान समाज में उसे किसी भी अन्य सामाजिक प्रश्न की तरह हल किया जाता है – मांग तथा पूर्ति के धीरे-धीरे आर्थिक समतलन के द्वारा, एक ऐसे हल द्वारा जो प्रश्न को फिर बार-बार पैदा करता है और इसलिए जो कोई हल है ही नहीं। इस प्रश्न को सामाजिक क्रान्ति कैसे हल करेगी, यह चीज हर मामले की परिस्थितियों पर ही निर्भर नहीं करती, अपितु कहीं अधिक व्यापक प्रश्नों से भी जुड़ी हुई है जिनमें से एक प्रश्न शहर तथा देहात के बीच विरोध का उन्मूलन है। चूंकि भावी समाज के संगठन के लिए कोई काल्पनिक प्रणालियां रचना हमारा काम नहीं है, इसलिए यहां इस प्रश्न का विवेचन करना सर्वथा निरर्थक होगा। परन्तु एक चीज़ निश्चित

---

*मज़दूर को अपने "घर" से बांधे रखकर आवास प्रश्न का यह समाधान बड़े या तेजी से उभरते जा रहे अमरीकी नगरों के आस-पड़ौस में किस तरह स्वतःस्फूर्त ढंग से जन्म ले रहा है, इसका पता २८ नवम्बर १८८६ को इंडियानापोलिस से एलिओनोर मार्क्स-एवेलिंग की एक चिट्ठी के निम्नलिखित अंश से चल जाता है, "कन्ज़ास सिटी में, या कहिए कि उसके पास हमने अब भी वीरान पड़े इलाक़ों के बीच लकड़ी की बनी कुछ दयनीय, कोई तीन कमरों वाली झोंपड़ियां देखीं; जमीन की लागत ६०० डालर थी, वह बस इतनी बड़ी थी कि उस पर एक छोटा-सा घर खड़ा किया जा सकता है; उस दलदली वीरान भूमि पर खड़ी छोटी-सी झोंपड़ी पर, जहां शहर से आने-जाने में एक घंटे का समय लगता है, और ६०० डालर, यानी सब मिलाकर ४,८०० मार्क की लागत आयी।" इस तरह मज़दूरों को घर हासिल करने के लिए भारी बंधक-ऋण वहन करना पड़ता है और वे वस्तुतः अपने मालिकों के ग़ुलाम बन जाते हैं। वे अपने घरों से बंध जाते हैं, वे वहां से जा नहीं सकते, काम-काज की जो भी शर्तें उनके सामने रखी जायें, उन्हें उनसे सहमत होना पड़ता है। **(१८८७ के संस्करण में एंगेल्स की टिप्पणी)**

है – बड़े शहरों में यह सारी "मकानों की **कमी**" दूर करने के लिए मकान पर्याप्त संख्या में मौजूद हैं बशर्ते उनका विवेकपूर्वक उपयोग किया जाये। यह स्वभावतः तभी हो सकता है जब मौजूदा मकान-मालिकों के मकानों को हस्तगत करके मौजूदा गृहहीन मज़दूरों अथवा भीड़भरे घरों में रहनेवाले मज़दूरों को उनमें बसा दिया जाये। सर्वहारा ज्योंही राजनीतिक सत्ता हासिल कर लेगा, तब सामाजिक कल्याण के हितों से प्रेरित इस तरह का पग उठाना उतना ही सुगम होगा जितना आधुनिक राज्य द्वारा अन्य प्रकार के सम्पत्तिहरण तथा रिहायशी घरों को अपने अधिकार में किया जाना।

* * *

परन्तु हमारे प्रूदोंपंथी* आवास प्रश्न के मामले में अपनी पिछली उपलब्धियों से सन्तुष्ट नहीं हैं। उन्हें तो प्रश्न को ज़मीन से ऊपर उठाकर उच्च समाजवाद के क्षेत्र तक पहुंचाना है ताकि वह वहां भी अपने को "सामाजिक प्रश्न का" मूलभूत "भाग" सिद्ध कर सके –

"आइये, अब हम यह मान लें कि पूंजी की उत्पादकता की समस्या से, मिसाल के तौर पर, एक ऐसे संक्रमणकालीन क़ानून से सीधे-सीधे निपटा जाता है – और यह देर-सबेर करना ही होगा – **जो सारी पूंजियों पर एक प्रतिशत ब्याज नियत करता है**, परन्तु ध्यान रहे, उसमें ब्याज की इस दर को भी अधिकाधिक शून्य के बराबर तक पहुंचाने की प्रवृत्ति होगी ताकि अन्ततः **पूंजी के आवर्त के लिए आवश्यक श्रम** से अधिक का भुगतान न करना पड़े। तमाम अन्य उत्पादों की ही तरह मकान तथा घर भी स्वभावतया इस क़ानून के कार्यक्षेत्र के अन्तर्गत आ जाते हैं... मालिक स्वयं अपने मकान की बिक्री के लिए तैयार हो जायेगा, अन्यथा उसका मकान खाली पड़ा रहेगा और उस पर लगी पूंजी बस बेकार पड़ी रहेगी।"

इस उद्धरण में प्रूदोंपंथी प्रश्नोत्तरी का एक मुख्य सूत्र निहित है और वह उसके अन्दर मौजूद भ्रम का उल्लेखनीय उदाहरण प्रस्तुत करता है।

"पूंजी की उत्पादकता" ऐसी बेतुकी चीज़ है जिसे प्रूदों पूंजीवादी अर्थशास्त्रियों से आंखें बन्द कर ग्रहण कर लेते हैं। यह सच है कि पूंजीवादी अर्थशास्त्री भी इस

---

* म्यूलबर्गर। – सं०

कथन से शुरूआत करते हैं कि श्रम सारी सम्पदा का स्रोत तथा समस्त मालों के मूल्य का पैमाना है। परन्तु उन्हें यह भी समझाना होगा कि यह कैसे होता है कि पूंजीपति किसी औद्योगिक या दस्तकारी के व्यवसाय के लिए जो पूंजी देता है, उसके फल के रूप में उसे आख़िर में मूल पूंजी ही नहीं, वरन् उसके अलावा मुनाफ़ा भी मिल जाता है। इसी कारण उन्हें सब तरह के विरोधों में उलझना पड़ता है तथा पूंजी में कुछ उत्पादकता भी बतानी पड़ती है। प्रूदों पूंजीवादी विचारधारा के जाल में कैसे पूरी तरह उलझे हुए हैं, इसे स्पष्ट रूप से प्रमाणित करने के लिए इससे बड़ा और कोई तथ्य नहीं है कि प्रूदों ने पूंजी की उत्पादकता का यह वाक्यांश उससे ग्रहण किया है। हमने शुरू से ही देखा है कि तथाकथित "पूंजी की उत्पादकता" (वर्तमान सामाजिक सम्बन्धों के अन्तर्गत जिनके बिना वह पूंजी ही न रहेगी) उजरती मज़दूरों के अवेतन श्रम को हड़पने में सक्षम होने के गुण के अलावा और कुछ नहीं है।

परन्तु प्रूदों पूंजीवादी अर्थशास्त्रियों से इस बात में भिन्न हैं कि वह इस "पूंजी की उत्पादकता" को पसन्द नहीं करते, बल्कि उलटे इसमें "शाश्वत न्याय" का उल्लंघन पाते हैं। यही उत्पादकता मज़दूर को अपने श्रम की पूरी आय की प्राप्ति नहीं होने देती। इसलिए उसे मिटाया जाना चाहिए। परन्तु कैसे? अनिवार्य क़ानून बनाकर **ब्याज की दर** घटाकर तथा अन्ततः उसे शून्य पर पहुंचाकर। तब हमारे प्रूदोंपंथी के अनुसार पूंजी उत्पादक नहीं रह जायेगी।

मुद्रा ऋण पूंजी का ब्याज मुनाफ़े का एक भाग मात्र है; मुनाफ़ा चाहे औद्योगिक पूंजी पर हो या वाणिज्यिक पूंजी पर, वह पूंजीपति वर्ग द्वारा मज़दूर वर्ग से अवेतन श्रम के रूप में हस्तगत अतिरिक्त मूल्य का एक भाग मात्र है। ब्याज की दर का नियमन करनेवाले आर्थिक क़ानून अतिरिक्त मूल्य की दर का नियमन करनेवाले क़ानूनों से उतने ही स्वतंत्र हैं जितना एक ही रूप के समाज के क़ानूनों के मामले में सम्भव हो सकता है। परन्तु जहां तक व्यक्तिगत तौर पर पूंजीपतियों के बीच इस अतिरिक्त मूल्य के वितरण का सम्बन्ध है, यह स्पष्ट है कि उद्योगपतियों तथा तिजारतियों के लिए, जिनके कारोबार में दूसरे पूंजी-पतियों की पूंजी बहुत बड़ी मात्रा में लगी हुई होती है, मुनाफ़े की दर—तमाम अन्य परिस्थितियों के समान होने की दशा में—उसी हिसाब से बढ़नी चाहिए जिस हिसाब से ब्याज की दर घटती है। इसलिए ब्याज में कमी और उसके उन्मूलन से तथाकथित "पूंजी की उत्पादकता" की समस्या से वस्तुतः कभी "सीधे-सीधे नहीं निपटा जा सकता"। वे मज़दूर वर्ग से हस्तगत किये जानेवाले

प्रदत्त अतिरिक्त मूल्य का व्यक्तिगत तौर पर पूंजीपतियों के बीच पुनर्वितरण की व्यवस्था करने से अधिक कुछ नहीं कर पायेंगे। वे औद्योगिक पूंजीपति के मुक़ाबले मज़दूर को नहीं, वरन् किरायाजीवी के मुक़ाबले औद्योगिक पूंजीपति को लाभ पहुंचायेंगे।

प्रूदों अपने क़ानूनी दृष्टिकोण से सारे आर्थिक तथ्यों की ही तरह ब्याज की दर को भी सामाजिक उत्पादन की अवस्थाओं द्वारा नहीं, बल्कि राजकीय क़ानूनों द्वारा, जिनमें ये अवस्थाएं आम अभिव्यक्ति पाती हैं, समझाते हैं। इस दृष्टिकोण से, जिसमें राजकीय क़ानूनों तथा समाज में उत्पादन की अवस्थाओं के बीच अन्तस्सम्बन्ध की कोई गुंजायश तक नहीं है, ये राजकीय क़ानून अनिवार्यतः विशुद्ध रूप से मनमाने आदेश प्रतीत होते हैं जिनकी जगह किसी भी समय उनके ठीक विपरीत आदेश ले सकते हैं। इसलिए प्रूदों के लिए ऐसी आज्ञप्ति जारी करने से - यदि उन्हें इसका अधिकार मिल जाये - अधिक आसान और कोई काम नहीं है जो ब्याज की दर घटाकर एक प्रतिशत कर दे। पर यदि समस्त अन्य सामाजिक अवस्थाएं वैसी ही रहें जैसी वे हैं तो यह प्रूदोंपंथी आज्ञप्ति मात्र काग़ज़ी कार्रवाई होगी। ब्याज की दर का सारी आज्ञप्तियों के बावजूद आर्थिक क़ानूनों द्वारा, जो उस पर आज लागू होते हैं, नियमन होता रहेगा। उधार चुका सकनेवाले लोग परिस्थितियों के अनुसार दो, तीन, चार या इससे भी अधिक प्रतिशत ब्याज पर उधार लेते रहेंगे। अन्तर केवल इतना होगा कि किरायाजीवी बहुत सावधानीपूर्वक केवल उन लोगों को ही धन उधार देंगे जिनसे किसी तरह की मुक़दमेबाज़ी की सम्भावना नहीं होगी। यही नहीं, पूंजी को उसकी "उत्पादकता" से वंचित करने की यह महान योजना आद्य मूल की है; वह **सूदख़ोरी विषयक क़ानूनों** जितनी पुरानी है जिनका लक्ष्य ब्याज की दर सीमित करने के अलावा और कुछ नहीं था और जिन्हें आगे चलकर ख़त्म कर दिया गया क्योंकि व्यवहार में निरन्तर उनका या तो उल्लंघन होता रहा अथवा उनसे बचा जाता रहा। फिर राज्य को स्वीकार करना पड़ा कि वह सामाजिक उत्पादन के क़ानूनों के सामने असहाय है। इन मध्य-युगीन और अव्यवहार्य क़ानूनों को फिर से प्रचलित करना क्या "पूंजी की उत्पादकता से सीधे-सीधे निपटना" है! प्रूदोंपंथ की जितनी बारीकी से जांच की जाये, वह उतना ही ज़्यादा प्रतिक्रियावादी रूप में प्रकट होता है।

और इस ढंग से ब्याज की दर जब शून्य तक पहुंचा दी जायेगी और इसलिए पूंजी पर ब्याज ख़त्म कर दिया जायेगा, तब "पूंजी के आवर्त्त के लिए आवश्यक श्रम से ज़रा भी ज़्यादा भुगतान नहीं किया जायेगा।" इसका यह अर्थ होगा

कि ब्याज का ख़ात्मा मुनाफ़े के, यही नहीं, अतिरिक्त मूल्य के ख़ात्मे के बराबर है। परन्तु किसी आज्ञप्ति से यदि ऐसा करना **सचमुच** सम्भव होता तो उसका परिणाम क्या निकलता? **किरायाजीवियों** के वर्ग के लिए अपनी पूंजी उधार के रूप में देने के वास्ते कोई प्रलोभन न रह जाता और वे उसे अपने जोखिम पर अपने औद्योगिक प्रतिष्ठानों पर या ज्वायंट स्टाक कम्पनियों पर लगाते। पूंजीपति वर्ग द्वारा मजदूर वर्ग से हस्तगत अतिरिक्त मूल्य का परिमाण उतना ही बना रहता; केवल उसका वितरण परिवर्तित होता और वह भी बहुत ज़्यादा नहीं।

वस्तुतः हमारे प्रूदोंपंथी यह नहीं देख पाते कि इस समय भी पूंजीवादी समाज में माल की ख़रीद में "पूंजी के आवर्त्त के लिए आवश्यक श्रम" से ज़्यादा भुगतान नहीं किया जाता (इसका इस तरह अर्थ लगाया जा सकता है–निश्चित माल के उत्पादन के लिए आवश्यक)। श्रम सारे मालों के मूल्य का पैमाना है। और वर्तमान समाज में–मंडी में उतार-चढ़ावों को छोड़कर–यह बिल्कुल असम्भव है कि कुल मिलाकर मालों के लिए उससे ज़्यादा भुगतान किया जाये जो उनके उत्पादन के लिए आवश्यक होता है। जी नहीं, प्यारे प्रूदोंपंथी, कठिनाई तो सर्वथा अन्यत्र निहित है। वह इस तथ्य में निहित है कि "पूंजी के आवर्त्त के लिए आवश्यक श्रम" का (यदि आपके ही भ्रान्तिपूर्ण वाक्यांश को इस्तेमाल किया जाये) **पूरी तरह भुगतान ही नहीं किया जाता!** यह कैसे होता है, इसके लिए मार्क्स को पढ़ें ('पूंजी', खंड १, पृष्ठ १२८–१६०)।

परन्तु इतना ही नहीं। यदि **पूंजी पर** ब्याज (Kapitalzins) ख़त्म कर दिया जाता है तो **मकान का** किराया (Mietzins)* भी उसके साथ ख़त्म हो जाता है क्योंकि "तमाम अन्य उत्पादों की तरह, मकान तथा घर भी स्वभावतया इस क़ानून के कार्यक्षेत्र में शामिल किये गये हैं।" यह बिल्कुल उस बूढ़े मेजर की मनोभावना के अनुकूल है जिसने एक रंगरूट अपने पास बुलाया और उससे कहा–

"सुना है कि तुम डाक्टर हो; समय-समय पर मेरे घर आया करो। जब घर पर पत्नी और सात बच्चे हों तो वहां कोई न कोई इलाज के लिए होगा ही।"

---

* Zins – ब्याज। Mietzins – मकान-किराया। शाब्दिक अर्थ है किराया-ब्याज। – सं०

रंगरूट, "पर, मेजर साहब, मैं तो दर्शनशास्त्र का डाक्टर हूं!"

मेजर, "इससे क्या फ़र्क़ पड़ता है; डाक्टर डाक्टर में क्या फ़र्क़ है!"

हमारे प्रूदोंपंथी भी इसी तरह पेश आते हैं। उनके लिए मकान का किराया हो या पूंजी पर ब्याज, दोनों एक ही चीज़ हैं। ब्याज ब्याज में क्या फ़र्क़ है, डाक्टर डाक्टर में क्या फ़र्क़ है!

हम ऊपर देख चुके हैं कि किराये का दाम, जिसे हम सामान्यतया मकान-किराया कहते हैं, जिन चीज़ों को लेकर बनता है, वे इस प्रकार हैं– १) एक हिस्सा जो ज़मीन के किराये का होता है, २) एक हिस्सा जो निर्माण पूंजी पर ब्याज का होता है, जिसमें निर्माता का मुनाफ़ा भी शामिल है, ३) एक हिस्सा जो मरम्मत तथा बीमे पर जाता है, ४) एक हिस्सा जिससे मुनाफ़ा समेत निर्माण पूंजी का, उस हिसाब से जिस हिसाब से मकान का धीरे-धीरे मूल्य-ह्रास होता है, वार्षिक प्रतिशोधन करना पड़ता है।

अब अंधे व्यक्ति के लिए भी यह स्पष्ट हो जायेगा कि "सबसे पहले स्वयं मालिक अपने मकान की बिक्री के लिए तैयार हो जायेगा, अन्यथा उसका मकान खाली पड़ा रहेगा और उस पर लगी पूंजी सरासर बेकार पड़ी रहेगी।" बेशक। यदि उधार पूंजी पर ब्याज ख़त्म कर दिया जाये तो कोई भी मकान-मालिक आगे से अपने मकान के लिए किराये की एक दमड़ी भी प्राप्त नहीं कर पायेगा, सिर्फ़ इसलिए कि मकान-किराये को किराया-ब्याज का नाम भी दिया जा सकता है, इसलिए कि इसमें एक हिस्सा ऐसा है जो दरअसल पूंजी पर ब्याज है। डाक्टर डाक्टर में क्या फ़र्क़ है। हालांकि पूंजी पर सामान्य ब्याज से सम्बन्धित सूदख़ोरी विषयक क़ानूनों को उनका उल्लंघन करके ही प्रभावहीन बनाया जा सकता था, उन्होंने मकान-किराये की दर को कभी भी स्पर्श तक नहीं किया। प्रूदों ही यह कल्पना कर सकते थे कि सूदख़ोरी विषयक उनका नया क़ानून पूंजी पर सामान्य ब्याज का ही नहीं, वरन् आवास के जटिलताभरे मकान-किराये का भी बिना किसी कठिनाई के नियमन कर सकेगा तथा उसे धीरे-धीरे ख़त्म कर सकेगा। तो फिर मकान-मालिक को अच्छी-ख़ासी रक़म देकर उससे "सरासर बेकार" मकान क्यों ख़रीदा जाये, और मकान-मालिक इन परिस्थितियों के अन्तर्गत इस "सरासर बेकार" मकान से छुटकारा पाने के लिए क्यों न स्वयं पैसा दे ताकि वह मरम्मत कार्यों पर होनेवाले ख़र्चों से बच सके– यह हमारे लिए रहस्य बना हुआ है।

उच्च समाजवाद (गुरु प्रूदों ने इसे «Suprasocialism»* का नाम दिया था) के क्षेत्र में इस शानदार उपलब्धि के बाद हमारे प्रूदोंपंथी अपनी और भी ऊंची उड़ान को उचित ठहराते हैं–

"अब इतना और करना बाक़ी रह गया है कि कुछ निष्कर्ष निकाले जायें ताकि हमारे इतने महत्वपूर्ण विषय पर चारों ओर से पूरी रोशनी डाली जा सके।"

और ये निष्कर्ष क्या हैं? ये निष्कर्ष भी ब्याज के ख़ात्मे से मकानों के बेकार होने जैसे पूर्वोक्त निष्कर्षों से ज़्यादा भिन्न नहीं हैं। यदि हमारे लेखक महाशय की वाक्यावली से उसका शाब्दिक चमत्कार तथा शब्दाडम्बर हटा दिया जाये तो उसका इससे ज़्यादा और कोई अर्थ नहीं रह जायेगा कि किराये पर उठाये जानेवाले मकानों को छुड़ाने का काम सुगम बनाने के लिए निम्नलिखित बातें वांछनीय हैं– १) विषय पर ठीक-ठीक आंकड़े, २) सफ़ाई की अच्छी-ख़ासी जांच व्यवस्था, ३) नये मकानों के निर्माण का बीड़ा उठाने के लिए भवन-निर्माण मज़दूरों की सहकारी संस्थाएं। ये सब चीज़ें बेशक अच्छी और बहुत बढ़िया भी हैं परन्तु सारे कोलाहलपूर्ण वाक्यों में प्रस्तुत किये जाने के बावजूद वे प्रूदोंपंथी मानसिक भ्रान्ति के धुंधलेपन पर "पूरी रोशनी" कदापि नहीं डाल पातीं।

जो इतनी बड़ी चीज़ें हासिल कर चुका है, उसे जर्मन मज़दूरों को एक गम्भीर समादेश के साथ सम्बोधित करने का अधिकार है–

"ये तथा इन जैसे प्रश्न, हमारी राय में, सामाजिक जनवाद के विचारार्थ सर्वथा उपयुक्त हैं... उसे यहां आवास प्रश्न की तरह **उधार, राजकीय ऋण, निजी ऋण, कर, आदि** दूसरे तथा समान रूप से महत्वपूर्ण प्रश्नों की स्पष्टता-पूर्वक चर्चा करने का प्रयास करना चाहिए।"

इस तरह हमारे प्रूदोंपंथी यहां हमसे "इन जैसे प्रश्नों" पर एक पूरी लेखमाला पेश करने का वचन दे रहे हैं। और यदि वह उन सब का उतनी ही पूर्णता के साथ चर्चा करेंगे जितनी पूर्णता के साथ उन्होंने मौजूदा "समान रूप से महत्वपूर्ण प्रश्न" की चर्चा की तो *«Volksstaat»* अख़बार के पास पूरे एक साल के लिए पर्याप्त सामग्री हो जायेगी। परन्तु हम पहले से कल्पना करने की स्थिति में हैं–वह सब वही है जो पहले कहा जा चुका है–पूंजी पर ब्याज ख़त्म किया जायेगा, और उसके साथ राजकीय तथा निजी ऋणों पर ब्याज लुप्त हो जायेंगे,

* अधिसमाजवाद। – सं०

उधार मुफ़्त होंगे, आदि। यही जादुई फ़ार्मूला किसी भी तथा हर विषय पर लागू किया जाता है और प्रत्येक मामले में अटल तर्क के साथ एक ही विस्मयकारी परिणाम, अर्थात् यह परिणाम सामने आता है कि जब पूंजी पर ब्याज मिटा दिया जायेगा, तब उधार लिये हुए धन पर कोई ब्याज नहीं देना पड़ेगा।

प्रसंगतः ये बहुत अच्छे प्रश्न भी हैं जिनसे हमारे प्रूदोंपंथी हमें भयभीत कर रहे हैं–**उधार!** मज़दूर को उसके अलावा और किस उधार की ज़रूरत है जो वह सप्ताह-प्रति सप्ताह या माल गिरवी रखनेवाली दुकान से हासिल करता है? वह उधार उसे ब्याज पर या बिना ब्याज के मिलता है, या यही नहीं माल गिरवी रखनेवाली दुकान से महाजनी दर तक पर मिलता है, इन सब से उसे क्या फ़र्क़ पड़ता है? और यदि वह, सामान्यतया, इससे कुछ फ़ायदा हासिल कर भी लेता कहने का मतलब यह है कि यदि श्रम शक्ति की उत्पादन लागत घट भी जाये तो क्या श्रम शक्ति की क़ीमत अवश्यम्भावी रूप से नहीं गिरेगी? परन्तु पूंजीपति, खास तौर पर निम्नपूंजीपति के लिए उधार महत्वपूर्ण मामला है और यदि विशेष रूप से निम्नपूंजीपति बिना ब्याज के किसी भी समय उधार हासिल कर सके तो यह उसके लिए बहुत अच्छी बात होगी।–**राजकीय ऋण!** मज़दूर वर्ग जानता है कि ये ऋण उसने नहीं लिये हैं और जब वह सत्तारूढ़ होगा तो वह उनकी अदायगी का काम उन पर छोड़ देगा जिन्होंने वे ऋण लिये हैं।–**निजी ऋण!**–देखें उधार।–**कर!** यह ऐसा मामला है जिसमें पूंजीपतियों की बहुत ज़्यादा परन्तु मज़दूर की बहुत कम दिलचस्पी है। मज़दूर करों के रूप में जो देता है, वह अन्ततोगत्वा श्रम शक्ति की उत्पादन लागत में चला जाता है, इसलिए उसकी पूर्ति पूंजीपति को करनी चाहिए। ये सब चीज़ें, जो हमारे सामने मज़दूर वर्ग के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रश्नों के रूप में प्रस्तुत की जाती हैं, दरअसल केवल पूंजीपतियों और उनसे भी ज़्यादा निम्नपूंजीपतियों के लिए ही मूलतः दिलचस्पी के विषय हैं। और प्रूदों के विपरीत हमारी यह मान्यता है कि इन वर्गों के हितों की रक्षा करना मज़दूर वर्ग की ज़िम्मेवारी नहीं है।

उस महान प्रश्न के बारे में, जिसका मज़दूरों से वस्तुतः सम्बन्ध है, पूंजीपति तथा उजरती मज़दूर के बीच सम्बन्ध के प्रश्न के बारे में, पूंजीपति कैसे अपने मज़दूरों के श्रम से अपने को समृद्ध बना लेता है, इस प्रश्न के बारे में हमारे प्रूदोंपंथी एक भी शब्द नहीं कहते। यह सच है कि उनके गुरु ने इस प्रश्न में हाथ डाला था परन्तु मामले में स्पष्टता का क़तई कोई समावेश नहीं किया। अपनी नवीनतम रचनाओं तक में वह मूलतः अपनी 'दरिद्रता का दर्शन' शीर्षक

रचना से आगे नहीं बढ़ पाये जिसकी मार्क्स १८४७ में ही ख़ूब धज्जियां उड़ा चुके थे।*

दुर्भाग्य की बात है कि पचीस वर्षों तक लैटिन देशों के मज़दूरों के पास "द्वितीय साम्राज्य के" इस "समाजवादी" की रचनाओं के अलावा प्राय: कोई अन्य समाजवादी बौद्धिक आहार नहीं था। और अगर प्रूदोंपंथी सिद्धान्त अब जर्मनी में भी प्रवाहित होने लगे तो यह और भी दुर्भाग्य की बात होगी। परन्तु इसका कोई डर नहीं है। जर्मन मज़दूरों का सैद्धान्तिक दृष्टिकोण प्रूदोंपंथ से पचास वर्ष आगे है, और इस मामले में और मुसीबत से बचने के लिए इस एक प्रश्न को, आवास प्रश्न को ही उदाहरणस्वरूप लेना पर्याप्त होगा।

भाग २

पूंजीपति वर्ग आवास प्रश्न किस तरह हल करता है

१

आवास प्रश्न के **प्रूदोंपंथी** समाधान-सम्बन्धी अनुभाग में यह सिद्ध किया गया था कि इस प्रश्न में निम्नपूंजीपति वर्ग की कैसे प्रत्यक्ष दिलचस्पी है। परन्तु बड़े पूंजीपति वर्ग की भी उसमें बहुत दिलचस्पी है भले ही वह प्रत्यक्ष न हो। आधुनिक प्रकृति विज्ञान ने सिद्ध किया है कि तथाकथित "ग़रीब ज़िले", जिनमें मज़दूर ठसाठस भरे रहते हैं, किस तरह उन सारी महामारियों की जन्म-स्थली हैं जिनका समय-समय पर हमारे शहरों पर प्रकोप होता रहता है। हैज़ा, टाइफ़स, टाइफ़ाइड बुख़ार, चेचक तथा अन्य विनाशकारी बीमारियां मज़दूर वर्ग के इन मुहल्लों की प्रदूषित हवा तथा ज़हरीले पानी में अपने रोगाणु फैलाती हैं। यहां रोगाणु कभी पूरी तरह नहीं मरते और अपने लिए परिस्थितियां अनुकूल होते ही वे महामारियों का रूप ग्रहण कर लेते हैं और फिर अपनी जन्म-स्थली के पार पहुंचते हुए शहर के उन अधिक हवादार और आरोग्यकर स्थानों में फैल जाते हैं जहां पूंजीपति बसे हुए हैं। पूंजीवादी शासन के लिए मज़दूर वर्ग के बीच महामारियों को पैदा

* कार्ल मार्क्स, 'दर्शन की दरिद्रता। श्री प्रूदों की रचना 'दरिद्रता के दर्शन' का उत्तर'। — **सं०**

होने देना एक ऐसी ऐयाशी होगी जिसकी सज़ा से वह बच नहीं सकता; उसके परिणाम उल्टे पूंजीपतियों पर भी मार करते हैं, यमराज उनके बीच उतना ही रौद्र रूप धारण करता है जितना मज़दूरों के बीच।

यह तथ्य ज्योंही वैज्ञानिक ढंग से प्रमाणित हुआ, लोकोपकारी पूंजीपति का रोम-रोम मज़दूरों की सेहत के लिए चिन्ता की होड़ की भावना से ओतप्रोत हो गया। बार-बार फैलनेवाली महामारियों के स्रोत बन्द करने के लिए संस्थाएं स्थापित की गयीं, पुस्तकें लिखी गयीं, प्रस्ताव तैयार किये गये तथा क़ानूनों पर बहसें हुईं तथा उन्हें पास किया गया। मज़दूरों के आवास की अवस्थाओं की जांच की गयी तथा सबसे असहनीय बुराइयों को दूर करने की कोशिशें की गयीं। ख़ास तौर पर इंगलैंड में ज़ोरदार सरगर्मियां शुरू हुईं जहां बड़े शहर सबसे ज़्यादा संख्या में थे और जहां इस कारण स्वयं पूंजीपति वर्ग के लिए सबसे बड़ा ख़तरा था। मज़दूर वर्गों की स्वच्छता-सम्बन्धी अवस्थाओं की जांच करने के लिए सरकारी आयोग नियुक्त किये गये। उनकी रिपोर्टों ने, जो अपनी शुद्धता, पूर्णता तथा निष्पक्षता के मामले में तमाम प्रकाशित महाद्वीपीय सामग्रियों की तुलना में श्रेष्ठ थीं, नये न्यूनाधिक आमूलवादी क़ानूनों का आधार प्रस्तुत किया। ये क़ानून अपूर्ण अवश्य हैं परन्तु इसके बावजूद वे उन सब कामों से असीम रूप से श्रेष्ठ हैं जो इस दिशा में महाद्वीप में अब तक किये गये हैं। फिर भी पूंजीवादी सामाजिक व्यवस्था इन बीमारियों को, जिनके इलाज की यहां चर्चा की गयी है, ऐसी अनिवार्यता के साथ बार-बार पैदा करती है कि इंगलैंड तक में उनके इलाज का काम एक पग भी आगे नहीं बढ़ पाया है।

जर्मनी को अपने यहां महामारियों के स्थायी स्रोतों द्वारा ख़तरे की ऐसी सीमा पर, जहां निद्राग्रस्त बड़े पूंजीपति वर्ग को झकझोरना आवश्यक हो गया था, पहुंचने के लिए हमेशा की तरह कहीं अधिक लंबा समय लगा। परन्तु जो धीमे-धीमे चलता है, वह निश्चित रूप से आगे बढ़ता है। और इस तरह हमारे बीच भी अन्ततः सार्वजनिक स्वच्छता तथा आवास प्रश्न पर पूंजीवादी साहित्य ने जन्म ले लिया है, वह अपने विदेशी, विशेष रूप से अंग्रेज़ पूर्ववर्तियों का दयनीय उद्धरण है जिसे कपटपूर्ण ढंग से तड़कीले-भड़कीले तथा लच्छेदार वाक्यों का लिबास पहनाकर उच्च अवधारणा का रूप देने का प्रयास किया गया है। **'मेहनतकश वर्गों की आवास परिस्थितियां तथा उनका सुधार'** शीर्षक पुस्तक इसी साहित्य का अंग है जिसे डा० एमिल जाक्स ने लिखा है तथा जो १८६९ में वियेना में प्रकाशित हुई है।

मैंने आवास प्रश्न पर पूंजीवादी दृष्टिकोण के प्रस्तुतीकरण के लिए यह पुस्तक केवल इसलिए चुनी है कि यह इस विषय पर पूंजीवादी साहित्य का यथासम्भव सामान्यीकरण करने की कोशिश करती है। और यह भी कितना बढ़िया साहित्य है जो हमारे लेखक के लिए "स्रोत" का काम देता है! अंग्रेज़ संसदीय रिपोर्टों में से, सही अर्थों में मुख्य स्रोतों में से केवल तीन की, जो सबसे पुरानी हैं, बस नाम देकर चर्चा कर दी गयी है। पूरी पुस्तक सिद्ध करती है कि लेखक ने **उनमें से एक पर भी कभी नज़र नहीं डाली है**। दूसरी ओर तुच्छ पूंजीवादी, सदाशयी कूपमंडूकतावादी तथा पाखंडपूर्ण लोकोपकारी रचनाओं की एक पूरी शृंखला प्रस्तुत की गयी है—ड्यूकपेसो, राबर्ट्स, होल, ह्यूबर की रचनाएं, समाज विज्ञान (यों कहें कि सामाजिक अनाप-शनाप) पर अंग्रेज़ कांग्रेस की कार्यवाहियां, मेहनतकश वर्गों के मंगल-कल्याण की प्रशियाई संस्था की पत्रिका, पेरिस में विश्व प्रदर्शनी पर आस्ट्रियाई सरकारी रिपोर्ट, इसी विषय पर बोनापार्तपंथी सरकारी रिपोर्टें, *«Illustrated London News»*,[65] *Über Land und Meer»*[66] और अन्ततः "एक प्रामाणिक विशेषज्ञ", "प्रखर व्यावहारिक बुद्धि वाला", "प्रभावोत्पादक वक्ता", अर्थात् **जूलियस फ़ाउहेर**! सामग्री स्रोतों की इस सूची से बस ये ही नाम ग़ायब हैं—*«Gartenlaube»*[67], *«Kladderadatsch»*[68] तथा फ़ूसिलिए कुचके[69]।

अपने दृष्टिकोण के बारे में कोई ग़लतफ़हमी पैदा न हो, इसलिए श्री ज़ाक्स पृष्ठ २२ पर घोषित करते हैं—

"सामाजिक अर्थशास्त्र से हमारा तात्पर्य सामाजिक प्रश्नों पर लागू होनेवाले राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के सिद्धान्त से है, या अधिक सटीक ढंग से कहें तो उन उपायों तथा साधनों की समग्रता से है जिन्हें यह विज्ञान **इस समय विद्यमान समाज की व्यवस्था के ढांचे के अन्तर्गत अपने 'लौह' क़ानूनों के आधार पर तथाकथित (!) सम्पत्तिहीन वर्गों को सम्पत्तिधारी वर्गों के स्तर पर पहुंचाने के लिए हमारे समक्ष प्रस्तुत करता है।**"

हम इस भ्रान्त विचार पर बहस नहीं करेंगे कि सामान्यतया "राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का सिद्धान्त" अथवा राजनीतिक अर्थशास्त्र "सामाजिक" प्रश्नों के अलावा बाक़ी सारे प्रश्नों से सम्बन्ध रखता है। हम तुरन्त मुख्य बिन्दु पर ग़ौर करेंगे। डा० ज़ाक्स मांग करते हैं कि पूंजीवादी अर्थशास्त्र के "लौह क़ानूनों को, इस समय विद्यमान समाज की व्यवस्था के ढांचे को", दूसरे शब्दों में उत्पादन

की पूंजीवादी पद्धति को अपरिवर्तित रूप से जारी रहना चाहिए, तथापि "तथाकथित सम्पत्तिहीन वर्गों को सम्पत्तिधारी वर्गों के स्तर पर" पहुंचाया जाना चाहिए। परन्तु उत्पादन की पूंजीवादी पद्धति की एक अपरिहार्य प्रारम्भिक शर्त यह है कि सही मानों में—तथाकथित नहीं—एक सम्पत्तिहीन वर्ग का अस्तित्व हो, ऐसे वर्ग का अस्तित्व हो जिसके पास अपनी श्रम शक्ति के अलावा बेचने के लिए और कुछ नहीं होता और जो इस कारण अपनी श्रम शक्ति औद्योगिक पूंजीपतियों के हाथों में बेचने के लिए विवश होता है। इसलिए श्री ज़ाक्स द्वारा गढ़े गये नये विज्ञान का—सामाजिक अर्थशास्त्र का—कार्यभार एक ओर पूंजीपतियों, सारे कच्चे मालों, उत्पादन के औज़ारों तथा जीवन निर्वाह के साधनों के स्वामियों तथा दूसरी ओर सम्पत्तिहीन उजरती मज़दूरों, केवल अपनी श्रम शक्ति को—और किसी भी चीज़ को नहीं—अपना कहनेवालों के बीच विरोध पर आधारित सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत ऐसे उपायों तथा साधनों की तलाश करना है जिनके द्वारा इस सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत सारे उजरती मज़दूरों को उजरती मज़दूर बनाये रखते हुए पूंजीपतियों में परिणत किया जा सके। श्री ज़ाक्स समझते हैं कि उन्होंने समस्या हल कर डाली है। परन्तु वह हमें यह बताने की कृपा करें कि फ़्रांसीसी सेना के सारे सिपाहियों को, जिनमें से हरेक के झोले में नेपोलियन प्रथम के ज़माने से ही मार्शल की छड़ी होती है, सिपाही बने रहने के साथ-साथ कैसे फ़ील्ड मार्शल बनाया जा सकता है। या यह कैसे सम्भव होगा कि जर्मन साम्राज्य के पूरे ४ करोड़ प्रजाजनों को जर्मन सम्राट बना दिया जाये।

मौजूदा समाज की सारी बुराइयों के आधार को बरक़रार रखने और साथ ही स्वयं बुराइयों को मिटाने की इच्छा पूंजीवादी समाजवाद का सारतत्व है। जैसा कि 'कम्युनिस्ट घोषणापत्र' में पहले ही लक्षित किया जा चुका है, पूंजीवादी समाजवादी "पूंजीवादी समाज को बरक़रार रखने के लिए समाज की बुराइयों को दूर करना चाहते हैं"; वे चाहते हैं कि "पूंजीपति वर्ग हो, लेकिन सर्वहारा न हो।" हम देखते हैं कि श्री ज़ाक्स समस्या को ठीक उसी तरह निरूपित करते हैं। सामाजिक समस्या का समाधान वह आवास प्रश्न के समाधान में देखते हैं। उनकी राय है कि

"मेहनतकश वर्गों की आवास की स्थिति सुधार कर वर्णित शारीरिक तथा आत्मिक दुर्दशा का सफलतापूर्वक उपचार करना तथा इस तरह"—मात्र आवासीय अवस्थाओं में व्यापक सुधार लाकर—"इन वर्गों के बड़े भाग को प्रायः अमानवीय

अवस्थाओं के दलदल से बाहर निकालकर भौतिक तथा आत्मिक समृद्धि के निर्मल शिखरों तक पहुंचाना सम्भव होगा।" (पृष्ठ १४)

प्रसंगत:, यह तथ्य छुपाना पूंजीपति वर्ग के हित में है कि सर्वहारा वर्ग, जिसे पूंजीवादी उत्पादन सम्बन्ध जन्म देते हैं और जो फिर इन सम्बन्धों के सतत अस्तित्व को निर्धारित करता है, अस्तित्वमान है। इसलिए श्री ज़ाक्स हमसे कहते हैं (पृष्ठ २१) कि मेहनतकश वर्ग शब्द में वास्तविक मज़दूरों के साथ ही साथ सारे "धनहीन सामाजिक वर्गों को" और "सामान्यतया दस्तकारों, विधवाओं, पेंशनरों (!), छोटे अधिकारियों, आदि जैसे छोटे लोगों को" शामिल माना जाना चाहिए। पूंजीवादी समाजवाद निम्न-पूंजीवादी समाजवाद की ओर अपना हाथ बढ़ाता है।

तो आवास की कमी कब से है? यह कैसे पैदा हुई? एक अच्छे पूंजीपति के रूप में श्री ज़ाक्स से यह जानने की अपेक्षा नहीं की जाती कि वह पूंजीवादी सामाजिक व्यवस्था की आवश्यक उपज है; कि वह ऐसे समाज में विद्यमान हुए बिना रह नहीं सकती जिसमें मेहनतकश जनसाधारण का बहुत बड़ा भाग उजरत पर ही, अर्थात् अपने अस्तित्व के लिए तथा अपनी वंशावली की निरन्तरता के लिए आवश्यक आजीविका के साधनों के परिमाण पर निर्भर करता है; जिसमें मशीनों में सुधार, आदि बहुत बड़ी तादाद में मज़दूरों को निरन्तर बेरोज़गार बनाते रहते हैं; जिसमें उग्र तथा नियमित रूप से आवर्ती औद्योगिक उतार-चढ़ाव एक ओर बेरोज़गारों की विशाल रिज़र्व फ़ौज तैयार करते रहते हैं तथा दूसरी ओर मज़दूरों के झुंडों को बेरोज़गार कर बाहर धकेलते रहते हैं; जिसमें मज़दूर बड़े शहरों में बड़े समूहों में उससे ज्यादा तेज़ रफ़्तार से ठूंसे जाते रहते हैं जिस रफ़्तार से विद्यमान परिस्थितियों में उनके लिए मकान बनाये जाते हैं; जिसमें इस कारण गन्दे से गन्दे बाड़ों तक के लिए हमेशा किरायेदार मिल जायेंगे; और जिसमें अन्तत: मकान-मालिक को पूंजीपति की हैसियत से यह अधिकार ही नहीं है अपितु प्रतियोगिता के कारण उसका कुछ हद तक यह कर्त्तव्य भी है कि वह अपने मकान से बेरहमी से अधिक से अधिक भाड़ा कमाये। इस तरह के समाज में आवास की कमी कोई संयोग की बात नहीं है, यह तो एक आवश्यक संस्थान भी है और उसे सेहत, आदि पर पड़नेवाले तमाम कुप्रभावों समेत तभी मिटाया जा सकता है जब पूरी की पूरी सामाजिक व्यवस्था के, जिससे वह जन्म लेती है, आधार का पूर्ण पुनर्गठन कर दिया जायेगा। परन्तु पूंजीवादी समाजवाद

यह सोचने की हिम्मत नहीं कर सकता। वह यह बताने की **हिम्मत नहीं कर सकता** कि आवास की कमी विद्यमान परिस्थितियों से पैदा होती है। इसलिए आवास की कमी का कारण समझाने के लिए उसके पास यह उपदेश देने के अलावा और कोई रास्ता नहीं है कि यह इन्सान की दुष्टता का फल है, यूं कहिये कि आदि पाप का फल है।

"और हम यहां यह देखे बिना नहीं रह सकते – और फलस्वरूप हम इस बात का खंडन नहीं कर सकते" (साहसपूर्ण निष्कर्ष!) – "कि दोष... अंशत: **स्वयं मजदूरों का** है, जो रिहायशी घर चाहते हैं, और अंशत: – यह सच है कि ज्यादातर – उनका है जो इस आवश्यकता की पूर्ति का बीड़ा उठाते हैं या उनका अर्थात् सम्पत्तिधारी उच्च सामाजिक वर्गों का है जो अपने पास पर्याप्त साधन होते हुए भी इस आवश्यकता की पूर्ति करने का कोई प्रयास भी नहीं करते। उन्हें दोषी इसलिए ठहराया जा सकता है कि वे पर्याप्त संख्या में अच्छे रिहायशी घर मुहैया करने के लिए अपने को ज़िम्मेवार नहीं बनाते।"

जिस तरह प्रूदों हमें अर्थशास्त्र के क्षेत्र से क़ानूनी क्षेत्र में ले जाते हैं, ठीक उसी तरह हमारे पूंजीवादी समाजवादी हमें यहां आर्थिक क्षेत्र से नैतिक क्षेत्र में ले जाते हैं। और यह सर्वथा स्वाभाविक भी है। जो कोई यह घोषित करता है कि उत्पादन की पूंजीवादी पद्धति, वर्तमान पूंजीवादी समाज के "लौह क़ानून" अनुल्लंघनीय हैं, परन्तु साथ ही यह चाहता है कि उनके असुखद परन्तु आवश्यक परिणामों को मिटा दिया जाये, उसके लिए इसके अलावा और कोई रास्ता नहीं रह जाता कि वह पूंजीपतियों को नैतिक उपदेश दे, ऐसे नैतिक उपदेश जिनका भावनात्मक प्रभाव निजी हित के असर और ज़रूरत पड़ने पर प्रतियोगिता का असर पड़ते ही तुरन्त लुप्त हो जाता है। ये नैतिक उपदेश वस्तुत: तालाब के किनारे पर खड़ी उस मुर्गी के उपदेशों से बिल्कुल मिलते हैं जो तालाब में चूज़ों को मजे से तैरते हुए देखती है। चूज़े पानी में तैरते हैं हालांकि पानी में शहतीर नहीं हैं और पूंजीपति मुनाफ़े पर झपटते हैं हालांकि वह निर्दय है। "मुद्रा के मामले में भावनाओं के लिए जगह नहीं होती", यह वृद्ध हान्सेमान पहले ही कह चुके थे जिन्हें इस बारे में श्री ज़ाक्स से ज़्यादा जानकारी थी।

"अच्छे घर इतने महंगे होते हैं कि मजदूरों के बड़े भाग के लिए उनका उपयोग करना **सर्वथा असम्भव है**। बड़ी पूंजी... मेहनतकश वर्गों के लिए मकान

८*

बनाने में संकोच करती है... और फलस्वरूप ये वर्ग अपनी आवास-सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अधिकतर सट्टेबाजों के जाल में फंस जाते हैं।"

घिनौनी सट्टेबाज़ी! बड़ी पूंजी स्वभावतया कभी सट्टेबाज़ी नहीं करती! परन्तु दुर्भावना नहीं, केवल अज्ञान बड़ी पूंजी को मज़दूरों के मकानों पर सट्टेबाज़ी करने से रोकता है–

"मकान-मालिकों को **पता ही नहीं है** कि आवासीय आवश्यकताओं की पूर्ति कितनी बड़ी तथा महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है; **उन्हें पता ही नहीं है कि वे लोगों के साथ क्या कर रहे हैं** जब वे इतने अनुत्तरदायित्वपूर्ण ढंग से उन्हें आम तौर पर ख़राब और नुक़सानदेह घर देते हैं, और अन्ततः उन्हें **पता ही नहीं है** कि वे इस तरह ख़ुद अपने पांवों पर कुलहाड़ी मार रहे हैं।" (पृष्ठ २७)

परन्तु आवास की कमी के पैदा होने के लिए पूंजीपतियों के अज्ञान के साथ मज़दूरों के अज्ञान को भी जोड़ा जाना चाहिए। यह स्वीकार करने के बाद कि मज़दूरों के "सबसे निचले हिस्से कहीं भी और किसी भी तरह रात गुज़ारने के लिए डेरा ढूंढ़ने के वास्ते विवश (!) होते हैं ताकि उन्हें रात खुले आकाश के ही नीचे न गुज़ारनी पड़े, और इस सिलसिले में वे सर्वथा अरक्षित तथा निस्सहाय हैं", श्री ज़ाक्स हमसे कहते हैं–

"आख़िरकार यह एक सुविदित तथ्य है कि उनमें से" (मज़दूरों में से) "बहुत-से लापरवाही, या मुख्यतया अज्ञान के कारण अपने शरीरों को पारंगति के साथ विकास तथा स्वास्थ्यकर अस्तित्व से वंचित कर देते हैं, इसलिए कि उन्हें युक्तिसंगत स्वच्छता का और विशेष रूप से इस सम्बन्ध में आवास को प्राप्त अपार महत्व का **लेशमात्र ज्ञान नहीं है**।" (पृष्ठ २७)

परन्तु यहां पूंजीपति के गधे के कान सामने आ जाते हैं। जहां पूंजीपतियों का सम्बन्ध है, "दोष" अज्ञान में विलीन हो जाता है, परन्तु जहां मज़दूरों का सम्बन्ध है, अज्ञान को उनके दोष का कारण बना दिया जाता है। ज़रा सुनिये–

"इस तरह" (अज्ञान के कारण ही) "होता यह है कि किराये की मद में कुछ बचा लेने के लिए वे अंधेरे, नमी से भरे, छोटे घरों में बस जाते हैं जो

संक्षेप में स्वच्छता के सारे तक़ाज़ों का मखौल है... कि अक्सर कई परिवार एक ही घर, यही नहीं, एक ही कोठरी किराये पर ले लेते हैं—यह सब किराये की मद पर कम से कम ख़र्च करने के लिए किया जाता है जबकि दूसरी ओर वे अपनी आय को **शराब और हर क़िस्म का निरर्थक मजा लूटने पर सही अर्थ में पापपूर्ण ढंग से उड़ा देते हैं।"**

मज़दूर द्वारा "शराब और तंबाकू पर गंवाया जानेवाला" पैसा (पृष्ठ २८) तथा "महख़ानों की ज़िंदगी और उसके सारे दुःखद कुपरिणाम, जो मज़दूर के सीने से बंधे हुए भारी पत्थर की तरह उसे बार-बार दलदल में ला पटकते हैं", वस्तुतः श्री ज़ाक्स के गले में लटके मौजूद भारी पत्थर की तरह है। विद्यमान परिस्थितियों के अन्तर्गत मज़दूरों में शराब की लत, टाइफ़स, अपराध, परजीविता, मुक़दमेबाज़ी तथा अन्य सामाजिक बुराइयों की तरह उनके रहन-सहन की अवस्थाओं की आवश्यक उपज है, वस्तुतः इतनी आवश्यक उपज है कि शराबियों की औसत संख्या पहले ही आंकी जा सकती है, श्री ज़ाक्स इस तथ्य को भी जानने से इन्कार करते हैं। प्रसंगतः, मेरे वृद्ध स्कूल मास्टर कहा करते थे, "साधारण लोग महख़ानों में तथा बड़े लोग क्लबों में जाते हैं।" चूंकि मैं दोनों जगहों में जा चुका हूं, इसलिए मैं इसकी पुष्टि करने की स्थिति में हूं।

दोनों पक्षों के "अज्ञान" की यह सारी बकवास श्रम तथा पूंजी के हितों के सामंजस्य के विषय में पुराने रागों के अलावा और कुछ नहीं है। यदि पूंजीपतियों को अपने सच्चे हितों का ज्ञान हो तो वे मजदूरों को अच्छे मकान दे देते तथा उनकी स्थिति को सामान्यतया सुधारते; और यदि मजदूरों को अपने सच्चे हितों की समझ हो तो वे हड़ताल नहीं करते, सामाजिक-जनवाद का पल्ला नहीं पकड़ते, राजनीति का खेल न खेलते, बल्कि आज्ञाकारी बनकर अपने अग्रणी लोगों का, पूंजीपतियों का अनुसरण करते। परन्तु दुर्भाग्यवश दोनों पक्ष अपने हित श्री ज़ाक्स तथा उनके अनगिनत पूर्ववर्तियों के उपदेशों में नहीं, वरन् सर्वथा अन्यत्र देखते हैं। पूंजी तथा श्रम के बीच सामंजस्य के दिव्य सिद्धान्त का तो लगभग पूरे पचास वर्षों से प्रचार होता आ रहा है और पूंजीवादी लोकोपकारिता आदर्श संस्थानों का निर्माण कर इस सामंजस्य को सिद्ध करने पर बहुत बड़ी धनराशियां ख़र्च कर चुकी है। फिर भी हम आगे देखेंगे कि हम ठीक वहीं हैं जहां पचास साल पहले थे।

हमारे लेखक महाशय अब समस्या के व्यावहारिक समाधान की ओर अग्रसर होते हैं। मज़दूरों को अपने घरों का **मालिक** बनाने का प्रूदों का प्रस्ताव कितना

कम क्रान्तिकारी था, इसका पता इस तथ्य से चल सकता है कि पूंजीवादी समाजवाद ने उनसे पहले भी इसे अमल में लाने की कोशिश की थी और अब भी कर रहा है। श्री ज़ाक्स भी घोषित करते हैं कि आवास समस्या घरों का स्वामित्व मज़दूरों के हाथों में सौंपकर ही पूर्णतया हल की जा सकती है (पृष्ठ ५८ तथा ५६)। यही नहीं, वह इस विचार से झूमने लगते हैं और अपने आनन्दातिरेक को निम्नलिखित शब्दों में प्रकट करते हैं—

"ज़मीन का स्वामी बनने की इन्सान में अन्तर्निहित अभिलाषा में कुछ विलक्षणता है; यह ऐसी ललक है जिसे आज के **कामकाजी जीवन की आपाधापी कम नहीं कर सकी है।** यह आर्थिक उपलब्धि के, जिसका प्रतिनिधित्व भू-स्वामित्व करता है, महत्व की अचेतन अनुभूति है। इसके साथ व्यक्ति सुरक्षित स्थिति हासिल करता है; कह सकते हैं कि उसके पांव धरती पर मज़बूती से जम जाते हैं, तथा प्रत्येक उद्यम" (!) "उसमें सबसे स्थायी आधार प्राप्त करता है। परन्तु भू-स्वामित्व के वरदान इन भौतिक लाभों की परिधि से कहीं अधिक व्यापक हैं। ज़मीन के किसी टुकड़े को अपना कहने का जिस किसी को सौभाग्य प्राप्त है, **वह आर्थिक स्वतंत्रता की उच्चतम परिकल्पित मंजिल पर पहुंच चुकता है**; उसके पास एक ऐसा भू-क्षेत्र है जिस पर वह **प्रभुसत्ताप्राप्त** अधिकार के साथ राज कर सकता है; **वह स्वयं अपना स्वामी है**; उसे कुछ सत्ता उपलब्ध होती है और ज़रूरत पड़ने पर **निश्चित समर्थन** मिल जाता है; उसका आत्मविश्वास तथा उसके साथ उसकी नैतिक शक्ति बढ़ती है। इसी कारण हमारे समक्ष मौजूद प्रश्न में स्वामित्व का गहन महत्व है... मज़दूर को, जो आज आर्थिक जीवन के तमाम उतार-चढ़ावों के प्रहार के सामने असहाय है और अपने मालिक पर निरन्तर आश्रित रहता है, इस अस्थिर स्थिति से कुछ हद तक बचाया जा सकेगा; **वह पूंजीपति बन जायेगा** और उसकी स्थावर सम्पदा द्वारा उसके लिए उधार हासिल करने की सम्भावनाओं के द्वार खोले जाने के परिणामस्वरूप बेरोज़गारी तथा कार्य अक्षमता के ख़तरों से उसकी रक्षा की जायेगी। **उसे इस तरह सम्पत्तिहीनों की पांतों से ऊपर उठाकर सम्पत्तिधारी वर्ग के बीच पहुंचाया जा सकेगा।**" (पृष्ठ ६३)

श्री ज़ाक्स यह मानते प्रतीत होते हैं कि इन्सान मूलतः किसान है, अन्यथा वह हमारे बड़े शहरों के मज़दूरों के दिल में ज़मीन पाने की वह अभिलाषा होने की बात न कहते जिसे और किसी ने उनमें नहीं पाया है। बड़े शहरों के हमारे मज़दूरों के लिए स्थानान्तरण की स्वतंत्रता अस्तित्व की प्रथम शर्त है तथा भू-स्वामित्व उनके पांवों पर केवल बेड़ियों का ही काम देगा। उन्हें अपने मकान

दें, उन्हें फिर ज़मीन से बांध दें, बस इस तरह आप कारखानों के मालिकों द्वारा मजूरी में कटौती का उन द्वारा प्रतिरोध किये जाने की शक्ति को कुचल डालेंगे। कोई भी मज़दूर मौक़ा पड़ने पर शायद अपना मकान बेच सकेगा परन्तु बड़ी हड़ताल या आम औद्योगिक संकट की हालत में हड़ताली मज़दूरों के सारे मकानों को बाज़ार में बिक्री के लिए प्रस्तुत करना पड़ेगा और तब इस कारण उनके ग्राहक ही नहीं मिलेंगे और यदि मिलेंगे भी तो उन्हें उनकी लागत क़ीमत से कहीं कम पर बेचना पड़ेगा। और यदि उन सब के लिए ग्राहक मिल भी जायें तो श्री ज़ाक्स का सारा महान आवास सुधार मिट्टी में मिल जायेगा तथा उन्हें फिर नये सिरे से काम शुरू करना पड़ेगा। हां, कवि लोग कल्पना लोक में रहते हैं, और श्री ज़ाक्स भी वहीं रहते हैं जो यह कल्पना करते हैं कि भू-स्वामी "आर्थिक स्वतंत्रता की सबसे ऊंची मंज़िल पर पहुंच चुका है", कि उसे "निश्चित समर्थन" प्राप्त है, कि वह "**पूंजीपति बन जायेगा** और उसकी स्थावर सम्पदा द्वारा उसके लिए उधार हासिल करने की सम्भावनाओं के द्वार खोले जाने के परिणामस्वरूप बेरोज़गारी तथा कार्य अक्षमता के ख़तरों से उसकी रक्षा की जायेगी", आदि। श्री ज़ाक्स को फ़्रांसीसी और स्वयं हमारे राइनी छोटे किसानों पर एक नज़र डालनी चाहिए। उनके मकान तथा खेत रेहनों के बोझ से दबे हुए हैं, उनकी फ़सलें काटे जाने से पहले ही उधार देनेवालों की हो जाती हैं, और वे नहीं, वरन् सूदखोर, वकील तथा अदालती कारिंदे उनके "भू-क्षेत्र" पर प्रभुसत्ताप्राप्त अधिकार के साथ राज करते हैं। यह यक़ीनन आर्थिक स्वतंत्रता की–सूदख़ोर के लिए–उच्चतम परिकल्पित मंज़िल है! और मज़दूर अपने छोटे-से मकानों को जल्दी से जल्दी सूदख़ोर की उसी प्रभुता के अधीन कर सकें, इसके लिए हमारे सदाशयी श्री ज़ाक्स होशियारी से उस **उधार** की ओर इशारा करते हैं जिसे वे बेरोज़गारी या कार्य अक्षमता के समय नगण्य संरक्षणत्व पर बोझ बनने के बजाय अपनी **स्थावर सम्पदा** से हासिल कर सकते हैं।

कुछ भी हो, श्री ज़ाक्स ने शुरू में उठाये गये प्रश्न को हल कर डाला है– मज़दूर अपना छोटा-सा घर हासिल कर "**पूंजीपति बन जाता है**"।

पूंजी दूसरों के अदत्त श्रम पर प्रभुत्व होती है। इसलिए मज़दूर का छोटा-सा घर तभी पूंजी बन सकता है जब वह उसे तीसरे व्यक्ति को किराये पर उठाये और इस तीसरे व्यक्ति से किराये के रूप में उसके श्रम उत्पाद का एक हिस्सा हड़पे। परन्तु ठीक इस तथ्य के कारण कि मज़दूर स्वयं मकान में रहता

है, वह मकान उसी तरह पूंजी नहीं बन जाता, जिस तरह कोट ठीक उस क्षण से पूंजी नहीं रह जाता जिस क्षण मैं उसे दर्जी से ख़रीदता तथा पहनता हूं। यह सच है कि एक हज़ार टेलर के मूल्य के छोटे-से मकान का मालिक सर्वहारा नहीं रह जाता परन्तु श्री ज़ाक्स ही उसे पूंजीपति मान बैठते हैं।

परन्तु हमारे मज़दूर के इस पूंजीवादी रूप का एक और भी पहलू है। आइये, यह मान लें कि किसी औद्योगिक इलाक़े में यह प्रथा है कि प्रत्येक मज़दूर का अपना छोटा-सा मकान है। ऐसी स्थिति में **उस इलाक़े का मज़दूर वर्ग बिना किराये दिये रहता है ;** आवास व्यय अब उसकी श्रम शक्ति के मूल्य में शामिल नहीं होते। परन्तु श्रम शक्ति की उत्पादन लागत में हर कटौती, यानी मज़दूर की जीवनावश्यकताओं की क़ीमत में प्रत्येक स्थायी कटौती "राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के सिद्धान्त के लौह क़ानूनों के आधार पर" श्रम शक्ति के मूल्य के ह्रास के समतुल्य होती है और इसलिए अन्ततोगत्वा मजूरी भी उसी अनुपात से घटेगी। इस तरह मजूरी में औसतन गिरावट किराये की मद में बचायी गयी औसत राशि के बराबर होगी, यानी मज़दूर अपने ही मकान के लिए किराया पहले की तरह नक़द रूप में मकान-मालिक को नहीं, वरन् कारख़ाना-मालिक को, जिसके लिए वह काम करता है, अदत्त श्रम के रूप में देता है। इस तरह मज़दूर की बचत, जिसे वह अपने छोटे-से मकान पर लगाता है, एक अर्थ में पूंजी बन जायेगी परन्तु यह पूंजी उसकी नहीं, वरन् उस पूंजीपति की होगी जिसके लिए वह काम करता है।

इस तरह श्री ज़ाक्स में अपने मज़दूर को महज़ काग़ज़ पर भी पूंजीपति बनाने की योग्यता का अभाव है।

प्रसंगतः, जो कुछ ऊपर कहा गया है, वह उन तमाम तथाकथित सामाजिक सुधारों पर लागू होता है, जो बचत करने या मज़दूर की आजीविका के साधनों को सस्ता बनाने तक सीमित हैं। या तो ये सुधार सर्वव्याप्त हो जाते हैं और फिर मजूरी में सम्बन्धित कमी आती है या फिर वे बिल्कुल इक्के-दुक्के प्रयोग मात्र रह जाते हैं और फिर इक्के-दुक्के अपवादों के रूप में उनका अस्तित्व ही यह सिद्ध करता है कि व्यापक रूप में उनका कार्यान्वयन उत्पादन की वर्तमान पूंजीवादी पद्धति से मेल नहीं खाता। आइये, यह मान लें कि किसी एक इलाक़े में उपभोक्ता सहकारिताओं की आम शुरूआत मज़दूरों के जीवन निर्वाह साधनों की लागत २० प्रतिशत घटाने में सफल हो जाती है। इसलिए उस इलाक़े में अन्ततोगत्वा मजूरी में २० प्रतिशत गिरावट आयेगी, कहने का मतलब है, उसी

अनुपात से जिस अनुपात से जीवन निर्वाह साधन मज़दूर के बजट में शामिल होते हैं। यदि मज़दूर, उदाहरण के लिए, अपनी साप्ताहिक मजूरी का तीन-चौथाई भाग इन जीवन निर्वाह साधनों पर ख़र्च करता है तो मजूरी में अन्ततः गिरावट ३/४ × २० = १५ प्रतिशत के बराबर होगी। संक्षेप में, ज्योंही इस तरह का बचत-सम्बन्धी कोई सुधार सर्वव्याप्त हो जाता है, मज़दूर की मजूरी उसी अनुपात से घट जाती है जिस अनुपात से यह बचत उसे कम ख़र्च पर गुज़र करने देती है। हरेक मज़दूर के लिए बचत से हासिल होनेवाली ५२ टेलरों की स्वतंत्र आय की व्यवस्था करें, तो उसकी साप्ताहिक मजूरी अन्ततः निश्चित रूप से एक टेलर घट जायेगी। इसलिए वह जितनी बचत करेगा, वह उतनी ही कम मजूरी प्राप्त करेगा। इसलिए वह अपने हित में नहीं, वरन् पूंजीपति के हित में बचत करता है। "उसमें सबसे सशक्त ढंग से... प्राथमिक आर्थिक सद्गुण, मितव्ययिता प्रेरित करने के लिए" और किसी चीज़ की जरूरत है? (पृष्ठ ६४)

हां, श्री ज़ाक्स इसके फ़ौरन बाद कहते हैं कि मज़दूरों को इतना अपने हितार्थ नहीं, जितना पूंजीपतियों के हितार्थ मकान-मालिक बनना चाहिए–

"कुछ भी हो, मज़दूर वर्ग की ही नहीं, वरन् समग्र रूप से समाज की भी अपने अधिक से अधिक सदस्यों को भूमि से बंधा" (!) "हुआ देखने में दिलचस्पी है" (मैं श्री ज़ाक्स को कम से कम एक बार इस स्थिति में देखना चाहता हूं)... "सामाजिक प्रश्न–सर्वहाराओं की कटुता, घृणा... विचारों की ख़तरनाक उलझन...–नामक ज्वालामुखी को, जो हमारे पांवों तले धधक रहा है, प्रज्वलित सारी गुप्त शक्तियों को, इन सब का प्रभातवेला के सूर्य के उदय से पूर्व कुहासे की तरह उस समय लुप्त हो जाना पड़ेगा जब... स्वयं मज़दूर इस तरह सम्पत्तिधारी वर्गों की क़तारों में प्रवेश करेंगे।" (पृष्ठ ६५)

दूसरे शब्दों में श्री ज़ाक्स को आशा है कि मकान के हस्तगत होने से अपनी सर्वहारा स्थिति में परिवर्तन होने के साथ-साथ मज़दूर अपना सर्वहारा स्वरूप भी खो बैठेंगे तथा इस तरह वे अपने पूर्वजों की तरह–वे भी मकान-मालिक थे–एक बार फिर आज्ञाकारी चाटुकार बन जायेंगे। प्रूदोंपंथियों को इस पर विचार करना चाहिए।

श्री ज़ाक्स का विचार है कि उन्होंने इस तरह समस्या हल कर डाली है–

"**सम्पदा का अधिक न्यायपूर्ण वितरण**—नारसिंह का रहस्य जिसे हल करने की कई लोग अब तक विफल चेष्टा कर चुके हैं—क्या यह अब हमारे सामने एक साकार तथ्य के रूप में विद्यमान नहीं है, क्या उसे इस तरह आदर्शों की दुनिया से वास्तविकता की दुनिया में नहीं लाया जा चुका है? और यदि यह किया भी जा चुका है तो क्या इसका अर्थ उच्चतम आदर्शों में से एक की पूर्ति नहीं है, एक ऐसे आदर्श को जिसे **सबसे उग्र प्रवृत्ति वाले समाजवादी तक अपने सिद्धान्तों के चरम शिखर के रूप में प्रस्तुत करते हैं?**" (पृष्ठ ६६)

यह वास्तव में सौभाग्य की बात है कि हम यहां तक पहुंच गये हैं क्योंकि विजय की यह चीख़-चिल्लाहट श्री ज़ाक्स की पुस्तक का "शिखर" है। और यहां से हम फिर "आदर्शों की दुनिया" से धीरे-धीरे नीचे उतरते हुए सपाट मैदान में पहुंचते हैं; जब हम नीचे उतर आते हैं तो हम देखते हैं कि हमारी अनुपस्थिति में कुछ नहीं, कुछ भी नहीं बदला है।

हमारे लेखक महाशय हमसे शिखर से नीचे उतरने के लिए पहला पग तब उठवाते हैं जब वह हमें सूचित करते हैं कि मज़दूरों के घरों की दो क़िस्म हैं—एक है कुटीर व्यवस्था जिसमें हर मज़दूर परिवार एक छोटे-से मकान, यदि सम्भव हुआ तो इंगलैंड की तरह एक छोटे-से बाग़ का मालिक होता है, दूसरी है लम्बी-चौड़ी इमारतों की बैरक व्यवस्था जिसमें बहुत बड़ी तादाद में मज़दूरों की कोठरियां होती हैं जैसे पेरिस, वियेना, आदि में। इन दो के बीच उत्तरी जर्मनी में विद्यमान व्यवस्था है। वह हमें बताते हैं—यह सच है कि कुटीर व्यवस्था एकमात्र सही तथा **एकमात्र** ऐसी व्यवस्था है जिसके ज़रिए मज़दूर अपने आवास का स्वामित्व प्राप्त कर सकता है; इसके अलावा, उनका तर्क है, बैरक व्यवस्था में स्वच्छता, नैतिकता तथा घरेलू सुख की दृष्टि से बहुत-सी ख़राबियां हैं। परन्तु अफ़सोस, अफ़सोस!—वह कहते हैं—कुटीर व्यवस्था को बड़े शहरों में, आवासीय कमी वाले केंद्रों में ज़मीन बहुत महंगी होने के कारण मूर्त्त रूप नहीं दिया जा सकता, इसलिए यदि बड़े बैरकों की जगह चार से लेकर छः फ़्लैटों वाले मकानों का निर्माण हो सके और यदि निर्माण की विभिन्न कुशल युक्तियों द्वारा बैरक व्यवस्था की मुख्य त्रुटियां मिटायी जा सकें तो इस पर सन्तोष प्रकट करना चाहिए। (पृष्ठ ७१-९२)

परन्तु क्या हम सचमुच काफ़ी नीचे नहीं उतर चुके हैं? मज़दूरों का पूंजीपतियों में रूपान्तरण, सामाजिक प्रश्न का समाधान, हर मज़दूर के लिए अपना मकान—ये सब चीज़ें तो बहुत ऊपर, "आदर्शों की दुनिया" में छोड़ी

जा चुकी हैं। हमारे लिए बस करने को इतना रह जाता है कि हम देहात में कुटीर व्यवस्था प्रचलित कर दें तथा शहरों में बैरक व्यवस्था को यथासम्भव सहनीय बना दें।

इसलिए स्वयं अपनी स्वीकारोक्ति के अनुसार आवास प्रश्न का पूंजीवादी समाधान **शहर और देहात के बीच विरोध के कारण** दुर्घटनाग्रस्त हो गया है। और यहां हम समस्या के मर्म बिन्दु में पहुंच जाते हैं। आवास प्रश्न तभी हल किया जा सकता है जब समाज का इतना पर्याप्त रूप से रूपान्तरण हो जाये कि शहर तथा देहात के बीच विरोध मिट जाये जिसे वर्तमान पूंजीवादी समाज ने चरम बिन्दु पर पहुंचा दिया है। इस विरोध को मिटाना तो रहा दूर, पूंजीवादी समाज उल्टे इसे नित्यप्रति उग्र बनाने के लिए विवश होता है। प्रथम समकालीन कल्पनावादी समाजवादी ओवेन तथा फ़ुरिए ने इसे सही ढंग से पहचाना है। उनके आदर्श ढांचे में शहर तथा देहात के बीच यह विरोध नहीं रह जाता। फलस्वरूप यहां ठीक श्री ज़ाक्स के दावे के उलट होता है—आवास प्रश्न का समाधान सामाजिक प्रश्न का साथ ही समाधान नहीं करता, बल्कि सामाजिक प्रश्न के समाधान से ही, यानी उत्पादन की पूंजीवादी पद्धति के ख़ात्मे से ही आवास प्रश्न का समाधान सम्भव हो जाता है। आवास प्रश्न के समाधान की अभिलाषा और साथ ही आधुनिक बड़े शहरों को बरक़रार रखने की इच्छा बेतुकी चीज़ है। परन्तु आधुनिक बड़े शहरों को केवल उत्पादन की पूंजीवादी पद्धति के ख़ात्मे से ही मिटाया जा सकता है, और एक बार यह काम शुरू हो जाने पर हर मज़दूर के लिए एक छोटे-से घर का स्वामित्व प्रदान करने से सर्वथा भिन्न प्रश्न उठ खड़े होंगे।

परन्तु आरम्भ में प्रत्येक सामाजिक क्रान्ति को स्थिति को उसी रूप में ग्रहण करना होगा जिस रूप में वह उन्हें पाती है और अपने पास मौजूद साधनों की मदद से सबसे विकट बुराइयों से निपटना पड़ेगा। और हम पहले ही देख चुके है कि सम्पत्तिधारी वर्गों के वैभवपूर्ण निवास स्थानों के एक भाग को हस्तगत कर तथा शेष भाग में ज़बर्दस्ती किरायेदार बसाकर आवास की कमी से तत्काल छुटकारा पाया जा सकता है।

यदि श्री ज़ाक्स आगे चलकर फिर बड़े शहरों की विद्यमानता को आधार मानकर अग्रसर होते हैं और शहरों **के पास** स्थापित होनेवाली मज़दूर बस्तियों पर शब्दाडम्बरपूर्ण प्रवचन करने लगते हैं; यदि वह इन बस्तियों के सारे सौन्दर्यों का, उनमें सामुदायिक "जल-व्यवस्था, गैस की रोशनी, हवा या उष्ण जल

तापन, धोबीघर, कपड़े सुखाने के स्थान, स्नानघर, आदि" की व्यवस्था समेत, "शिशु सदन, स्कूल, पूजाघर" (!), "वाचनालय, पुस्तकालय... शराबख़ाना, बियरघर, हर तरह की सुविधा से युक्त नृत्य तथा संगीत सदन" समेत, भाप शक्ति की व्यवस्था समेत, जिससे "उत्पादन कारख़ाने से कुछ हद तक फिर से घरेलू वर्कशाप को स्थानान्तरित किया जा सके"—बख़ान करते हैं, तो भी इससे स्थिति में कोई अन्तर नहीं आता। जिस बस्ती का वह वर्णन करते हैं, उसका विचार श्री ह्यूबर द्वारा समाजवादी ओवेन तथा फ़ुरिए से उधार लिया गया है और उसमें जो कुछ समाजवादी है, उसे निकालकर उसे पूरी तरह पूंजीवादी बना दिया गया है। परन्तु इस तरह वह वस्तुतः पूरी तरह कल्पनावादी बन गया है। इस तरह की बस्तियां स्थापित करने में किसी भी पूंजीपति की कोई दिलचस्पी नहीं होती। सच तो यह है कि फ़्रांस में गीज़ को छोड़कर संसार में इस तरह की बस्ती और कहीं है ही नहीं। और गीज़ की उस बस्ती का भी निर्माण फ़ूरिये के अनुयायी ने मुनाफ़ादेह सट्टेबाज़ी के लिए नहीं, वरन् समाजवादी प्रयोग* के लिए किया था। श्री ज़ाक्स अपनी पूंजीवादी परियोजना के पक्ष में ओवेन द्वारा पांचवें दशक के आरम्भ में हैम्पशायर में स्थापित तथा बहुत पहले ही बन्द हो चुकी कम्युनिस्ट बस्ती «Harmony Hall»[71] का उदाहरण दे सकते थे।

कुछ भी हो, बस्तियों का निर्माण करने की ये सारी बातें "आदर्शों की दुनिया" में फिर से उड़ान भरने की दयनीय चेष्टा के अलावा और कुछ नहीं हैं, ऐसी कोशिशें हैं जिन्हें तत्काल पुनः तिलांजलि दे दी जाती है—हम फिर तेज़ी से नीचे लुढ़क जाते हैं। सरलतम समाधान अब यह है

"कि मालिकों, कारख़ानेदारों को उपयुक्त घर हासिल करने में मज़दूरों की मदद करनी चाहिए जिनका वे ख़ुद निर्माण कर सकते हैं अथवा मज़दूरों को ज़मीन देकर, निर्माण पूंजी, आदि देकर उन्हें अपने घरों का स्वयं निर्माण करने के लिए प्रोत्साहन तथा मदद दे सकते हैं।" (पृष्ठ १०६)

---

*और यह भी अन्ततः मज़दूर वर्ग के शोषण का मात्र अड्डा रह गया है। देखें १८८६ का *«Socialiste»*[70] नामक पेरिस अख़बार। (**१८८७ के संस्करण में एंगेल्स की टिप्पणी**)

इसके साथ हम फिर बड़े शहरों से, जहां इस तरह की कोई चीज़ होने का सवाल ही नहीं उठता, बाहर निकल आते हैं और फिर से देहात में पहुंच जाते हैं। श्री ज़ाक्स अब सिद्ध करते हैं कि अपने मजदूरों को गुज़ारे लायक़ घर हासिल करने में मदद देना स्वयं कारख़ानेदारों के हित में है क्योंकि एक ओर तो यह अच्छा लाभप्रद पूंजी निवेश है तथा दूसरी ओर अनिवार्य

"परिणाम के रूप में मज़दूरों की स्थिति में सुधार के कारण उनकी शारीरिक तथा मानसिक कार्य क्षमता में वृद्धि होगी जो स्वभावतया... मालिकों के लिए कोई कम लाभप्रद नहीं है। इस तरह आवास प्रश्न के समाधान में मालिकों की शिरकत के बारे में सही दृष्टिकोण निर्धारित हो जाता है—यह शिरकत **अप्रत्यक्ष साहचर्य** के परिणाम के रूप में, अपने मज़दूरों के शारीरिक और आर्थिक, आत्मिक और नैतिक मंगल-कल्याण के लिए मालिकों की चिन्ता के परिणाम के रूप में प्रकट होती है, ऐसी चिन्ता के रूप में जो अधिकतर मानवीय प्रयासों में छुपी होती है और जो अपने सफल परिणामों के रूप में स्वयं एक आर्थिक पुरस्कार है। ये परिणाम हैं—अध्यवसायी, कुशल, तत्पर, सन्तुष्ट तथा **निष्ठावान** मज़दूरों का तैयार होना और क़ायम रहना। (पृष्ठ १०८)

"अप्रत्यक्ष साहचर्य" शब्द, जिनकी सहायता से ह्यूबर इस पूंजीवादी-लोकोपकारी बकवास में "उदात्त महत्व" का समावेश करने का प्रयत्न करते थे, स्थिति में लेशमात्र परिवर्तन नहीं लाते। इन शब्दों के बिना भी देहाती क्षेत्रों में, ख़ास तौर पर इंगलैंड में बड़े कारख़ानेदारों ने बहुत पहले ही यह अनुभव कर लिया था कि मज़दूरों के लिए आवास का निर्माण आवश्यकता मात्र, स्वयं कारख़ाने की विरचना का भाग मात्र ही नहीं है, वह तो बहुत अच्छी आय भी दिलाता है। इंगलैंड में पूरे के पूरे गांव इसी तरह प्रकट हुए हैं और आगे चलकर उनमें से कुछ विकसित होते हुए शहर बन गये हैं। परन्तु मज़दूरों ने लोकोपकारी पूंजीपतियों का कृतज्ञ होने के बजाय इस "कुटीर व्यवस्था" पर सदैव बहुत आपत्ति की है। चूंकि कारख़ानेदारों के कोई प्रतियोगी नहीं हैं, इसलिए मज़दूरों को इन मकानों के लिए मुंहमांगी क़ीमत ही नहीं चुकानी पड़ती अपितु हड़ताल शुरू होते ही वे बेघरबार हो जाते हैं क्योंकि कारख़ानेदार उन्हें बिना किसी कठिनाई के अपने मकानों से बाहर निकाल देता है और इस तरह किसी भी तरह का प्रतिरोध बहुत कठिन बना देता है। 'इंगलैंड में मज़दूर वर्ग की स्थिति' नामक मेरी पुस्तक के पृष्ठ २२४ तथा २२८ पर विवरण पढ़ने को मिल

सकते हैं। परन्तु श्री ज़ाक्स का ख़्याल है कि इन आपत्तियों का "खंडन करने की कोई ज़रूरत नहीं है" (पृष्ठ १११)। और क्या वह मज़दूर को अपने छोटे-से घर का मालिक नहीं बनाना चाहते? यक़ीनन वह ऐसा चाहते हैं, परन्तु चूंकि "मालिकों को सदैव ऐसी स्थिति में होना चाहिए कि वह घर ख़ाली करा सकें ताकि वे जब किसी मज़दूर को बर्ख़ास्त कर दें तो उसके स्थान पर रखे जानेवाले दूसरे मज़दूर को रहने के लिए घर दे सकें", इसलिए "**स्वामित्व के ख़ात्मे के क़रार की व्यवस्था** करने के अलावा "और कोई चारा नहीं रह जाता* (पृष्ठ ११३)

इस बार हम अप्रत्याशित शीघ्रता के साथ नीचे उतरे हैं। पहले यह कहा गया था कि मज़दूर के पास अपने घर के स्वामित्व का अधिकार होना चाहिए। फिर हमें सूचित किया गया कि यह शहरों में असम्भव है और उसे केवल देहात में ही पूरा किया जा सकता है। और अब हमें बताया जाता है कि देहात में भी स्वामित्व "क़रार द्वारा **ख़त्म किया जा सकता है**"! मज़दूरों के लिए श्री ज़ाक्स द्वारा खोजे गये स्वामित्व के इस नये तरीक़े के साथ, मज़दूरों के पूंजीपतियों में इस रूपान्तरण के साथ, जिसे "क़रार द्वारा ख़त्म किया जा सकता है", हम फिर सुख-चैन से चौरस मैदान में पहुंच गये हैं और अब हमें यहां इस बात की जांच करनी है कि पूंजीपतियों तथा अन्य लोकोपकारियों ने आवास प्रश्न को हल करने के लिए **वस्तुतः** क्या किया है।

---

*इस मामले में भी अंग्रेज़ पूंजीपतियों ने श्री ज़ाक्स की तमाम संजोयी हुई इच्छाओं की पूर्ति ही नहीं की, वरन् कहीं अधिक अधिपूर्ति भी की। सोमवार, १४ अक्तूबर १८७२ को संसदीय निर्वाचकों की सूचियों पर निर्णय देनेवाली मोरपेथ अदालत को संसदीय मतदाताओं की सूची में अपने नाम दर्ज कराने के लिए २,००० खान-मज़दूरों की अर्ज़ी पर निर्णय देना पड़ा। पता चला कि इन खान-मज़दूरों में से अधिकतर उन खानों के, जिनमें वे काम करते थे, अधिनियमों के अनुसार उनके घरों के **किरायेदार नहीं**, बल्कि वहां **दया पर** टिके हुए लोग माने जा सकते थे, जहां से उन्हें कोई नोटिस दिये बिना किसी भी समय बेदख़ल किया जा सकता था (खान-मालिक तथा मकान-मालिक स्वभावतया एक ही व्यक्ति हुआ करता था)। अदालत ने फ़ैसला दिया कि ये लोग किरायेदार नहीं, वरन् नौकर थे और इसलिए उन्हें मतदाताओं की सूची में शामिल होने का अधिकार नहीं था (*«Daily News»*, १५ अक्तूबर १८७२)। (**एंगेल्स की टिप्पणी**)

२

यदि हमारे डा० ज़ाक्स की बात पर विश्वास कर लिया जाये तो फिर ये सज्जन, पूंजीपति आवास की कमी को दूर करने के लिए बहुत कुछ कर चुके हैं और यह प्रमाणित हो चुका है कि उत्पादन की पूंजीवादी पद्धति के आधार पर आवास प्रश्न हल किया जा सकता है।

सर्वप्रथम श्री ज़ाक्स हमारे सामने... बोनापार्तपंथी फ़्रांस की मिसाल रखते हैं! जैसा कि सुविदित है, लूई बोनापार्त ने पेरिस विश्व प्रदर्शनी के समय प्रकटतया फ़्रांस में मेहनतकश वर्गों की स्थिति पर रिपोर्ट देने के लिए परन्तु वास्तव में साम्राज्य की स्तुति के हेतु उनकी स्थिति को परमानन्दपूर्ण बताने के लिए एक आयोग स्थापित किया था और **इसी** आयोग की, जिसे बोनापार्तपंथ के सबसे भ्रष्ट ताबेदारों को लेकर गठित किया गया था, रिपोर्ट का श्री ज़ाक्स विशेष रूप से इसलिए ज़िक्र करते हैं कि उसके कार्य के परिणाम "अधिकृत आयोग के **अपने बयान के अनुसार** फ़्रांस के लिए परिपूर्ण हैं"! और ये परिणाम क्या हैं? ८६ बड़े औद्योगिक प्रतिष्ठानों या ज्वायंट स्टाक कम्पनियों में से, जिन्होंने सूचना मुहैया की, ३१ ने मज़दूरों के लिए कोई बस्ती **बनायी ही नहीं थी**। श्री ज़ाक्स के अपने अनुमानानुसार निर्मित घरों में मुश्किल से ५०–६० हज़ार लोग रहते हैं और उनमें से प्रायः विशुद्ध रूप से ऐसे हैं जिनमें प्रत्येक परिवार के पास दो से ज़्यादा कमरे नहीं हैं!

यह स्वाभाविक ही है कि प्रत्येक पूंजीपति को, जो अपने उद्योग की परिस्थितियों – जल-आपूर्ति, कोयला खानों, खनिज लोहे के निक्षेपों, दूसरी खानों की अवस्थिति, आदि – के कारण विशेष देहाती इलाक़े से आबद्ध होते हैं, अपने मज़दूरों के लिए घर बनाने पड़ेंगे यदि वे उपलब्ध न हों। इसमें "अप्रत्यक्ष साहचर्य" का सबूत, "प्रश्न के बारे में बढ़ती हुई समझदारी और उसके व्यापक अर्थ का ज्वलन्त प्रमाण" और "बहुत ही आशादायी शुरूआत" (पृष्ठ ११५) देखने के लिए ज़रूरी है कि अपने को धोखा देने की आदत बहुत ही विकसित हो। वैसे भिन्न-भिन्न देशों के उद्योगपति इस मामले में भी अपने राष्ट्रीय चरित्र के अनुसार एक दूसरे से भिन्न हैं। उदाहरण के लिए श्री ज़ाक्स हमें सूचित करते हैं (पृष्ठ ११७) –

"**इंगलैंड** में इस दिशा में मालिकों की गतिविधियों **में वृद्धि अभी बिलकुल हाल में** दृष्टिगोचर हुई है। यह बात ख़ासकर देहाती इलाक़ों में दूर-दूर बसी

बस्तियों पर लागू होती है... मालिकों को अपने मज़दूरों के लिए **आवास का निर्माण करने की मुख्य प्रेरणा देनेवाली परिस्थिति** यह है कि आवास न होने पर उन्हें निकटतम गांव से शहर तक पहुंचने के लिए अक्सर बहुत लम्बा सफ़र तय करना पड़ता है तथा काम पर पहुंचने तक वे इतने थक चुके होते हैं कि वे पर्याप्त कार्य नहीं कर पाते। परन्तु जिन लोगों में परिस्थितियों की **गहरी समझदारी** है और जो आवास **सुधार** के ध्येय के साथ अप्रत्यक्ष साहचर्य के न्यूनाधिक सभी तत्वों को मिलाते हैं, उनकी संख्या भी बढ़ती जा रही है तथा ये ही वे लोग हैं जो इन फूलती-फलती बस्तियों की स्थापना के लिए श्रेय के पात्र हैं... इस मामले में हाइड में एशटन, टुर्टन में एशवर्थ, बरी में ग्रांट, बोलिंगटन में ग्रेग, लीड्स में मार्शल, बेलपेर में स्ट्रट, साल्टायर में साल्ट, कोप्ले में आकरायड, आदि अन्य लोगों के नाम पूरे यूनाइटेड किंगडम में सुविदित हैं"।

धन्य है यह भोलापन, उससे भी ज्यादा धन्य है यह अज्ञान! देहातों के अंग्रेज़ कारख़ानेदारों ने "अभी बिल्कुल हाल में" मज़दूर बस्तियों का निर्माण करना शुरू किया है! जी नहीं, मेरे प्रिय श्री ज़ाक्स, अंग्रेज़ पूंजीपति अपनी थैलियों के ही नहीं, वरन् अपने दिमाग़ के मामले में भी सचमुच बड़े उद्योगपति हैं। जर्मनी में वास्तव में बड़े पैमाने के उद्योग की स्थापना से बहुत पहले ही इन लोगों ने अनुभव कर लिया था कि देहाती इलाक़ों में कारख़ानों में उत्पादन के लिए मज़दूरों के आवास पर ख़र्चा पूंजी के कुल निवेश का आवश्यक भाग है तथा प्रत्यक्ष एवं परोक्ष दोनों रूप में बहुत लाभप्रद भी है। बिस्मार्क तथा जर्मन पूंजीपति वर्ग के बीच संघर्ष द्वारा जर्मन मज़दूरों को संघबद्धता की स्वतंत्रता दिये जाने से बहुत पहले ही अंग्रेज़ कारख़ानेदारों, खानों तथा फ़ाउंड्रियों के मालिकों ने यह व्यावहारिक अनुभव प्राप्त कर लिया था कि यदि वे साथ ही अपने मज़दूरों के मकान-मालिक भी हों तो वे हड़ताली मज़दूरों पर किस तरह दबाव डाल सकते हैं। ग्रेग, एशटन और एशवर्थ जैसे लोगों की "फूलती-फलती बस्तियां" इतनी "हाल की" हैं कि ४० साल पहले ही पूंजीपति वर्ग ने उन्हें आदर्श बनाकर उनका गुणगान किया था और स्वयं मैंने २८ वर्ष पहले यह बात लिखी थी ('इंगलैंड में मज़दूर वर्ग की स्थिति'। टिप्पणी, पृष्ठ २२८–२३०)। मार्शल तथा आकरायड (Akroyd – वह अपना नाम इसी तरह लिखते हैं) की बस्तियां उतनी ही पुरानी हैं तथा स्ट्रट की बस्ती तो और भी पुरानी है जिसकी गत शताब्दी में शुरूआत हुई थी। चूंकि इंगलैंड में मज़दूर बस्ती की औसत उम्र ४० वर्ष आंकी जाती है, श्री ज़ाक्स इन "फूलती-फलती बस्तियों की" आज की

जीर्णावस्था का हिसाब अपनी उंगलियों पर लगा सकते हैं। इसके अलावा इन बस्तियों में से अधिकांश अब देहात में भी नहीं रह गये हैं। उद्योगों के अपरिमित विस्तार ने उन्हें चारों ओर से कारख़ानों तथा मकानों से इस तरह घेर डाला है कि वे अब २०–३० हज़ार या इससे भी ज़्यादा निवासियों वाले गन्दे, धुएंदार शहरों के बीचोंबीच आ गये हैं। परन्तु यह सब जर्मन पूंजीवादी विज्ञान को, जिसका प्रतिनिधित्व श्री ज़ाक्स करते हैं, १८४० के अंग्रेज़ स्तुतिगानों की, जिनका आजकल के तथ्यों से कोई मेल नहीं रह गया है, अब भी निष्ठापूर्वक पुनरावृत्ति करते रहने से नहीं रोक पाता।

और रही हमारे समक्ष वृद्ध आकरायड के उदाहरण की बात। यह प्रशंसनीय महानुभाव निस्सन्देह उत्कृष्ट लोकोपकारी थे। वह अपने मज़दूरों से, ख़ास तौर पर अपनी मज़दूरिनों से इस हद तक प्यार करते थे कि यार्कशायर में उनके कम लोकोपकारी प्रतियोगी उनके बारे में कहा करते थे कि उनके कारख़ाने में विशुद्धत: उनकी सन्तान काम करती है! परन्तु श्री ज़ाक्स का दावा है कि इन दिनों इन फूलती-फलती बस्तियों में "नाजायज़ सन्तान उत्तरोत्तर कम होती जा रही है" (पृष्ठ ११८)। जी हां, **बिना विवाह के** जन्मी नाजायज़ सन्तान–बात यह है कि अंग्रेज़ औद्योगिक ज़िलों में ख़ूबसूरत लड़कियां बहुत कम उम्र में विवाह कर लेती हैं।

इंगलैंड में प्रत्येक बड़े देहाती कारख़ाने के समीप तथा साथ ही कारख़ाने के साथ मज़दूरों की बस्तियों की स्थापना ६० तथा इससे भी अधिक वर्षों से एक आम परिपाटी रही है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, कारख़ानों वाले इन देहातों में बहुत-से ऐसे केन्द्र बिन्दु बन गये हैं जिनके इर्दगिर्द आगे चलकर कारख़ानों वाले शहर उन तमाम बुराइयों के साथ विकसित हुए हैं जो हर किसी कारख़ाने वाले शहर के साथ आती हैं। इसलिए इन बस्तियों ने आवास प्रश्न हल नहीं किया है; इसके विपरीत उन्होंने अपने भूक्षेत्रों में इस प्रश्न को वस्तुत: **सबसे पहले जन्म दिया।**

दूसरी ओर, फ़्रांस में, ख़ास तौर पर जर्मनी में, उन देशों में स्थिति सर्वथा भिन्न है जो बड़े पैमाने के उद्योग के क्षेत्र में केवल इंगलैंड के पीछे-पीछे अपने पांव घसीटते हुए आगे बढ़े थे तथा जिन्हें वस्तुत: १८४८ के बाद ही पता चला कि बड़े पैमाने का उद्योग क्या होता है। यहां केवल विशाल धातुकर्म कारख़ानों तथा फ़ैक्टरियों ने–उदाहरण के लिए क्रेज़ो में श्नेइडेर कारख़ाने तथा एस्सेन में क्रुप्प कारख़ाने ने–काफ़ी हिचकिचाहट के बाद कुछ मज़दूर बस्तियों का निर्माण

करने का निर्णय किया था। देहातों में उद्योगपतियों की भारी बहुसंख्या को इससे कोई मतलब नहीं था कि उनके मज़दूर रोज़ गर्मी, बर्फ़ तथा वर्षा में अपने घर तथा कारख़ाने के बीच मीलों पैदल चलते हैं। यह बात ख़ास तौर पर पहाड़ी इलाक़ों पर—फ्रेंच तथा अल्साशियन वोगेज़, वुप्पेर, ज़ीग, आग्गेर, लेन्ने तथा अन्य राइनी-वेस्टफ़ालियई नदी घाटियों पर—लागू होती है। एर्जगेबिर्गे में भी शायद स्थिति बहुत भिन्न नहीं है। जर्मनों तथा फ़्रांसीसियों दोनों के बीच भी वही टुच्ची क़िस्म की कंजूसी दिखायी देती है।

श्री ज़ाक्स ख़ूब अच्छी तरह जानते हैं कि बहुत ही आशादायी शुरूआत और साथ ही फूलती-फलती बस्तियों का कोई अर्थ नहीं है। इसलिए अब वह पूंजीपतियों के सामने यह सिद्ध करने का यत्न करते हैं कि वे मज़दूरों की बस्तियों का निर्माण करके मनचाहा मुनाफ़ा कमा सकते हैं। दूसरे शब्दों में वह उन्हें मज़दूरों को ठगने का एक नया रास्ता दिखाना चाहते हैं।

सर्वप्रथम, वह उनके सामने लन्दन की अनेक भवन निर्माण सोसायटियों का—अंशतः लोकोपकारी तथा अंशतः सट्टेबाज़—उदाहरण रखते हैं जिन्होंने ४ से लेकर ६ प्रतिशत और उससे ज़्यादा मुनाफ़ा कमाया है। श्री ज़ाक्स के लिए हमारे सामने यह सिद्ध करने की कोई आवश्यकता नहीं है कि मज़दूरों के लिए मकानों के निर्माण पर पूंजी निवेश अच्छा मुनाफ़ा देता है। यदि पूंजीपति मज़दूरों की बस्तियों के निर्माण पर उससे ज़्यादा धन नहीं लगाते जितना वे लगा रहे हैं, तो इसका कारण यही है कि अधिक महंगे मकानों से उनके मालिकों को और भी ज़्यादा मुनाफ़ा मिलता है। अतः पूंजीपतियों को श्री ज़ाक्स जो नसीहत देते हैं, वह नैतिक प्रवचन के अलावा और कुछ नहीं है।

जहां तक लन्दन की इन भवन निर्माण सोसायटियों का सम्बन्ध है जिनकी शानदार सफलताओं का श्री ज़ाक्स इतने ज़ोरों से ढोल पीटते हैं, तो उन्होंने स्वयं श्री ज़ाक्स के आंकड़ों के अनुसार—और यहां उन्होंने भवन निर्माण में हर तरह की सट्टेबाज़ी को शामिल किया है—कुल मिलाकर २,१३२ परिवारों तथा ७०६ अकेले पुरुषों को, याने १५,००० से कम व्यक्तियों को आवास मुहैया किया है! और क्या इस तरह के उपहासास्पद बचकानेपन को जर्मनी में बहुत बड़ी सफलता के रूप में प्रस्तुत करने की बात संजीदगी के साथ सोची जा रही है हालांकि लन्दन के अकेले ईस्ट एंड में दस लाख मज़दूर आवास की घोर दयनीय अवस्थाओं में रहते हैं! ये सारी लोकोपकारी चेष्टाएं इतनी बुरी तरह निरर्थक हैं कि मज़दूरों

की हालत से सरोकार रखनेवाली अंग्रेज़ संसदीय रिपोर्टें उनकी कभी चर्चा तक नहीं करतीं।

हम यहां लन्दन के बारे में उपहासास्पद अज्ञान की बात नहीं करेंगे जिसका इस पूरे अनुभाग में परिचय दिया गया है। पर केवल एक मुद्दे की चर्चा करेंगे। श्री ज़ाक्स की राय है कि सोहो में अकेले पुरुषों के रैन-बसेरों का अस्तित्व इसलिए ख़त्म हुआ कि इस इलाक़े में "बड़ी संख्या में ग्राहक मिलने की कोई आशा नहीं थी"। श्री ज़ाक्स कल्पना करते हैं कि लन्दन का पूरा वेस्ट एंड एक बड़ा वैभवशाली नगर है। उन्हें पता ही नहीं है कि सबसे शालीन सड़कों के ठीक पीछे मज़दूरों के सबसे गन्दे इलाक़े हैं जिनमें उदाहरण के लिए सोहो एक है। सोहो के आदर्श रैन-बसेरे में, जिसकी श्री ज़ाक्स चर्चा करते हैं तथा जिसकी मुझे २३ वर्ष पूर्व ही जानकारी थी, शुरू-शुरू में बहुत लोग रहने के लिए जाते थे, परन्तु वह इसलिए बन्द हो गया कि एक भी व्यक्ति उसे सहन नहीं कर पाता था। और ध्यान रहे, यह घर सर्वोत्तम घरों में से एक था।

परन्तु अल्सास में मज़दूरों की म्युलहाउसेन बस्ती – यह वस्तुतः सफलता नहीं है क्या?

म्युलहाउसेन में मज़दूरों की बस्ती महाद्वीपीय पूंजीपतियों के लिए उसी तरह प्रदर्शनयोग्य तथा गौरव की वस्तु है जिस तरह एक ज़माने की एशटन, एशवर्थ, ग्रेग एंड कम्पनी की "फूलती-फलती बस्तियां" अंग्रेज़ पूंजीपतियों के लिए थीं। दुर्भाग्यवश म्युलहाउसेन बस्ती का उदाहरण "अप्रत्यक्ष" साहचर्य की नहीं अपितु फ़ांसीसी द्वितीय साम्राज्य तथा अल्सास पूंजीपतियों के बीच खुले साहचर्य की देन है। यह लूई बोनापार्त के समाजवादी प्रयोगों में से एक थी जिसके लिए राज्य ने एक-तिहाई पूंजी उधार दी। १४ वर्षों में (१८६७ तक) ८०० छोटे-छोटे मकान एक ऐसी दोषपूर्ण प्रणाली के अनुसार बनाये गये, जो लन्दन में असम्भव होती जहां लोग इन चीज़ों को बेहतर समझते हैं; ये मकान मज़दूरों को दे दिये जाते हैं जो अतिरिक्त किराये की मासिक अदायगी करते रहने पर १३ से १५ वर्ष के बाद उनके मालिक बन जाते हैं। अल्सास के बोनापार्तपंथियों के लिए सम्पत्ति हासिल करने की यह विधि गढ़ने की ज़रूरत नहीं थी; जैसा कि हम देखेंगे, अंग्रेज़ों की सहकारी भवन निर्माण सोसायटियां इसे बहुत पहले लागू कर चुकी थीं। इंगलैंड की तुलना में इन मकानों की ख़रीद के लिए अदा किया जानेवाला किराया काफ़ी ज़्यादा है। उदाहरण के लिए १५ वर्षों में ४,५०० फ़्रांक किश्तों में अदा करने के बाद मज़दूर को जो मकान मिलता है, उसकी क़ीमत १५ वर्ष

पूर्व ३,३०० फ़्रांक थी। यदि मज़दूर कहीं और जाना चाहता है या उस पर एक भी मासिक किश्त बकाया है (इस सूरत में उसे बेदख़ल किया जा सकता है) तो मकान के मूल मूल्य का ६ २/३ प्रतिशत वार्षिक किराये के रूप में (उदाहरण के लिए ३,००० फ़्रांक के मूल्य के मकान के लिए १७ फ़्रांक प्रति माह) वसूल किया जाता है और बाक़ी धन **एक कौड़ी ब्याज दिये बिना** उसे लौटा दिया जाता है। यह सर्वथा स्पष्ट है कि इन परिस्थितियों में सोसायटी "राजकीय सहायता" के बिना भी ख़ूब फूलती-फलती है। यह भी सर्वथा स्पष्ट है कि इन परिस्थितियों में मुहैया किये जानेवाले घर स्वयं शहरों के अन्दर पुराने बैरक जैसे घरों से यदि और किसी वजह से नहीं तो केवल इसलिए बेहतर हैं कि वे शहर के बाहर अर्द्ध देहाती इलाक़े में निर्मित किये गये हैं।

हमें जर्मनी में किये गये चन्द दयनीय प्रयोगों के बारे में कुछ कहने की ज़रूरत नहीं है; स्वयं श्री ज़ाक्स ने पृष्ठ १५७ पर उनकी तुच्छता स्वीकार की है।

तो फिर ये उदाहरण वस्तुतः क्या साबित करते हैं? महज़ यह कि स्वच्छता के सारे क़ानून पैरों तले न रौंदे जाने के बाद भी मज़दूरों के लिए घरों का निर्माण पूंजीवादी दृष्टिकोण से लाभप्रद होता है। परन्तु इस बात से तो कभी इन्कार नहीं किया गया, हम सब को यह बहुत पहले से मालूम था। विवेक सम्मत ढंग का **कोई भी** पूंजी निवेश, जो विद्यमान आवश्यकता की पूर्ति करता है, लाभप्रद होता है। परन्तु सवाल तो ठीक यही है कि आवास की कमी **फिर भी** क्यों बनी रहती है; पूंजीपति मज़दूरों के लिए पर्याप्त रूप से स्वास्थ्यप्रद आवास की क्यों व्यवस्था नहीं करते? और श्री ज़ाक्स के पास पूंजी को फिर नसीहत देने के अलावा और कुछ नहीं रह जाता है और वह हमें उत्तर देने में विफल रहते हैं। इस प्रश्न का वास्तविक उत्तर हम ऊपर दे चुके हैं।

पूंजी यदि आवास की कमी को मिटा भी सकती, वह उसे मिटाना नहीं चाहती; यह अब अन्तिम रूप से सिद्ध हो चुका है। इसलिए केवल दो रास्ते रह जाते हैं—मज़दूरों द्वारा आत्म-सहायता तथा उन्हें राजकीय सहायता।

आत्म-सहायता के उत्कट आराधक श्री ज़ाक्स आवास प्रश्न के क्षेत्र में भी इसके चमत्कारों का वर्णन करते हैं। दुर्भाग्यवश वह ठीक शुरू में ही यह मानने के लिए विवश होते हैं कि आत्म-सहायता वहीं कुछ कर सकती है जहां कुटीर व्यवस्था या तो पहले से ही विद्यमान हो या जहां वह सम्भव हो, याने वह केवल देहाती क्षेत्रों में कुछ कर सकती है। बड़े शहरों में, यहां तक कि इंगलैंड में भी यह बहुत ही सीमित रूप में कारगर हो सकती है। श्री ज़ाक्स फिर गहरी सांस लेते हैं—

"इस तरह" (आत्म-सहायता से) "सुधार केवल **चक्करदार रास्ते से ही** और इसलिए **हमेशा** आंशिक रूप में याने केवल उसी हद तक लागू किया जा सकता है जिस हद तक निजी स्वामित्व का सिद्धान्त इतना सशक्त हो जाये कि वह मकानों की गुणवत्ता पर असर डाल सके।"

यह भी सन्देहास्पद है; खैर कुछ भी हो, "निजी स्वामित्व के सिद्धान्त" ने लेखक की शैली की "गुणवत्ता" पर कोई प्रभाव नहीं डाला है। इस सब के बावजूद इंगलैंड में आत्म-सहायता ने ऐसे चमत्कार किये हैं "कि आवास प्रश्न को हल करने के लिए अन्य तरीकों के साथ इसकी बदौलत **कहीं ज्यादा हासिल हुआ है**"। श्री ज़ाक्स अंग्रेज़ "भवन निर्माण सोसायटियों" का ज़िक्र कर रहे हैं तथा उन पर विस्तारपूर्वक प्रकाश डालते हैं, ख़ास तौर पर इसलिए कि

"उनके स्वरूप तथा सामान्यतया उनकी गतिविधियों के विषय में बहुत अपर्याप्त अथवा गलत विचार प्रचलित हैं। अंग्रेज़ भवन निर्माण सोसायटियां कदापि... भवन निर्माण संघ अथवा भवन निर्माण सहकारिताएं नहीं हैं; उनके लिए... जर्मन भाषा में Hauserwerbvereine (मकान हासिल करनेवाले संघ) जैसे शब्द का उपयोग किया जा सकता है। वे ऐसे संघ हैं जिनका उद्देश्य अपने सदस्यों के मीयादी चन्दों से कोष जमा करना होता है ताकि फिर इन चन्दों से तथा उनकी राशि के अनुसार अपने सदस्यों को मकान ख़रीदने के लिए उधार दिये जा सकें... भवन निर्माण सोसायटी इस तरह अपने सदस्यों के एक भाग के लिए बचत बैंक तथा दूसरे भाग के लिए उधार बैंक है। भवन निर्माण सोसायटियां इसलिए रेहन उधार संस्थान हैं जो मुख्यतया... मज़दूरों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बनायी गयी हैं, जो मुख्य रूप से... जमाकर्ता जैसे एक ही सामाजिक हैसियत वाले लोगों को मकान ख़रीदने या बनाने में मदद देने के लिए मज़दूरों की बचत को... इस्तेमाल करती हैं। जैसा कि स्पष्ट है, इस तरह के उधार सम्बन्धित स्थावर सम्पदा को रेहन पर रखकर और इस शर्त पर दिये जाते हैं कि उनकी अदायगी थोड़े-थोड़े समय के अन्तर से किश्तों में की जायेगी जिनमें ब्याज तथा विमोचन की राशि मिली होगी... ब्याज जमाकर्ताओं को नहीं दिया जाता, वरन् हमेशा **उनके खाते में चक्रवृद्धि ब्याज के साथ जमा कर दिया जाता है...** सदस्य एक महीने का नोटिस देकर जब चाहें, अपनी जमा की हुई धनराशि को ब्याज के साथ लौटाने की मांग कर सकते हैं" (पृष्ठ १७०–१७२)। "इंगलैंड में इस तरह की दो हज़ार से अधिक सोसायटियां हैं... इन द्वारा संचित कुल पूंजी लगभग डेढ़ करोड़ पौंड है। इस तरह लगभग एक लाख मज़दूर परिवारों को अपना घरबार मिल गया है—यह ऐसी सामाजिक उपलब्धि है जिसकी यक़ीनन कोई दूसरी मिसाल नहीं है"। (पृष्ठ १७४)

दुर्भाग्यवश, यहां भी "परन्तु" शब्द लंगड़ाते हुए फ़ौरन सामने आ जाता है –

"परन्तु समस्या का सर्वांगपूर्ण समाधान इस तरह **कदापि हासिल नहीं हुआ है**, यदि और किसी कारण नहीं तो कम से कम इस कारण कि मकान हासिल करना केवल **बेहतर स्थितिवाले** मज़दूरों के बूते की चीज़ है... ख़ास तौर पर स्वच्छता की अवस्थाओं को पर्याप्त रूप से ध्यान में नहीं रखा जाता।" (पृष्ठ १७६)

महाद्वीप में "इस तरह के संघों के लिए... विकास की कम ही गुंजाइश है"। वे कुटीर व्यवस्था की पूर्वकल्पना करते हैं जो केवल देहात में मौजूद होती है; और देहात में मज़दूर अभी आत्म-सहायता के लिए पर्याप्त रूप से विकसित नहीं हुए हैं। दूसरी ओर, शहरों में, जहां वास्तविक भवन निर्माण सोसायटियां बनायी जा सकती हैं, उन्हें "विभिन्न प्रकार की बहुत ज़्यादा कठिनाइयों का" सामना करना पड़ रहा है (पृष्ठ १७६)। वे केवल कुटीरों का निर्माण कर सकती हैं और बड़े शहरों में इससे काम नहीं चलेगा। संक्षेप में, "सहकारी आत्म-सहायता का यह रूप वर्तमान परिस्थितियों में – और शायद निकट भविष्य तक में – हमारे सामने खड़ी समस्या के समाधान में मुख्य भूमिका अदा" नहीं कर सकता। बात यह है कि ये भवन निर्माण सोसायटियां "अब भी अपनी अविकसित मंज़िल" में हैं। "यही बात इंगलैंड पर भी लागू होती है।" (पृष्ठ १८१)

इसलिए पूंजीपति नहीं **चाहते** तथा मज़दूर नहीं **कर सकते**। इसके साथ हम इस भाग को यहीं ख़त्म कर देते यदि अंग्रेज़ भवन निर्माण सोसायटियों के बारे में, जिन्हें शुल्ज़े-डेलिच मार्का पूंजीपति हमारे मज़दूरों के सामने हमेशा आदर्श के रूप में प्रस्तुत करते रहते हैं, थोड़ी सूचना देना निहायत ज़रूरी न हो जाता।

ये भवन निर्माण सोसायटियां मज़दूरों की सोसायटियां कदापि नहीं हैं और मज़दूरों को मकान मुहैया करना भी उनका मुख्य उद्देश्य नहीं है। ऐसा अपवादस्वरूप ही होता है। ये भवन निर्माण सोसायटियां मूलतः सट्टेबाज़ स्वरूप वाले संगठन हैं, यही बात छोटी सोसायटियों पर, जो आरम्भिक सोसायटियां थीं, और उनकी नक़ल करनेवाली बड़ी सोसायटियों पर भी लागू होती है। किसी जलपान गृह में, आम तौर पर उसके मालिक की पहल पर, जिसके यहां आगे चलकर साप्ताहिक बैठकें होती हैं, नियमित ग्राहक और उनके दोस्त, दुकानदार, दफ़्तरों के क्लर्क, सफ़री एजेंट, छोटे दस्तकार तथा दूसरे छोटे पूंजीपति – कभी-

कभार शायद कोई मिस्तरी या कोई अन्य मजदूर जो अपने वर्ग के अभिजाततंत्र का सदस्य हो—आपस में मिलते हैं और भवन निर्माण सहकारी सोसायटी की स्थापना कर देते हैं। आम तौर पर तात्कालिक कारण यह होता है कि जलपान गृह के मालिक को आस-पड़ौस या कहीं और सस्ती ज़मीन का पता चल जाता है। अधिकांश सदस्यों का व्यवसाय ऐसा होता है कि वे किसी स्थान विशेष से बंधे नहीं होते। यही नहीं, बहुत-से दुकानदारों तथा दस्तकारों के शहर में केवल अपने कारोबार केन्द्र होते हैं, वहां उनका अपना निवास नहीं होता। जिस किसी में सामर्थ्य हो, वह धुएंदार शहर के बीचोंबीच रहने के बजाय उपनगरों में रहना चाहता है। भवन निर्माण के लिए ज़मीन ख़रीद ली जाती है तथा उस पर जितने सम्भव हों, उतने घरों का निर्माण कर लिया जाता है। अधिक समृद्ध सदस्यों के उधार से ख़रीद सम्भव हो जाती है और चन्द छोटे-छोटे उधारों के साथ साप्ताहिक चन्दों से निर्माण की साप्ताहिक लागत की पूर्ति की जाती है। जिन सदस्यों का उद्देश्य अपने लिए घर प्राप्त करना होता है, उन लोगों को मकानों का निर्माण पूरा होते ही मकान लाटरी डालकर दे दिये जाते हैं तथा निश्चित अतिरिक्त किराया ख़रीद-क़ीमत चुकाने का काम देता है। बाक़ी मकान तब या तो किराये पर उठा दिये जाते हैं या बेच दिये जाते हैं। भवन निर्माण सोसायटी का कारोबार यदि बहुत अच्छा होता है तो वह कमोबेश काफ़ी बड़ी धनराशि संचित कर लेती है। यह सदस्यों की सम्पत्ति बनी रहती है बशर्ते वे चन्दा देते रहें, उसे समय-समय पर अथवा सोसायटी के भंग होने पर सदस्यों के बीच बांट दिया जाता है। यह है दस में से नौ अंग्रेज़ भवन निर्माण सोसायटियों का इतिहास। बाक़ी अधिक बड़ी सोसायटियां होती हैं, जो कभी-कभी राजनीतिक अथवा लोकोपकारी बहानों की आड़ में स्थापित की जाती हैं परन्तु अन्ततः उनका लक्ष्य यही रह जाता है कि स्थावर सम्पदा की सट्टेबाज़ी के ज़रिए **निम्नपूंजीपति वर्ग** की बचतों के लिए ब्याज की अच्छी दर तथा लाभांशों की सम्भावना से बेहतर बन्धक निवेश सुनिश्चित किया जाये।

ये सोसायटियां किस तरह के ग्राहकों को ध्यान में रखती हैं, इसे उनमें से एक के प्रोस्पेक्ट में देखा जा सकता है जो यदि सबसे बड़ी नहीं तो सबसे बड़ी सोसायटियों में से एक ज़रूर है। बिर्कबेक बिल्डिंग सोसायटी, २६ तथा ३०, साउथहैम्पटन बिल्डिंग्स, चांसरी लेन, लन्दन, जिसकी अपनी स्थापना से लेकर अब तक सकल प्राप्त राशि १,०५,००,००० पौंड (७,००,००,००० टेलर) से ज़्यादा है, जिसकी बैंक में या सरकारी सिक्यूरिटियों में जमा राशि ४,१६,०००

पौंड से ज़्यादा है और जिसके पास इस समय २१,४४१ सदस्य तथा जमाकर्ता हैं, अपना परिचय निम्नलिखित ढंग से देती है—

"बहुत-से लोग पियानो निर्माताओं की तथाकथित तीनवर्षीय प्रणाली से परिचित हैं जिसके अन्तर्गत तीन वर्ष के लिए पियानो किराये पर लेनेवाला व्यक्ति इस मीयाद के ख़त्म होने पर उसका मालिक बन जाता है। इस प्रणाली के प्रचलित होने से पूर्व सीमित आय वाले लोगों के लिए अच्छा पियानो हासिल करना उतना ही कठिन होता था जितना कठिन अपने लिए मकान हासिल करना होता था। इस तरह के लोग वर्ष प्रति वर्ष पियानो का किराया चुकाते जाते थे और पियानो की क़ीमत से दुगुनी या तिगुनी ज़्यादा राशि ख़र्च कर बैठते थे। जो बात पियानो पर लागू होती है, वही मकान पर भी लागू होती है... परन्तु चूंकि मकान की क़ीमत पियानो से ज़्यादा होती है... क्रय-मूल्य चुकाने में अधिक समय लगता है। इस कारण डायरेक्टरों ने लन्दन के विभिन्न भागों तथा उसके उपनगरों में मकान-मालिकों के साथ एक क़रार किया है जिसके बल पर डायरेक्टर बिर्कबेक बिल्डिंग सोसायटी के सदस्यों तथा अन्य लोगों के सामने नगर के सर्वथा भिन्न-भिन्न भागों में ऐसे नाना प्रकार के मकान प्रस्तुत करने की स्थिति में हैं जिनमें से वे अपने लिए मनपसन्द मकान चुन सकते हैं। डायरेक्टरों का बोर्ड जो प्रणाली अमल में लाना चाहता है, वह इस प्रकार है—इन मकानों को १२.५ वर्ष के लिए किराये पर दिया जाता है तथा इस मियाद के ख़ात्मे पर किरायादार—बशर्ते वह किराया नियमित रूप से अदा करता आया हो—आगे किसी भी तरह के भुगतान के बिना मकान का पूर्ण स्वामी बन जायेगा... किरायादार चाहे तो वह ज़्यादा किराया देकर यह मियाद कम करा सकता है अथवा कम किराया देकर मियाद बढ़वा सकता है... **सीमित आय वाले लोग, क्लर्क, दुकानों के कर्मचारी** तथा अन्य लोग बिर्कबेक बिल्डिंग सोसायटी के सदस्य बनकर अपने को मकान-मालिकों से स्वतंत्र कर सकते हैं।"

बात बिल्कुल साफ़ है। मज़दूरों का कोई ज़िक्र नहीं है परन्तु सीमित आय वाले लोगों, क्लर्कों तथा दुकानों के कर्मचारियों आदि का ज़िक्र है। इसके अलावा यह मान लिया गया है कि ग्राहक सामान्यतः **पहले से ही पियानो के मालिक हैं।** वस्तुतः यहां मज़दूरों से कोई वास्ता ही नहीं है, केवल निम्नपूंजीपतियों तथा उन लोगों से वास्ता है जो इस तरह के लोग बनना चाहते हैं तथा बन भी **सकते हैं;** ऐसे लोगों से वास्ता है जिनकी आय—भले ही सीमित दायरे के अन्दर—धीरे-धीरे बढ़ती जाती है जैसे क्लर्क तथा इस तरह के अन्य कर्मचारी। इसके विपरीत मज़दूर की आय की राशि जो नाम मात्र को एक जैसी ही रहती है,

परिवार जनों की संख्या तथा उनकी ज़रूरतों में वृद्धि के अनुपात से वस्तुतः घटती जाती है। दर-असल अपवादस्वरूप चन्द मज़दूर ही इस तरह की सोसायटियों के सदस्य बन सकते हैं। एक ओर उनकी आय बहुत कम होती है तथा दूसरी ओर उनकी यह आय इतने अनिश्चित स्वरूप की होती है कि वे पहले ही १२.५ वर्ष का दायित्व ग्रहण नहीं कर सकते। जिन चन्द अपवादों पर यह चीज़ लागू नहीं होती तो वे या तो सर्वाधिक वेतनभोगी मज़दूर या फ़ोरमैन होते हैं।*

वैसे सभी यह जानते हैं कि मज़दूरों के म्युलहाउसेन बस्ती के बोनापार्तपंथी निम्न-पूंजीवादी इन अंग्रेज़ भवन निर्माण सोसायटियों की घटिया नक़ल करनेवालों

---

*इन भवन निर्माण संघों का, ख़ास तौर पर लन्दन के भवन निर्माण संघों का किस तरह प्रबन्ध किया जाता है, इस बारे में हम यहां थोड़ा और कहना चाहते हैं। जैसा कि सुविदित है, उस पूरी ज़मीन पर, जिस पर लन्दन का निर्माण हुआ है, लगभग एक दर्जन अभिजातों का स्वामित्व है जिनमें ड्यूक आफ़ वेस्टमिंस्टर, ड्यूक आफ़ बेडफ़ोर्ड, ड्यूक आफ़ पोर्टलैंड, आदि प्रमुख व्यक्ति शामिल हैं। उन्होंने मूलतः मकानों के निर्माण के लिए पृथक-पृथक भूखण्ड ९९ वर्षों की अवधि के लिये किराये पर दे दिये थे और उस अवधि के ख़त्म होने पर उन्होंने उस ज़मीन को उस पर खड़ी तमाम चीज़ों समेत अपने अधिकार में ले लिया। फिर उन्होंने इन मकानों को कम मियाद के लिए, उदाहरण के लिए, ३९ वर्षों के लिए (मरम्मत की ज़िम्मेवारी के साथ पट्टे पर) दे दिये जिसके अनुसार मकान को ठीक-ठाक करने तथा उसे इसी हालत में रखने की ज़िम्मेवारी किरायेदार को सौंपी गयी। क़रार के सम्पन्न होने पर मकान-मालिक अपने वास्तुशिल्पी तथा ज़िला सर्वेयर को मकान की जांच करने तथा यह निश्चित करने के लिए भेजता है कि कितनी मरम्मत की आवश्यकता है। ये मरम्मत कार्य अक्सर बहुत ज़्यादा होते हैं तथा मकान के आगे के पूरे हिस्से या छत, आदि की मरम्मत उनमें शामिल हो सकती है। किरायादार अब अपना पट्टा किसी भवन निर्माण संघ के पास ज़मानत के रूप में जमा कर देता है और अपने ख़र्चे पर मकान की मरम्मत के लिए उस संघ से आवश्यक धन – १३० से १५० पौंड तक के वार्षिक किराये पर एक हज़ार या इससे भी अधिक पौंड – प्राप्त करता है। इस तरह ये भवन निर्माण संघ एक ऐसी प्रणाली की महत्वपूर्ण मध्यवर्ती कड़ी बन जाते हैं जिसका लक्ष्य यह है कि भू-अभिजातों के लिए किसी तरह की परेशानी के बिना तथा सार्वजनिक ख़र्चे पर उनके लंदन वाले मकानों का निरन्तर नवीकरण होता रहे तथा उन्हें रहने योग्य रखने के लिए उनका रख-रखाव होता रहे।

और इसे मज़दूरों के लिए आवास प्रश्न का समाधान माना गया है! (**१८८७ के संस्करण में एंगेल्स की टिप्पणी**)

के अलावा और कुछ नहीं हैं। एकमात्र अन्तर यह है कि बोनापार्तपंथी अपने लिए राजकीय सहायता मंजूर होने के बावजूद अपने ग्राहकों को भवन निर्माण सोसायटियों से कहीं ज़्यादा ठगते हैं। कुल मिलाकर उनकी शर्तें इंगलैंड में मौजूद औसत शर्तों से कहीं कम उदार हैं। जहां इंगलैंड में प्रत्येक जमा-राशि पर ब्याज तथा चक्रवृद्धि ब्याज आंका जाता है और उसे एक माह के नोटिस पर वापस लिया जा सकता है, वहां म्युलहाउसेन के कारख़ानेदार ब्याज तथा चक्रवृद्धि ब्याज दोनों को अपनी जेबों में डाल देते हैं और मज़दूर पांच-पांच फ़्रांक के सिक्के गिन-गिनकर जो मूल राशि जमा करते हैं, उसे उससे एक भी कौड़ी ज़्यादा नहीं लौटाते। और इस अन्तर पर श्री ज़ाक्स से ज़्यादा हैरान और कोई नहीं होगा जिनकी पुस्तक में यह सब है पर जिनका उन्हें ज्ञान तक नहीं है।

इस प्रकार मज़दूरों की आत्म-सहायता का भी कोई नतीजा नहीं निकलता। रही राज्य सहायता की बात। इस मामले में श्री ज़ाक्स हमारे सामने क्या प्रस्तुत कर सकते हैं? तीन चीज़ें—

"सर्वप्रथम, राज्य को यह ध्यान में रखना चाहिए कि अपने क़ानून तथा प्रशासन में वे सब चीज़ें, जिनके परिणामस्वरूप मेहनतकश वर्गों के बीच आवास की कमी किसी भी तरह उग्र होती है, ख़त्म हो जानी चाहिए या उन्हें उपयुक्त ढंग से सुधारा जाना चाहिए।" (पृष्ठ १८७)

अतः भवन निर्माण क़ानूनों को संशोधित किया जाये तथा निर्माण व्यवसायों को आज़ादी दी जाये ताकि निर्माण का काम सस्ता हो सके। परन्तु इंगलैंड में तो ये भवन निर्माण क़ानून कम से कम कर दिये गये हैं तथा निर्माण व्यवसाय आकाश में उड़ते पक्षियों की तरह स्वतंत्र है; फिर भी मकानों की कमी बरक़रार है। इसके अलावा इंगलैंड में निर्माण कार्य इतना सस्ता है कि मकान किसी घोड़ा-गाड़ी के गुज़रने पर ही हिलने लगते हैं। हर रोज़ कुछ न कुछ मकान गिरते रहते हैं। कल ही (२५ अक्तूबर १८७२) मानचेस्टर में छः मकान एकसाथ ढह गये तथा छः मज़दूर बुरी तरह घायल हो गये। इसलिए इससे भी कोई मदद नहीं मिलती।

"दूसरे, राजकीय सत्ता का काम है कि वह अलग-अलग व्यक्तियों को अपने संकीर्ण व्यक्तिवाद के कारण यह विपत्ति फैलाने या फिर से पैदा करने से रोके।"

इसलिए मज़दूरों के घरों की सफ़ाई और भवन निर्माण पद्धति-सम्बन्धी जांच ; जीर्ण-शीर्ण और अस्वास्थ्यकर मकानों में रहने की मनाही करने का अधिकार सरकारी अधिकारियों को सौंपा जाना, जैसा कि इंगलैंड में १८५७ से है। परन्तु यह वहां कैसे हुआ ? १८५५ का पहला क़ानून (अपदूषण उन्मूलन क़ानून) स्वयं श्री ज़ाक्स की स्वीकारोक्ति के अनुसार १८५८ के दूसरे क़ानून (स्थानीय स्वशासन क़ानून) की तरह "निर्जीव क़ानून" बना रहा (पृष्ठ १९७)। दूसरी ओर, श्री ज़ाक्स का विश्वास है कि तीसरा क़ानून (दस्तकार आवास क़ानून), जो केवल १० हज़ार से ऊपर की आबादी वाले शहरों पर लागू होता है, "सामाजिक मामलों के विषय में ब्रिटिश संसद की गहरी समझदारी का यक़ीनन अनुकूल प्रमाण है" (पृष्ठ १९९)। परन्तु वास्तविकता यह है कि यह दावा अंग्रेज़ "मामलों" के बारे में श्री ज़ाक्स के घोर अज्ञान का भी उतना ही "अनुकूल प्रमाण" है। आम तौर पर "सामाजिक मामलों" में इंगलैंड महाद्वीप से कहीं आगे है, यह स्वतःस्पष्ट है। इंगलैंड बड़े पैमाने के आधुनिक उद्योग की जन्मभूमि है; उत्पादन की पूंजीवादी पद्धति का वहां सबसे मुक्त तथा व्यापक विकास हुआ है; उसके परिणाम वहां अपने को सबसे ज्वलन्त रूप में प्रकट करते हैं और इसलिए वहीं पहले-पहल क़ानून के क्षेत्र में उनकी प्रतिध्वनि हुई। इसका सर्वोत्तम प्रमाण कारख़ाना क़ानून है। परन्तु श्री ज़ाक्स यदि यह सोचते हैं कि किसी संसदीय क़ानून के लिए तत्काल व्यवहार में आने योग्य बनने के लिए क़ानूनी शक्ति प्राप्त करना पर्याप्त है तो वह भारी भूल कर रहे हैं। यही बात किसी भी संसदीय क़ानून की तुलना में (केवल वर्कशाप क़ानून को छोड़कर) स्थानीय स्वशासन क़ानून पर ही ज्यादा लागू होती है। इस क़ानून को अमल में लाने का कार्य नगर प्रशासन को सौंपा गया जो प्रायः पूरे इंगलैंड में इस तरह के भ्रष्टाचार, कुनबापरस्ती तथा jobbery* का सर्वमान्य केन्द्र है। इस नगर प्रशासन के एजेंट, जो अपने पदों पर

---

*किसी सार्वजनिक पद का सरकारी अधिकारी या उसके परिवार के लिए उपयोग किये जाने को jobbery कहते हैं। उदाहरण के लिए यदि किसी देश के राजकीय तार विभाग का डायरेक्टर किसी काग़ज़ कारख़ाने का गुप्त साझेदार बन जाता है, उस कारख़ाने को अपने जंगलों की लकड़ी मुहैया करता है और फिर फ़ैक्टरी को तारघरों के लिए काग़ज़ की आपूर्ति के आर्डर देता है तो वह निस्सन्देह छोटा होते हुए भी बढ़िया job है और jobbery के सिद्धान्तों की पूर्ण समझ-दारी प्रदर्शित करता है; वैसे बिस्मार्क के ज़माने में इसे आम और सर्वथा स्वाभाविक माना जाता था। (**एंगेल्स की टिप्पणी**)

हर तरह के पारिवारिक सम्बन्धों के कारण नियुक्त होते हैं, इस तरह के सामाजिक क़ानूनों को या तो लागू करने के लिए अयोग्य होते हैं या वे उन्हें लागू ही नहीं करना चाहते। दूसरी ओर, इंगलैंड ही वह स्थान है जहां राजकीय अधिकारी, जिन्हें सामाजिक क़ानून तैयार करने तथा उन्हें अमल में लाने का दायित्व सौंपा जाता है, प्रायः अपनी गहरी कर्त्तव्यपरायणता के लिए सुविदित हैं हालांकि यह स्थिति आज २० या ३० वर्ष पहले से कम है। नगरपालिकाओं में सर्वत्र कमज़ोर तथा जीर्ण-शीर्ण मकानों के मालिकों को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में ज़ोरदार प्रतिनिधित्व प्राप्त है। इन नगरपालिकाओं को छोटे-छोटे हल्कों के ज़रिये निर्वाचित करने की प्रणाली निर्वाचित सदस्यों को तुच्छ स्थानीय हितों तथा प्रभावों पर आश्रित बना देती है; कोई भी नगरपालिका सदस्य, जो दुबारा चुना जाना चाहता है, अपने निर्वाचन क्षेत्र में इस क़ानून को लागू करने के पक्ष में मतदान करने की हिम्मत नहीं कर सकता। इसलिए यह समझ में आने योग्य चीज़ है कि इस क़ानून को प्रायः सारे स्थानीय प्रशासनों के कितने विरोध का सामना करना पड़ा होगा; कि इस समय तक उसे सबसे बदनामीभरे मामलों में लागू किया गया, और वह भी आम तौर पर किसी संक्रामक रोग के फैलने पर ही – जैसे गत वर्ष मानचेस्टर तथा साल्फ़ोर्ड में चेचक के मामले में – लागू किया गया। गृह मंत्री की अब तक अपीलें केवल ऐसे ही मामलों में कारगर हुई हैं क्योंकि इंगलैंड की हर **उदारतावादी** सरकार का यह सिद्धान्त रहा है कि वह केवल विवश होने पर ही सामाजिक सुधारों का प्रस्ताव किया करती है और जहां तक सम्भव हो, पहले से मौजूद क़ानूनों पर अमल से बचा करती है। इंगलैंड के अन्य क़ानूनों की तरह सम्बन्धित क़ानून भी केवल इसलिए महत्वपूर्ण है कि वह ऐसी सरकार के हाथों में, जिस पर मज़दूरों का प्रभुत्व या दबाव हो, ऐसी सरकार के हाथों में, जो अन्ततः उसे सचमुच अमल में लायेगी, विद्यमान सामाजिक ढांचे में दरार डालने के लिए एक महत्वपूर्ण अस्त्र होगा।

"तीसरे", श्री ज़ाक्स के अनुसार, राजकीय सत्ता का काम है कि वह "आवास की मौजूदा कमी को दूर करने के लिए अपने पास उपलब्ध सारे ठोस साधनों का व्यापकतम उपयोग करे।"

इसका मतलब यह है कि वह बैरकों का, "अपने अधीन अधिकारियों तथा कर्मचारियों के लिए" (परन्तु ये तो मज़दूर नहीं हैं!) "सही अर्थों में आदर्श इमारतों का निर्माण करे और मेहनतकश वर्गों की आवासीय अवस्थाएं सुधारने के

उद्देश्य के लिए नगरपालिकाओं, सोसायटियों तथा अलग-अलग व्यक्तियों तक को... उधार दे" (पृष्ठ २०३), जैसा कि इंगलैंड में सार्वजनिक कार्य उधार क़ानून के अन्तर्गत किया जाता है तथा पेरिस और म्युलहाउसेन में लूई बोनापार्त ने किया है। परन्तु सार्वजनिक कार्य उधार क़ानून भी केवल काग़ज़ में ही मौजूद है। सरकार कमिश्नरों को ५० हज़ार पौंड की अधिकतम धनराशि, यानी इतनी धनराशि सौंपती है जो अधिक से अधिक ४०० कुटीर बनाने के लिए, यानी ४० वर्ष में कुल मिलाकर १६ हज़ार कुटीर, यानी अधिक से अधिक ८० हज़ार व्यक्तियों के लिए घर बनाने के लिए पर्याप्त होती है – यह तो सागर में बूंद के बराबर है! यदि हम यह भी मान लें कि २० साल के बाद कमीशन की निधि उधार की अदायगी के फलस्वरूप दुगुनी हो जायेगी और इसलिए बाक़ी २० वर्षों में ४० हज़ार और व्यक्तियों के लिए घर बन जायेंगे तब भी यह सागर में बूंद के बराबर होगा। चूंकि कुटीरों की उम्र औसतन केवल ४० वर्ष की होती है इसलिए ४० वर्ष के बाद सबसे ज़्यादा जीर्ण-शीर्ण, सबसे पुराने कुटीरों के पुनरुद्धार पर हर वर्ष ५० हज़ार या १ लाख पौंड का उपयोग करना पड़ेगा। यही, पृष्ठ २०३ पर श्री ज़ाक्स की घोषणानुसार, सिद्धान्त को सही तथा "व्यापकतम पैमाने पर" अमल में लाया जाना है! इस स्वीकारोक्ति के साथ कि इंगलैंड में भी राज्य "व्यापकतम पैमाने पर" कुछ हासिल नहीं कर पाया है, श्री ज़ाक्स अपनी पुस्तक समाप्त करते हैं, परन्तु ऐसा वह सभी सम्बन्धित व्यक्तियों को पहले एक और उपदेश दिये बिना नहीं करते।*

---

*अंग्रेज़ संसद के हाल के क़ानूनों में, जिनमें लन्दन के भवन निर्माण अधिकारियों को नयी सड़कों के निर्माण के लिए हस्तगतकरण का अधिकार दिया गया है, इस तरह अपने घरों से बेदख़ल किये जानेवाले मज़दूरों का कुछ ख़्याल रखा गया है। यह धारा शामिल की गयी है कि निर्मित होनेवाली इमारतें आबादी की उन श्रेणियों के लिए उपयुक्त होनी चाहिए जो पहले वहां रहती थीं। इसलिए कम से कम क़ीमती निर्माण स्थलियों पर मज़दूरों के रहने के लिए ५-६ मंज़िल वाली आवासीय इमारतें खड़ी कर दी गयी हैं। इस तरह क़ानून की भावना का आदर किया गया है। यह तो भविष्य बतायेगा कि यह नयी व्यवस्था किस तरह काम करेगी क्योंकि मज़दूर उसके क़तई अभ्यस्त नहीं हैं तथा ये इमारतें पुराने लन्दन की परिस्थितियों में सर्वथा विजातीय हैं। इससे हद से हद उन मज़दूरों के एक चौथाई भाग को नये घर मिल सकेंगे जो वस्तुतः भवन निर्माण कार्यों के फलस्वरूप बेदख़ल हुए हैं। (**१८८७ के संस्करण में एंगेल्स की टिप्पणी**)

यह सर्वथा स्पष्ट है कि समकालीन राज्य आवासीय विपदा को दूर करने में न तो समर्थ है और न वह उसे दूर करने के लिए कुछ करना ही चाहता है। राज्य शोषित वर्गों, किसानों तथा मजदूरों के विरुद्ध सम्पत्तिधारी वर्गों, ज़मींदारों तथा पूंजीपतियों की संगठित सामूहिक शक्ति के अलावा और कुछ नहीं है। जो पृथक-पृथक पूंजीपति (और यहां यह केवल इनका ही प्रश्न है क्योंकि इस मामले में ज़मींदार भी, जो इससे सम्बन्धित है, पूंजीपति की हैसियत से ही काम करता है) नहीं चाहता, वह उसका राज्य भी नहीं चाहता। इसलिए यदि **अलग-अलग** पूंजीपति आवास की कमी पर दुख तो प्रकट करे परन्तु यदि उसे उसके सबसे भयावह परिणामों पर सतही लीपापोती तक करने के लिए विचलित नहीं किया जा सकता, तो **सामूहिक** पूंजीपति, राज्य भी ज़्यादा कुछ नहीं करेगा। वह हद से हद यह ध्यान में रखेगा कि सर्वत्र आम सतही लीपापोती ही एक समान रूप से की जाये। और हम देख चुके हैं कि ऐसा ही होता है।

परन्तु कोई यह आपत्ति कर सकता है कि जर्मनी में पूंजीपति वर्ग अभी राज नहीं कर रहा है; जर्मनी में राज्य अब भी कुछ हद तक समाज से स्वतंत्र रूप में उड़ान भर रहा है जो ठीक इस कारण किसी एक वर्ग का नहीं, वरन् समाज के सामूहिक हितों का प्रतिनिधित्व कर रहा है। **इस तरह का** राज्य ऐसा बहुत-कुछ कर सकता है जो पूंजीवादी राज्य नहीं कर सकता और उससे सामाजिक क्षेत्र में भी कुछ सर्वथा भिन्न काम करने की अपेक्षा की जानी चाहिए।

यह प्रतिक्रियावादियों का दावा है। वास्तव में राज्य, जिस रूप में वह जर्मनी में नज़र आता है, उसी सामाजिक आधार की अनिवार्य उपज है जिससे उसका जन्म हुआ है। प्रशा में – और प्रशा इस समय निर्णायक भूमिका अदा कर रहा है – भू-स्वामी अभिजात वर्ग की, जो अब भी सशक्त है, बग़ल में अपेक्षाकृत तरुण और घोर कायर पूंजीपति वर्ग विद्यमान है जिसने अब तक न तो फ़्रांस की तरह प्रत्यक्ष राजनीतिक प्रभुत्व प्राप्त किया है और न इंगलैंड की तरह न्यूनाधिक परोक्ष प्रभुत्व। परन्तु इन दो वर्गों के साथ ही साथ तादाद की दृष्टि से तेज़ी से बढ़ता जा रहा सर्वहारा वर्ग भी है जो बौद्धिक दृष्टि से अत्यन्त विकसित है और दिनोंदिन अधिकाधिक संगठित होता जा रहा है। इसलिए पुराने निरंकुश राजतंत्र की मूल शर्त के – भू-स्वामी अभिजात वर्ग तथा पूंजीपति वर्ग के बीच सन्तुलन – साथ-साथ हम यहां आधुनिक बोनापार्तपंथ की मूल शर्त – पूंजीपति वर्ग तथा सर्वहारा वर्ग के बीच सन्तुलन – भी देखते हैं। परन्तु पुराने निरंकुश राजतंत्र की तरह आधुनिक बोनापार्तपंथी राजतंत्र में भी वास्तविक सरकारी सत्ता फ़ौजी अफ़सरों

तथा राजकीय अधिकारियों की एक ख़ास श्रेणी के हाथों में है। प्रशा में इस श्रेणी में अंशतः उसकी अपनी क़तारों से और अंशतः छोटे ज्येष्ठाधिकारी अभिजातों से संपूर्ति होती रहती है; उसमें उच्च अभिजात वर्ग से विरले ही और पूंजीपति वर्ग से तो सबसे कम संपूर्ति होती है। इस श्रेणी की स्वतंत्रता, जो समाज के बाहर और, कहना चाहिए, समाज के ऊपर विशेष स्थिति ग्रहण की हुई प्रतीत होती है, राज्य को समाज के सम्बन्ध में स्वतंत्रता का आभास प्रदान करती है।

इन परस्परविरोधी सामाजिक अवस्थाओं में से प्रशा में (तथा प्रशा के उदाहरण के बाद जर्मनी के नये राइख़ संविधान में भी) राज्य का जो रूप विकसित हुआ है, वह मिथ्या संविधानवाद है। इस राजकीय रूप में पुराने निरंकुश राजतंत्रवाद के विघटन का समकालीन रूप तथा बोनापार्तपंथी राजतंत्रवाद के अस्तित्व का रूप दोनों एकसाथ आ जाते हैं। प्रशा में १८४८ से १८६६ तक मिथ्या संविधानवाद ने निरंकुश राजतंत्रवाद के धीरे-धीरे क्षय को केवल छुपाया तथा उसके धीरे-धीरे विघटन के लिए रास्ता साफ़ किया। परन्तु १८६६ से और ख़ासकर १८७० से सामाजिक अवस्थाओं में उथल-पुथल तथा उसके साथ पुराने राज्य का विघटन सब की आंखों के सामने तथा अपरिमित पैमाने पर अग्रसर होते रहे हैं। उद्योग के और ख़ास तौर पर शेयर बाज़ार में झांसा-पट्टी के द्रुत विकास ने सारे सत्ताधारी वर्गों को सट्टेबाज़ी के भंवर की ओर धकेल दिया है। फ़्रांस से १८७० में अपरिमित रूप में आयातित भ्रष्टाचार अभूतपूर्व गति से विकसित हो रहा है। स्ट्रासबेर्ग तथा पेरेइर एक दूसरे की ओर हाथ बढ़ाते हैं। मंत्री, जनरल, राजे-रजवाड़े तथा काउंट स्टाक एक्सचेंज के सबसे बड़े धूर्तों के साथ शेयर बाज़ार की सट्टेबाज़ी में प्रतियोगिता करते हैं तथा राज्य स्टाक एक्सचेंज के इन धूर्तों को अपरिमित रूप से सामन्ती उपाधियां प्रदान करके उनकी समानता को मान्यता देता है। देहाती अभिजात वर्ग, जो चुकन्दर तथा ब्रांडी के उत्पादन के क्षेत्र में दीर्घकाल से उद्योगपति रहे हैं, अपने पुराने गौरवशाली दिनों को बहुत पहले पीछे छोड़ आये हैं और अब सब तरह की ठोस और कमज़ोर ज्वायंट स्टाक कम्पनियों के डायरेक्टरों की सूचियां उनके नामों से भरी पड़ी हैं। नौकरशाही अपनी आय बढ़ाने के एकमात्र साधन के रूप में ग़बन का अधिकाधिक तिरस्कार करने लगी है; वह राजकीय पदों की ओर से मुंह मोड़ते हुए औद्योगिक प्रतिष्ठानों के प्रशासन में कहीं ज़्यादा मोटी-मोटी तनख़्वाहों के पीछे भागने लगी है; जो नौकरशाह अब भी राजकीय पदों पर हैं, वे अपने वरिष्ठों का अनुकरण कर रहे हैं तथा शेयरों की सट्टेबाज़ी कर रहे

हैं अथवा रेलवे, आदि में "शेयर हासिल कर रहे हैं"। यह मानना भी उचित होगा कि लेफ़्टिनेंट भी कतिपय सट्टेबाज़ियों में जुटे हुए हैं। संक्षेप में, पुराने राज्य का क्षय तथा निरंकुश राजतंत्र का बोनापार्तपंथी राजतंत्र में संक्रमण पूरे ज़ोरों से हो रहा है। अगले बड़े व्यापारिक-औद्योगिक संकट के साथ मौजूदा झांसा-पट्टी ही नहीं, वरन् पुराना प्रशियाई राज्य भी ढह जायेगा।*

और क्या यह राज्य, जिसमें ग़ैरपूंजीवादी तत्व अधिकाधिक पूंजीवादी बनते जा रहे हैं, "सामाजिक प्रश्न" को, या फिर मात्र आवास प्रश्न को हल करने जा रहा है? बात इसके विपरीत है। तमाम आर्थिक प्रश्नों में प्रशियाई राज्य अधिकाधिक पूंजीपति वर्ग के प्रभाव में पहुंचता जा रहा है। और यदि आर्थिक क्षेत्र में १८६६ से क़ानून बनाने के काम को पूंजीपति वर्ग के हित में उससे ज्यादा नहीं ढाला गया है जितना वह वस्तुतः ढला है तो यह किसका दोष है? दोषी मुख्यतया पूंजीपति वर्ग है; इसकी पहली वजह यह है कि वह इतना कायर है कि अपनी मांगों पर सशक्त ढंग से ज़ोर नहीं डाल सकता, दूसरी वजह यह है कि वह हर रियायत का विरोध करता है यदि वह रियायत भयावह सर्वहारा वर्ग के हाथों में नये हथियार सौंपती हो। और यदि राजकीय सत्ता, अर्थात् बिस्मार्क पूंजीपति वर्ग की राजनीतिक गतिविधियों पर अंकुश लगाने के लिए अपने अंगरक्षक सर्वहारा को संगठित करने का यत्न करता है तो वह उस आवश्यक तथा सुविदित बोनापार्तपंथी नुस्ख़े के अलावा और क्या है जो राज्य को—जहां तक मज़दूरों का सम्बन्ध है—चन्द सद्भावनापूर्ण वाक्यों तक तथा हद से हद लूई बोनापार्त मार्का भवन निर्माण सोसायटियों के लिए राजकीय सहायता देने तक वचनबद्ध करता है?

मज़दूर प्रशियाई राज्य से क्या अपेक्षा कर सकते हैं, इसका सबसे बढ़िया प्रमाण फ़्रांसीसी अरबों का उपयोग है जिन्होंने समाज के सिलसिले में प्रशियाई राजकीय यंत्र को थोड़ी और अवधि दी है। इस अरबों की राशि में से क्या एक टेलर भी बर्लिन के मज़दूर वर्ग के उन परिवारों को शरण देने

---

*आज भी, १८८६ में, पुराने प्रशियाई राज्य तथा उसके आधार को—बड़े भू-स्वामियों तथा औद्योगिक पूंजी की संघबद्धता को जिसे संरक्षण शुल्क दृढ़ बनाये हुए हैं—जो चीज़ सूत्रबद्ध रखती है, वह है सर्वहारा का भय जिनकी संख्या तथा वर्ग चेतना में १८७२ से असीम वृद्धि हुई है। **(१८८७ के संस्करण में एंगेल्स की टिप्पणी)**

पर ख़र्च किया गया है जिन्हें घरों से बेदख़ल कर सड़कों में धकेल दिया गया? बिल्कुल नहीं। पतझड़ ज्यों पास पहुंचा, राज्य ने उन दयनीय बैरकों तक को गिरा दिया जहां इन लोगों को गर्मियों में सिर छुपाने की जगह मिली थी। ये पांच अरब भी तेज़ी से घिसे-पिटे रास्ते पर – क़िलों, तोपों तथा सिपाहियों पर – बहते जा रहे हैं; और वागनेर की मूर्खतापूर्ण बातों[72] के बावजूद तथा आस्ट्रिया के साथ श्टिबेरियाई कांफ़्रेंसों[73] के बावजूद अरबों की इस धनराशि में से जर्मन मज़दूरों के लिए उससे कम मंज़ूर की जायेगी जो लूई बोनापार्त द्वारा फ़्रांस से चुरायी गयी करोड़ों की धनराशि में से फ़्रांसीसी मज़दूरों के लिए मंज़ूर की गयी थी।

३

वस्तुतः पूंजीपति वर्ग के पास आवास प्रश्न को हल करने के लिए **अपने ढंग का** एक ही तरीक़ा है, यानी ऐसा तरीक़ा कि हल समस्या को निरन्तर नूतन रूप से प्रस्तुत करता रहे। इस तरीक़े को **"ओस्मान"** तरीक़ा कहते हैं।

"ओस्मान" शब्द से मेरा तात्पर्य विशिष्टतया पेरिसवासी ओस्मान के बोनापार्तपंथी ढंग से ही नहीं है – मज़दूरों के घने बसे घरों के ठीक बीच से लम्बी, सीधी और चौड़ी सड़कों का निर्माण करना तथा उनके दोनों ओर बड़े-बड़े आलीशान इमारतें खड़ी करना, इसके पीछे बैरीकेडी लड़ाई को अधिक कठिन बनाने के सामरिक उद्देश्य के अलावा यह उद्देश्य भी छुपा हुआ था कि सरकार पर निर्भर करनेवाले विशिष्ट रूप से निर्माण कार्यरत सर्वहारा वर्ग को तैयार किया जाये तथा पेरिस को विशुद्धतया वैभवशाली नगर में परिणत किया जाये। "ओस्मान" से मेरा तात्पर्य इस अमल से भी है जो अब आम हो चुका है याने हमारे बड़े शहरों में ख़ास तौर पर उनके केन्द्रीय इलाक़ों में मज़दूर वर्ग के मुहल्लों के बीच किसी भी कारण को लेकर – सार्वजनिक स्वच्छता, ख़ूबसूरती, केन्द्रीय इलाक़ों में व्यापारिक केन्द्रों के निर्माण की मांग अथवा रेलवे लाइनें बिछाने, सड़कें बनाने, आदि कारणों को लेकर – दरार डालना। कारण चाहे कितने ही भिन्न-भिन्न क्यों न हों, परिणाम सर्वत्र एक जैसा होता है – सबसे ज़्यादा गन्दी गलियां और रास्ते लुप्त हो जाते हैं और इस ज़बर्दस्त सफलता के लिए पूंजीपति वर्ग बेहद आत्म-श्लाघा करता है परन्तु... ये गन्दी गलियां तथा रास्ते तुरन्त कहीं और, कभी-कभी तो बिल्कुल पास में ही प्रकट हो जाती हैं।

१८४३–१८४४ में मानचेस्टर कैसा था, इसकी तस्वीर मैंने 'इंगलैंड में मज़दूर वर्ग की स्थिति' पुस्तक में प्रस्तुत की थी। तब से नगर के मध्यवर्ती भाग में रेलवे लाइनें बिछायी जा चुकी हैं, नयी सड़कें तैयार हो चुकी हैं तथा बड़ी-बड़ी सार्वजनिक और निजी इमारतों का निर्माण हो चुका है, उपरिलिखित कतिपय सबसे ख़राब इलाक़ों को बिल्कुल साफ़ कर दिया गया है अथवा उन्हें सुधारा गया है, दूसरों में सब कुछ गिराया जा चुका है; इस तथ्य के बावजूद कि सफ़ाई विभाग द्वारा निरीक्षण पहले से अधिक कठोर हो गया है, बहुत-से इलाक़े अब भी पहले जैसी हालत में हैं, यही नहीं, कई तो पहले की अपेक्षा और भी ज़्यादा जीर्णावस्था में हैं। दूसरी ओर, नगर के, जिसकी आबादी अब आधे से ज़्यादा बढ़ गयी है, अत्यधिक विस्तार की बदौलत उन इलाक़ों में जो पहले हवादार तथा साफ़ थे, अब उतना ही अतिनिर्माण हो चुका है, उनमें अब उतनी ही गन्दगी है, वहां उतनी ही घनी आबादी है जितनी पहले नगर के सबसे बदनाम हिस्से में पायी जाती थी। यह रहा मात्र एक उदाहरण–अपनी पुस्तक के पृष्ठ ८० पर तथा अन्यत्र मैंने मेडलाक नदी की घाटी के कुछ मकानों के एक समूह का वर्णन किया था जो लघु आयरलैंड के नाम से मानचेस्टर पर लम्बे अर्से से कलंक का धब्बा बना रहा। लघु आयरलैंड तब से लुप्त हो चुका है और उसकी जगह अब बहुत ऊंची नींव पर बना एक रेलवे स्टेशन है। पूंजीपति वर्ग ने गर्वपूर्वक लघु आयरलैंड की ओर संकेत कर उसके सुखद तथा अन्तिम रूप से उन्मूलन को बहुत बड़ी विजय बताया। अब पिछली गर्मियों में बहुत बड़ी बाढ़ आयी, और जैसा कि आम तौर पर होता है, तटबंधों के कारण हमारे नगरों में साल-दर-साल अधिकाधिक बाढ़ें आती हैं जिनके कारणों को आसानी से समझाया जा सकता है। तब पता चला कि लघु आयरलैंड को क़तई नहीं मिटाया गया। वह तो आक्सफ़ोर्ड रोड के दक्षिण की तरफ़ से उत्तर की तरफ़ केवल स्थानान्तरित हुआ है और वह अब भी फूल-फल रहा है। देखें इस बारे में मानचेस्टर के आमूल परिवर्तनवादी पूंजीपति वर्ग का मुखपत्र मानचेस्टर «*Weekly Times*» अपने २० जुलाई १८७२ के अंक में क्या कहता है–

"पिछले शनिवार को मेडलाक नदी की घाटी के निवासियों पर विपत्ति का जो पहाड़ टूटा, उसका–यह आशा की जानी चाहिए–एक सुपरिणाम निकलेगा यानी जनमत स्वच्छता के तमाम क़ानूनों की उस स्पष्ट उपहासास्पदता की ओर आकृष्ट होगा जिसे वहां हमारे म्युनिसिपल अधिकारियों तथा हमारी म्युनिसिपल

स्वच्छता समिति की आंखों के सामने इतने लम्बे समय से सहन किया जाता रहा है। हमारे दैनिक समाचारपत्र के कल के अंक में एक तीक्ष्णताभरे लेख में चार्ल्स स्ट्रीट तथा ब्रुक स्ट्रीट पर, जहां बाढ़ का पानी पहुंच गया था, कुछ तहख़ानों की शर्मनाक हालत पर प्रकाश डाला गया था—हालांकि उतने ज़ोरदार ढंग से नहीं जितना होना चाहिए था। इस लेख में उल्लिखित अहातों में से एक के विस्तृत निरीक्षण के बल पर हम उनके बारे में सारे बयानों की पुष्टि कर सकते हैं तथा यह भी घोषित कर सकते हैं कि इस अहाते के तहख़ानों को बहुत पहले ही बन्द कर दिया जाना चाहिए था या, यों कहें, कि उन्हें इन्सान के आवास के रूप में कभी सहन नहीं किया जाना चाहिए था। स्क्वायर्ज़ कोर्ट में, जो चार्ल्स स्ट्रीट तथा ब्रुक स्ट्रीट के नुक्कड़ पर है, सात या आठ आवास गृह हैं। ब्रुक स्ट्रीट के सबसे निचले हिस्से तक में, जो रेलवे पुल के नीचे है, राहगीर रोज़ गुज़रते हुए शायद ही कभी यह कल्पना करे कि उसके नीचे इन्सान गुफाओं के अन्दर रहते हैं। ख़ुद अहाते दृष्टिगोचर नहीं होते और वहां केवल वे ही पहुंच सकते हैं जिन्हें ग़रीबी क़ब्रिस्तान जैसे एकान्तवास में शरण ढूंढ़ने के लिए विवश करती है। मेडलाक नदी का साधारणतया निश्चल जल, जो तटबंध से घिरा हुआ है, यदि अपने सामान्य स्तर से ऊपर न भी उठे, तब भी इन घरों का फ़र्श पानी की सतह से मुश्किल से चन्द इंच ऊपर होगा। एक तेज़ झड़ी नालियों में दुर्गंधपूर्ण मतली लानेवाला पानी बहाने तथा कमरों को ऐसी विषैली गैसों से भरने के लिए पर्याप्त होती है जिन्हें हर बाढ़ अपने पीछे स्मृति-चिह्न के रूप में छोड़ जाती है... स्क्वायर्ज़ कोर्ट तो ब्रुक स्ट्रीट के ग़ैरआबाद तहख़ानों से भी नीचे है... सड़क की सतह से बीस फ़ीट नीचे। और शनिवार को दुर्गंधपूर्ण पानी घरों की छतों तक पहुंच गया था। हम यह जानते थे तथा इस कारण आशा करते थे कि ये स्थान ख़ाली होंगे अथवा वहां स्वच्छता समिति के कर्मचारी भरे हुए होंगे जो बदबू भरी दीवारें साफ़ कर रहे होंगे अथवा मकानों के अन्दर रोगाणु नष्ट कर रहे होंगे। इसके बदले हमने एक व्यक्ति देखा जो किसी नाई की तहख़ानानुमा कोठरी के अन्दर... एक किनारे पड़े हुए सड़ांधभरे मल-कचरे को एक ठेले में भर रहा था। नाई ने, जिसकी तहख़ानानुमा कोठरी कमोबेश साफ़ हो चुकी थी, हमें और भी नीचे खड़ी कोठरियों की ओर भेजा जिनके बारे में उसने कहा कि यदि उसे लिखना आता तो वह अख़बारों को सूचित करता और उन्हें बन्द करने की मांग करता। अन्ततः हम स्क्वायर्ज़ कोर्ट में पहुंचे जहां हमने एक सुन्दर तथा हृष्ट-पुष्ट आयरिश औरत को कपड़े धोने में व्यस्त पाया। वह तथा उसका पति, जो रात को चौकीदारी का काम करता है, इस अहाते में ६ साल से रहते आये हैं तथा उनका बड़ा परिवार है... जिस घर को उन्होंने अभी ख़ाली किया, उसमें पानी क़रीब-क़रीब छत तक पहुंच गया था, खिड़कियां टूट गयी थीं तथा फ़र्नीचर पूरी तरह नष्ट हो गया था। कोठरी में रहनेवाले व्यक्ति के अनुसार वह हर दो महीने में कोठरी की सफ़ेदी करके ही असहनीय दुर्गंध को रोका करता था... फिर हमारा

सम्वाददाता ग्रहाते के अन्दरूनी भाग में पहुंचा, वहां उसे तीन कोठरियां मिलीं जिनके पिछवाड़े की दीवालें ऊपर चर्चित कोठरियों के पिछवाड़े की दीवालों से सटी हुई थीं। इन तीन कोठरियों में से दो आबाद थीं। वहां इतनी तेज़ बदबू थी कि स्वस्थ से स्वस्थ आदमी को भी चन्द मिनटों के अन्दर उलटियां आने लगतीं... इस घिनौने नरककुंड के अन्दर सात व्यक्तियों का परिवार रहता था; गुरुवार की रात को (बाढ़ के पहले दिन) वे सब के सब यहां सोये हुए थे। या यों कहना चाहिए कि कोई भी नहीं सोया था, जैसा कि औरत ने फ़ौरन अपनी ग़लती सुधारते हुए कहा, क्योंकि वह तथा उसका पति अधिकांश रात भयंकर दुर्गंध के कारण उलटियां करते रहे। शनिवार को वे बच्चों को वहां से ले जाने के लिए कमर तक पानी के बीच से गुज़रने के लिए मजबूर हुए। औरत की यह भी राय थी कि यह जगह तो सूअरों के रहने लायक़ भी नहीं है परन्तु किराया कम होने की वजह से–डेढ़ शिलिंग प्रति सप्ताह–उसने यह कोठरी ली क्योंकि उसका पति हाल में बीमारी की वजह से काफ़ी दिनों तक बेरोज़गार रहा। इस अहाते और मानों समय से पहले किसी मक़बरे में ठूंसकर भर दिये गये यहां के लोगों को देखकर घोर बेबसी का भाव पैदा होता है। यहां प्रसंगतः हम यह भी परिलक्षित कर देना चाहते हैं कि स्क्वायर्ज़ कोर्ट, जो हो सकता है नितान्त परले सिरे का मामला हो, इस इलाक़े की अन्य बस्तियों की तुलना में विशिष्ट नहीं है जिनके अस्तित्व को हमारी स्वच्छता समिति न्यायोचित नहीं ठहरा सकती। यदि इन जगहों को भविष्य में भी किराये पर उठाया जाने दिया जायेगा तो इसकी पूरी ज़िम्मेवारी समिति पर होगी और आस-पास के पूरे इलाक़े के लिए महामारियों का ख़तरा पैदा हो जायेगा जिनकी गम्भीरता की आगे चर्चा करने की ज़रूरत नहीं है।"

यह इस बात का ज्वलन्त प्रमाण है कि पूंजीपति वर्ग आवास प्रश्न का किस तरह व्यवहार में समाधान करता है। बीमारियों के पनपने की जगहें, कुख्यात कुंड और तहख़ाने, जहां उत्पादन की पूंजीवादी पद्धति हमारे मज़दूरों को निरन्तर रात काटने के लिए ढकेला करती है, मिटाये नहीं जाते, वे तो मात्र... **अन्यत्र स्थानान्तरित कर दिये जाते हैं!** जिस आर्थिक आवश्यकता ने उन्हें एक जगह जन्म दिया था, वही उन्हें दूसरे स्थान में भी जन्म देती है। जब तक उत्पादन की पूंजीवादी पद्धति क़ायम रहेगी, आवास प्रश्न अथवा मज़दूरों की दशा पर असर डालनेवाले किसी भी अन्य सार्वजनिक प्रश्न का समाधान करने की आशा करना मूर्खतापूर्ण है। समाधान तो उत्पादन की पूंजीवादी पद्धति के उन्मूलन में तथा स्वयं मज़दूर वर्ग द्वारा जीवन निर्वाह के तमाम साधनों तथा श्रम के तमाम साधनों के हस्तगतकरण में निहित है।

प्रूदों तथा आवास प्रश्न पर परिशिष्ट

१

«Volksstaat» के अंक ८६ में अ० म्यूलबर्गर ने अपने को उन लेखों के लेखक के रूप में प्रकट कर दिया है जिनकी मैंने इस अख़बार के अंक ५१ तथा आगे के अंकों में आलोचना की थी।* अपने उत्तर में वह मुझपर झिड़कियों की बौछार करते हैं और साथ ही सारे मसलों को इस तरह गड्डमड्ड कर देते हैं कि मुझे ख़्वाहमख़्वाह उन्हें उत्तर देने के लिए मजबूर होना पड़ रहा है। मैं अपने उत्तर में – जो, खेद है, स्वयं म्यूलबर्गर द्वारा विवश किये जाने पर काफ़ी हद तक वैयक्तिक वाद-विवाद के क्षेत्र को ही स्पर्श करेगा – मुख्य मुद्दों को एक बार फिर तथा यदि सम्भव हो तो अधिक स्पष्टतापूर्वक प्रस्तुत कर उसे आम दिलचस्पी का बनाने का प्रयत्न करूंगा भले ही मुझे म्यूलबर्गर से फिर यह सुनने का जोखिम उठाना पड़े कि इस सब में "न तो उनके लिए और न *«Volksstaat»* के अन्य पाठकों के लिए मूलतः कोई नयी बात है।"

म्यूलबर्गर मुझ द्वारा की गयी आलोचना के रूप तथा सारतत्व के बारे में शिक़ायत करते हैं। जहां तक रूप का सम्बन्ध है, यह उत्तर काफ़ी होगा कि उस समय तो मुझे पता ही नहीं था कि सम्बन्धित लेख किसने लिखे हैं। इसलिए लेखक के प्रति किसी प्रकार के व्यक्तिगत "पूर्वाग्रह" का कोई प्रश्न ही नहीं उठता; आवास प्रश्न के लिए लेखों में प्रस्तुत समाधान के प्रति मेरा "पूर्वाग्रह" केवल इसी हद तक था कि मैं प्रूदों के ज़रिए इससे बहुत पहले ही परिचित हो चुका था तथा इस बारे में मेरी राय पक्की हो चुकी थी।

मैं मित्र म्यूलबर्गर से अपनी आलोचना के "लहज़े" के बारे में झगड़ने नहीं जा रहा हूं। जब आन्दोलन में किसी को इतना लम्बा अर्सा हो जाता है, जितना अर्सा मुझे हुआ है तो आक्षेपों के मामले में उसकी खाल ख़ूब मोटी हो जाती है और इसलिए वह आसानी से मान सकता है कि दूसरों के मामले में

---

*देखें प्रस्तुत खण्ड – सं०

भी ऐसा ही होता होगा। श्री म्यूलबर्गर की तुष्टि के लिए मैं इस बार अपने "लहज़े" को उनकी खाल की संवेदनशीलता के अनुरूप ढालने का प्रयत्न करूंगा।

म्यूलबर्गर विशेष कटुता के साथ यह शिकायत करते हैं कि मैंने उन्हें प्रूदोंपंथी बताया और वह विरोध करते हुए कहते हैं कि वह प्रूदोंपंथी नहीं हैं। स्वभावतया मुझे उनकी बात पर विश्वास कर लेना चाहिए था। परन्तु मैं इस बात का प्रमाण प्रस्तुत करूंगा कि उनके चर्चित लेखों में—और मेरा केवल उनसे ही सम्बन्ध था—विशुद्ध प्रूदोंपंथ के अलावा और कुछ है ही नहीं।

परन्तु श्री म्यूलबर्गर के अनुसार मैंने प्रूदों की भी "छिछोरे ढंग से" आलोचना की तथा उनके साथ बहुत अन्याय किया है—

"निम्नपूंजीपति प्रूदों का सिद्धान्त जर्मनी में स्वीकार्य जड़सूत्र बन गया है जिसे वे बहुत-से लोग भी अंगीकार करते हैं जिन्होंने उनकी रचनाओं की एक भी पंक्ति नहीं पढ़ी है।"

जब मैं इस बात पर खेद प्रकट करता हूं कि रोमांस भाषाभाषी मज़दूरों के पास बीस वर्षों तक प्रूदों की कृतियों के अलावा और कोई मानसिक आहार नहीं था, तो म्यूलबर्गर इसके उत्तर में कहते हैं कि जहां तक इन मजदूरों का सम्बन्ध है, "प्रूदों द्वारा निरूपित सिद्धान्त प्रायः सर्वत्र आन्दोलन की जीवन्त आत्मा है"। इससे मैं सहमत नहीं हो सकता। पहली बात तो यह है कि मज़दूर आन्दोलन की "जीवन्त आत्मा" कहीं भी "सिद्धान्तों" में निहित नहीं रही है, अपितु सर्वत्र बड़े पैमाने के उद्योग के विकास में और उसके प्रभावों में—एक ओर पूंजी के संचय तथा संकेन्द्रण तथा दूसरी ओर सर्वहारा के संकेन्द्रण में—निहित रही है। दूसरे, यह कहना सही नहीं है कि रोमांस भाषाभाषी देशों में प्रूदों के तथाकथित "सिद्धान्त" वह निर्णायक भूमिका अदा करते हैं जो म्यूलबर्गर बताते हैं; कि "अराजकतावाद के, Organisation des forces économiques, Liquidation Sociale,* आदि के सिद्धान्त वहां... क्रान्तिकारी आन्दोलन के सच्चे ध्वजवाहक बन गये हैं।" स्पेन तथा इटली की तो बात ही क्या, जहां प्रूदोंपंथी रामबाण ने और भी ख़राब बकूनिनपंथी रूप में कुछ प्रभाव हासिल कर लिया है, अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर आन्दोलन के बारे में जाननेवाले हरेक व्यक्ति के लिए यह एक सुविदित तथ्य है कि फ़्रांस में भी प्रूदोंपंथी संख्या की दृष्टि से एक तरह से अनुल्लेखनीय पंथ हैं जबकि मज़दूरों का विशाल समुदाय Liquidation sociale और

*आर्थिक शक्तियों का संगठन, सामाजिक विघटन।—सं०

Organisation des forces économiques शीर्षक से प्रूदों द्वारा तैयार की गयी सामाजिक सुधार योजना के साथ कोई भी सरोकार रखने से इन्कार कर रहा है। यह दूसरी चीज़ों के साथ कम्यून में भी स्पष्ट हो गया था। यद्यपि प्रूदोंपंथियों को कम्यून में ज़ोरदार प्रतिनिधित्व प्राप्त था, प्रूदों के प्रस्ताव के अनुसार पुराने समाज को विघटित करने अथवा आर्थिक शक्तियों को संगठित करने की ज़रा भी कोशिश नहीं की गयी। इसके विपरीत, कम्यून के लिए यह बहुत बड़े गौरव की बात है कि उसके तमाम आर्थिक पगों की "जीवन्त आत्मा" सिद्धान्तों का कोई सेट नहीं, वरन् सरल व्यावहारिक आवश्यकताएं थीं। इसीलिए ये पग – बेकरियों में रात्रिकालीन श्रम का अन्त, कारख़ानों में नक़द जुर्मानों पर पाबन्दी, तालाबन्द कारख़ानों और वर्कशापों का हस्तगतकरण और उन्हें मज़दूर संघों को सौंपना – प्रूदोंपंथी भावना के कदापि अनुरूप नहीं थे परन्तु वे यक़ीनन जर्मन वैज्ञानिक समाजवाद की भावना के अनुकूल थे। प्रूदोंपंथियों ने जो एकमात्र सामाजिक पग उठाया, वह था फ़्रांसीसी बैंक को हस्तगत **न करने का फ़ैसला** जो अंशतः कम्यून के पतन का कारण बना। इसी तरह जब तथाकथित ब्लांकीपंथियों ने अपने को मात्र राजनीतिक क्रांतिकारियों से एक निश्चित कार्यक्रम वाले समाजवादी मज़दूर दल में परिणत करने का प्रयत्न किया – जैसा कि लन्दन में ब्लांकीपंथी उत्प्रवासियों ने अपने 'इंटरनेशनल तथा क्रान्ति' घोषणापत्र में किया था, – तो उन्होंने समाज की मुक्ति के लिए प्रूदोंपंथी योजना के "सिद्धान्तों" को अंगीकार नहीं किया, बल्कि वर्गों और उनके साथ राज्य के उन्मूलन में संक्रमण के रूप में सर्वहारा और उसके अधिनायकत्व द्वारा राजनीतिक कार्रवाई की आवश्यकता को, ऐसे विचारों को जिन्हें 'कम्युनिस्ट घोषणापत्र'* में तथा तब से कई मौक़ों पर व्यक्त किया जा चुका है, अनुमोदित – और वह भी अक्षरशः – किया। यदि म्यूलबर्गर प्रूदों के प्रति जर्मनों के तिरस्कार से यह निष्कर्ष भी निकालते हैं कि "ठीक पेरिस कम्यून तक" के रोमांस आन्दोलन के प्रति समझदारी का अभाव रहा है तो उन्हें इस अभाव के प्रमाण के रूप में बताना चाहिए कि रोमांस साहित्य की किस कृति में कम्यून को उतनी अच्छी तरह समझा गया है अथवा लगभग उतने ही सही ढंग से वर्णित किया गया है जितने सही ढंग से जर्मन मार्क्स द्वारा लिखित फ़्रांस में गृहयुद्ध के बारे में इंटरनेशनल की जनरल कौंसिल की चिट्ठी में उसे समझा और वर्णित किया गया है।**

---

* देखें प्रस्तुत संस्करण, खण्ड १, भाग १। – **सं०**

** देखें प्रस्तुत संस्करण, खण्ड २, भाग १। – **सं०**

बेल्जियम एकमात्र देश है जहां मज़दूर आन्दोलन सीधे प्रूदोंपंथी "सिद्धान्तों" के प्रभाव में है। और ठीक इस बात के फलस्वरूप बेल्जियन मज़दूर आन्दोलन – यदि हेगेल के शब्दों का इस्तेमाल किया जाये – "शून्य से शून्य के बीच होते हुए शून्य तक चलता है।"[74]

जब मैं इस बात को दुर्भाग्यपूर्ण मानता हूं कि लैटिन देशों के मज़दूरों को बीस वर्षों तक प्रत्यक्षतः या परोक्षतः विशिष्ट रूप से केवल प्रूदों द्वारा मुहैया किया गया बौद्धिक आहार दिया जाता रहा, तो मेरा तात्पर्य सुधार-सम्बन्धी प्रूदोंपंथी नुस्ख़े के सर्वथा कल्पित प्रभुत्व से – जिसे म्यूलबर्गर ने "सिद्धान्तों" का नाम दिया है – नहीं है, अपितु इस तथ्य से है कि विद्यमान समाज की उन द्वारा की गयी आर्थिक आलोचना सर्वथा मिथ्या प्रूदोंपंथी शब्दजाल से दूषित थी तथा उनकी राजनीतिक कार्रवाइयों को प्रूदोंपंथी प्रभाव ने गड़बड़ी में डाल दिया था। क्या "लैटिन देशों के प्रूदोंकृत मज़दूर" जर्मन मज़दूरों की तुलना में, जिनकी जर्मन वैज्ञानिक समाजवाद के बारे में समझ अपने प्रूदों के बारे में लैटिनों की समझ से निस्सन्देह असीम रूप से अधिक है, "क्रान्ति के अधिक साथ होते हैं", इस प्रश्न का उत्तर हम तभी दे सकेंगे जब हमें मालूम हो जायेगा कि "क्रान्ति **के साथ**" होने का वस्तुतः अर्थ क्या है। हमने लोगों के बारे में सुना है कि वे "ईसाई धर्म के साथ, सच्ची आस्था के साथ, ईश्वर की अनुकम्पा के साथ" रहते हैं, आदि। परन्तु क्रान्ति "के साथ", प्रचण्डतम आन्दोलन "के साथ" रहना! तो क्या क्रान्ति कोई "जड़सूत्रवादी धर्म" है जिसमें विश्वास करना ही पड़ता है?

आगे म्यूलबर्गर मुझे इस बात के लिए झिड़कते हैं कि मैंने उनके लेखों के सुस्पष्ट शब्दों की अवहेलना करते हुए यह कहा कि उन्होंने आवास प्रश्न को विशिष्ट रूप से मज़दूर वर्ग का प्रश्न घोषित किया।

इस बार म्यूलबर्गर ने वस्तुतः सही बात कही है। मैंने सम्बन्धित अंश को नज़रन्दाज़ कर दिया था। इसे नज़रन्दाज़ करना मेरा अनुत्तरदायित्वपूर्ण कार्य था क्योंकि यह तो उनके तर्क की पूरी प्रवृत्ति का सबसे बड़ा अभिलाक्षणिक गुण है। म्यूलबर्गर सीधे-सादे शब्दों में कहते हैं –

"चूंकि हम पर अक्सर तथा कई बार **वर्ग नीति** का अनुसरण करने तथा **वर्ग प्रभुत्व**, आदि के लिए प्रयत्नशील होने का **बेहूदा** आरोप लगाया जाता है, हम सबसे पहले तथा सुनिश्चित रूप से इस बात पर ज़ोर देना चाहते हैं कि

आवास प्रश्न मात्र ऐसा प्रश्न नहीं है जो विशिष्टतया सर्वहारा पर असर डालता हो, **इसके विपरीत** वह तो **काफ़ी हद तक ख़ुद मध्यम वर्ग**, छोटे व्यवसायियों, निम्नपूंजीपति वर्ग तथा पूरी नौकरशाही से सरोकार रखता है ... आवास प्रश्न सामाजिक सुधार का ठीक वह बिन्दु है जो किसी अन्य की तुलना में एक ओर **सर्वहारा के हितों** तथा दूसरी ओर समाज के **ख़ुद मध्यम वर्गों के हितों की निरपेक्ष आन्तरिक एकरूपता** अभिव्यक्त करता प्रतीत होता है। किराये के मकानों की यंत्रणादायी बेड़ियों से मध्यम वर्ग सर्वहारा वर्ग जितना ही और **शायद उससे भी ज्यादा** पीड़ित हैं ... आज मध्यम वर्गों को इस प्रश्न का सामना करना पड़ रहा है कि क्या वे ... तरुण, सशक्त तथा उत्साही मज़दूर पार्टी के साथ संघबद्ध होकर समाज के रूपान्तरण की, ऐसे रूपान्तरण की प्रक्रिया में, **जिसके वरदानों का सर्वोपरि वे उपभोग करेंगे**, भाग लेने के लिए ... पर्याप्त शक्ति संचित कर सकते हैं।"

इस तरह मित्र म्यूलबर्गर यहां निम्नलिखित बातें सिद्ध करते हैं –

१. "हम" किसी "वर्ग नीति" का अनुसरण नहीं करते और "वर्ग प्रभुत्व" के लिए प्रयत्नशील नहीं हैं। परन्तु जर्मन सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी, **इसीलिए** कि वह **मजदूर पार्टी** है, लाज़िमी तौर पर "वर्ग नीति" का, मज़दूर वर्ग की नीति का अनुसरण करती है। चूंकि हर राजनीतिक पार्टी राज्य में अपने शासन की स्थापना करना चाहती है, इसलिए जर्मन सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी भी लाज़िमी तौर पर **अपना** शासन मज़दूर वर्ग का शासन – इसलिए "वर्ग प्रभुत्व" – स्थापित करना चाहती है। यही नहीं, अंग्रेज़ चार्टिस्टों से लेकर अब तक **हर** वास्तविक सर्वहारा पार्टी वर्ग नीति को, स्वतंत्र राजनीतिक पार्टी के रूप में सर्वहारा के संगठन को अपने संघर्ष की प्रमुख शर्त के रूप में तथा सर्वहारा के अधिनायकत्व को संघर्ष के तात्कालिक ध्येय के रूप में प्रस्तुत करती है। इसे "बेहूदा" बताकर म्यूलबर्गर सर्वहारा आन्दोलन की परिधि से बाहर आ जाते हैं तथा निम्न-पूंजीवादी समाजवाद के खेमे में जा पहुंचते हैं।

२. आवास प्रश्न का लाभ यह है कि वह विशिष्टतया मज़दूर वर्ग का प्रश्न नहीं है अपितु ऐसा प्रश्न है जिसका "काफ़ी हद तक निम्नपूंजीपति वर्ग से सरोकार है", क्योंकि आवास की कमी से "ख़ुद मध्यम वर्ग सर्वहारा वर्ग जितना ही और शायद उससे भी ज़्यादा पीड़ित हैं"। यदि कोई यह ऐलान करता है कि निम्नपूंजीपति वर्ग "शायद सर्वहारा से भी ज़्यादा" तकलीफ़ – भले ही एक मामले में – उठाता है तो वह यह शिकायत नहीं कर सकता कि उसकी

निम्न-पूंजीवादी समाजवादियों में गिनती की जा रही है। तो क्या म्यूलबर्गर के पास शिकायत करने का कोई आधार है जब मैं यह कहता हूं कि –

"अधिकतर इसी तरह की तकलीफ़ों को लेकर, जिन्हें मज़दूर वर्ग अन्य वर्गों और ख़ास तौर पर निम्नपूंजीपति वर्ग के साथ झेलता है, निम्न-पूंजीवादी समाजवाद, जिसके प्रूदों अनुयायी हैं, अपने को व्यस्त रखना पसन्द करते हैं। इसलिए यह कदापि संयोग की बात नहीं है कि हमारे जर्मन प्रूदोंपंथी मुख्यतया आवास प्रश्न को अपना लेते हैं जो कदापि – जैसा कि हम देख चुके हैं – विशिष्टतया मज़दूर प्रश्न नहीं है।"*

३. "समाज के ख़ुद मध्यम वर्गों" के हितों तथा सर्वहारा के हितों के बीच "निरपेक्ष आन्तरिक एकरूपता" है। और सर्वहारा वर्ग नहीं, वरन् ख़ुद ये मध्यम वर्ग ही समाज के रूपान्तरण की भावी प्रक्रिया के "वरदानों का सर्वोपरि उपभोग करेंगे"।

इसलिए मज़दूर "सर्वोपरि" निम्नपूंजीपति वर्ग के हितार्थ भावी सामाजिक क्रान्ति करने जा रहे हैं। और इतना ही नहीं, निम्नपूंजीपति वर्ग तथा सर्वहारा वर्ग के हितों में "निरपेक्ष आन्तरिक एकरूपता" है। यदि निम्नपूंजीपति वर्ग के हितों की मज़दूरों के हितों से आन्तरिक एकरूपता है तो मज़दूरों के हितों की निम्नपूंजीपति वर्ग के हितों से आन्तरिक एकरूपता है। इस तरह निम्न-पूंजीवादी दृष्टिकोण को आन्दोलन में विद्यमान रहने का उतना ही अधिकार है जितना सर्वहारा वर्ग के दृष्टिकोण को है। और अधिकार की समानता का ठीक यही दावा निम्न-पूंजीवादी समाजवाद के नाम से ज्ञात है।

इसलिए जब म्यूलबर्गर अपनी पुस्तिका के पृष्ठ २५ पर "छोटे उद्योग का समाज के वास्तविक **अवलम्ब**" के रूप में गुणगान करते हैं "क्योंकि अपने स्वरूप के कारण वह अपने अन्दर तीन तत्त्वों को, श्रम – अधिग्रहण – स्वामित्व को, मिलाता है, क्योंकि इन तत्त्वों को मिलाते हुए व्यक्ति के विकास की क्षमता के लिए कोई सीमा निर्धारित नहीं करता" और जब वह विशेष रूप से आधुनिक उद्योग की इसलिए भर्त्सना करते हैं कि वह सामान्य मानव के इस संवर्द्धन-स्थल को नष्ट कर देता है और "एक प्रजननक्षम सशक्त **वर्ग** को लोगों के एक अचेतन **ढेर** में रूपान्तरित करता है जिसे यह पता ही नहीं होता कि वह अपनी चिन्ताभरी दृष्टि किस ओर केन्द्रित करे", तो उनका यह कथन

* देखें प्रस्तुत खण्ड। – सं०

उनके दृष्टिकोण से पूरी तरह मेल खाता है। इस तरह म्यूलबर्गर के लिए निम्नपूंजीपति आदर्श मानव है तथा म्यूलबर्गर के लिए लघु उद्योग उत्पादन की आदर्श पद्धति है। इसलिए जब मैंने उन्हें निम्न-पूंजीवादी समाजवादियों की कोटि में रखा तो क्या मैंने उन्हें बदनाम किया?

चूंकि म्यूलबर्गर प्रूदों के सम्बन्ध में सारी ज़िम्मेवारी से इन्कार करते हैं, इसलिए यहां इस बात का आगे विवेचन करना निरर्थक होगा कि सुधार की प्रूदों की योजनाओं का लक्ष्य समाज के तमाम सदस्यों को निम्नपूंजीपतियों तथा छोटे किसानों में रूपान्तरित करना है। इसी तरह निम्नपूंजीपतियों तथा मजदूरों के हितों की कथित एकरूपता की चर्चा करना भी अनावश्यक होगा। जो कुछ आवश्यक है, वह 'कम्युनिस्ट घोषणापत्र' में पहले से मौजूद है। (लाइपज़िग संस्करण, १८७२, पृष्ठ १२ तथा २१)*

इसलिए हमारे विवेचन का फल यह है कि "निम्नपूंजीपति प्रूदोंसम्बन्धी मिथक" के साथ-साथ निम्नपूंजीपति म्यूलबर्गर सम्बन्धी असलियत भी प्रकट होती है।

२

अब हम एक मुख्य मुद्दे की ओर पहुंचते हैं। मैंने म्यूलबर्गर पर आरोप लगाया था कि उनके लेखों ने आर्थिक सम्बन्धों को क़ानूनी भाषा में अनूदित कर उनके साथ प्रूदोंपंथी ढंग से जालसाज़ी की है। इसके एक उदाहरण के रूप में मैंने म्यूलबर्गर का निम्नलिखित वक्तव्य चुना था–

"मकान एक बार तैयार हो जाने पर सामाजिक श्रम के एक निश्चित अंश पर **स्थायी क़ानूनी हक़** का काम देता है हालांकि मकान के वास्तविक मूल्य से काफ़ी ज़्यादा मालिक को बहुत पहले ही किराये के रूप में भुगतान किया जा चुका होता है। तो **होता यह है** कि जो मकान, उदाहरण के लिए, पचास वर्ष पहले निर्मित हुआ था, वह अपने किराये के रूप में मूल लागत से दुगुना, तिगुना, पांचगुना, दसगुना या इससे भी ज़्यादा चुका देता है।"

म्यूलबर्गर को अब शिकायत है कि–

---

*देखें प्रस्तुत संस्करण, खण्ड १, भाग २। – सं०

"यह **सादा, संजीदा तथ्य-कथन** एंगेल्स को मुझे इस आशय का ज्ञान देने का आधार प्रदान करता है कि मुझे यह समझाना चाहिए था कि मकान कैसे 'क़ानूनी हक़' बन जाता है—यहाँ मेरे कार्य की परिधि के बिल्कुल बाहर की चीज़ थी ... **वर्णन** एक चीज और **स्पष्टीकरण** दूसरी चीज़ है। जब मैं प्रूदों के साथ यह कहता हूं कि समाज का आर्थिक जीवन **अधिकार की अवधारणा** से ओतप्रोत होना चाहिए तो मैं समकालीन समाज का एक ऐसे समाज के रूप में वर्णन कर रहा हूं जिसमें यह सच है कि अधिकार की प्रत्येक अवधारणा लुप्त नहीं है परन्तु जिसमें **क्रान्ति के अधिकार की अवधारणा** लुप्त है, यह एक ऐसा तथ्य है जिसे स्वयं एंगेल्स स्वीकार करेंगे।"

चलिए, फ़िलहाल एक बार तैयार हो गये मकान तक ही अपने को सीमित रखा जाये। मकान एक बार बन चुकने पर अपने निर्माता को किराये के रूप में ज़मीन का किराया, मरम्मत की लागत, लगायी गयी निर्माण पूंजी पर ब्याज साथ ही उस पर हासिल मुनाफ़ा भी देता है; परिस्थितियों के अनुसार क्रमिक रूप से अदा किया जानेवाला किराया मूल लागत-क़ीमत का दुगुना, तिगुना, पांच-गुना या दसगुना तक हो सकता है। तो, मित्र म्यूलबर्गर, यह है "सादा, संजीदा तथ्य-कथन", एक **आर्थिक** तथ्य; और यदि हम यह जानना चाहें कि यह "किस तरह होता है" कि यह तथ्य विद्यमान है, तो हमें आर्थिक क्षेत्र में जांच करनी होगी। इसलिए आइये, इस तथ्य की ओर ज़रा और बारीक़ी से नज़र डालें ताकि कोई बच्चा तक इसे आगे ग़लत न समझ बैठे। जैसा कि सुविदित है, माल की बिक्री इस तथ्य में निहित है कि उसका मालिक उसके उपभोग मूल्य का त्याग कर देता है तथा उसका विनिमय मूल्य पाता है। मालों के उपभोग मूल्य अन्य बातों के अलावा इस बात में भी एक दूसरे से भिन्न होते हैं कि उनके उपभोग के लिए आवश्यक कालों में भी भिन्नता होती है। रोटी की एक दिन में खपत हो जाती है, पतलून साल भर चलती है और मकान, कहें, सौ साल तक टिका रहता है। इसलिए टिकाऊ मालों के मामले में उनके उपभोग मूल्य को थोड़ा-थोड़ा करके और हर बार एक निश्चित अवधि के लिए बेचने की, अर्थात् **किराये पर उठाने** की सम्भावना पैदा होती है। इसलिए थोड़ा-थोड़ा करके होनेवाली बिक्री से विनिमय मूल्य भी क्रमिक रूप से वसूल होता है। अग्रदत्त पूंजी और उससे प्राप्त होनेवाले मुनाफ़े की तत्काल अदायगी की मांग छोड़ने के बदले विक्रेता बढ़ी हुई क़ीमत, ब्याज प्राप्त करता है जिसकी दर मनमाने ढंग से कदापि निर्धारित नहीं होती अपितु राजनीतिक अर्थशास्त्र के नियमों द्वारा

निर्धारित होती है। सौ वर्षों के अन्त में मकान का पूरा उपयोग हो चुका होता है, वह जर्जर हो चुका होता है तथा आगे रहने लायक़ नहीं रह जाता। यदि चुकाये जा चुके कुल किराये में से १) ज़मीन के किराये को सम्बन्धित अवधि में उसमें हुई किसी भी वृद्धि समेत तथा २) चालू मरम्मतों पर हुए ख़र्चों को काट लें तो हम देखेंगे कि शेष रह जानेवाली चीज़ों में औसतन ये होती हैं— १) मकान पर शुरू में लगायी गयी निर्माण पूंजी, २) इस पर मुनाफ़ा तथा ३) क्रमिक रूप से चुकायी जा रही पूंजी तथा मुनाफ़े पर ब्याज। यह सच है कि इस अवधि के अन्त में किरायेदार के पास मकान नहीं होता परन्तु मकान-मालिक के पास भी तो मकान नहीं होता। मकान-मालिक के पास केवल ज़मीन का टुकड़ा (बशर्ते वह उसका हो) और उस पर मौजूद निर्माण सामग्री रह जाती है जिसका अब वैसे मकान का रूप नहीं रह गया है। हो सकता है कि इस बीच मकान से इतनी राशि वसूल कर ली गयी हो जो "मूल लागत का पांचगुना या दसगुना" है, परन्तु हम देखेंगे कि उसका एकमात्र कारण ज़मीन के किराये में वृद्धि है। यह बात लन्दन जैसे शहरों में किसी से छुपी नहीं है जहां ज़मीन का मालिक तथा मकान का मालिक अधिकांश मामलों में दो पृथक-पृथक व्यक्ति होते हैं। किरायों में इतनी ज़बर्दस्त वृद्धि तेज़ी से बढ़ते हुए शहरों में होती है, गांवों में नहीं, जहां निर्माण स्थलियों का ज़मीन का किराया व्यवहारतः अपरिवर्तित रहता है। यह सुविदित है कि ज़मीन के किराये में वृद्धि को छोड़कर मकानों के किराये से मकान-मालिक को लगायी गयी पूंजी पर (मुनाफ़ा समेत) औसतन सात प्रतिशत से ज़्यादा नहीं मिलता और इस राशि में से मरम्मत का ख़र्चा, आदि उठाना पड़ता है। संक्षेप में किराया-क़रार माल का सर्वथा साधारण लेन-देन है जिसमें सिद्धान्ततः मज़दूर की दिलचस्पी माल के किसी भी अन्य लेन-देन की तुलना में—सिवाय उसके जो श्रम शक्ति के क्रय-विक्रय से सम्बन्धित होता है—न कम और न ज़्यादा होती है; व्यवहारतः किराया-क़रार मज़दूर के सामने पूंजीवादी ठगी के उन हज़ारों दूसरे रूपों में से एक है जिनके बारे में मैं एक पृथक प्रकाशन के पृष्ठ ४ पर कह चुका हूं।* जैसा कि मैंने उसमें सिद्ध किया था, इस रूप का भी आर्थिक नियमन होता है।

दूसरी ओर, म्यूलबर्गर किराया-क़रार को विशुद्ध "मनमानेपन" के अलावा और कुछ मानते ही नहीं (उनकी कृति का पृष्ठ १९), लेकिन जब मैं यह सिद्ध

---

*देखें प्रस्तुत संस्करण, खण्ड १, भाग २। —सं०

करता हूं कि बात इसके बिल्कुल उलट है तो वह शिकायत करते हैं कि मैं उन्हें "केवल वे बातें" बता रहा हूं "जिन्हें, खेद है, वह पहले से ही जानते हैं।"

परन्तु मकान-किराये की सारी जांच-पड़तालें भी हमें मकानों के किराये के ख़ात्मे को उस आकांक्षा में परिणत करने में सक्षम नहीं बना सकतीं जो "क्रान्तिकारी विचार के गर्भ में अब तक जन्मे सबसे फलप्रद तथा सबसे भव्य आकांक्षाओं में से एक है।" इसे पूरा कर सकने के लिए यह जरूरी है कि हम इस सादे तथ्य को संजीदे राजनीतिक अर्थशास्त्र के क्षेत्र से विधिशास्त्र के कहीं व्यापक विचारधारात्मक क्षेत्र में ले जायें। मकान-किराया "मकान पर स्थायी क़ानूनी हक़ का काम करता है" और "**इस तरह होता यह है**" कि मकान का मूल्य किराये के रूप में दुगुना, तिगुना, पांचगुना या दसगुना ज्यादा अदा किया जा सकता है। "क़ानूनी हक़" हमें यह पता लगाने में रत्तीभर मदद नहीं देता कि यह वस्तुतः "**किस तरह होता है**", और इसलिए मैंने कहा था कि मकान कैसे क़ानूनी हक़ बनता है, इसकी जांच करके ही म्यूलबर्गर यह पता लगा सकते थे कि "यह **किस तरह** होता है"। जैसा कि मैंने किया था, इसका पता हमें तभी चलता है जब हम मकान-किराये के **आर्थिक** स्वरूप की जांच करें, बजाय इसके कि उस क़ानूनी परिभाषा पर झगड़ा करें जिसके अन्तर्गत सत्ताधारी वर्ग इसकी इजाज़त देता है। जो कोई किराये के ख़ात्मे के लिए आर्थिक पग उठाने का इरादा करता है, उसे मकान-किराये के बारे में इससे कुछ ज्यादा जानकारी होनी चाहिए कि यह "वह नज़राना है जो किरायदार पूंजी के स्थायी हक़ को देता है।" इसके उत्तर में म्यूलबर्गर फ़रमाते हैं—"वर्णन एक चीज़ है, स्पष्टीकरण दूसरी चीज़।"

इस तरह हमने मकान को, हालांकि वह स्थायी कदापि नहीं होता, मकान किराये पर स्थायी क़ानूनी हक़ में परिणत कर डाला है। यह चाहे "किसी तरह हो", हम पाते हैं कि इस क़ानूनी हक़ के बल पर मकान अपनी मूल लागत का किराये के रूप में कई गुना लौटा देता है। क़ानूनी भाषा में अनुवाद की बदौलत ख़ुशक़िस्मती से हम अर्थशास्त्र के क्षेत्र से इतनी दूर हो जाते हैं कि हमें इस घटना-व्यापार के अलावा और कुछ नहीं दिखायी देता कि किराये की राशि धीरे-धीरे मकान की लागत का कई गुना लौटा देती है। चूंकि हम क़ानूनी भाषा में बात कर रहे और सोच रहे हैं, हम इस घटना-व्यापार के लिए अधिकार तथा न्याय का पैमाना इस्तेमाल करते हैं और पाते हैं कि यह **अन्यायपूर्ण** है, कि यह "क्रान्ति के अधिकार की अवधारणा" से—इसका चाहे कुछ भी मतलब

हो—मेल नहीं खाता और इसलिए क़ानूनी हक़ बेकार है। हम आगे यह पाते हैं कि यही बात ब्याज देनेवाली पूंजी और पट्टे पर दी जानेवाली कृषि भूमि पर भी लागू होती है; और अब हमें स्वामित्व के इन वर्गों को दूसरे वर्गों से पृथक करने और उनके साथ अलग से पेश आने का बहाना मिल जाता है। इसके फलस्वरूप ये मांगें की जाती हैं—१) मालिक को क़रार भंग करने का नोटिस देने के अधिकार तथा अपनी सम्पत्ति वापस मांगने के अधिकार से वंचित करना; २) पट्टेदार, देनदार या किरायेदार को वह वस्तु मुफ़्त उपयोग के लिए देना जो उसे हस्तान्तरित की जाये परन्तु उसकी न हो; ३) मालिक को बिना ब्याज के लम्बी अवधि के दौरान अदायगी और इसके साथ हम इस क्षेत्र में प्रूदोंपंथी "सिद्धान्तों" को निबटा देते हैं। यही प्रूदों का "सामाजिक विघटन" है।

प्रसंगत: यह सुस्पष्ट है कि यह पूरी सुधार योजना प्राय: विशिष्ट रूप से निम्नपूंजीपतियों तथा छोटे किसानों के लिए इस अर्थ में लाभप्रद है कि यह निम्नपूंजीपतियों तथा किसानों की उनकी स्थिति को **मज़बूत बनाती है**। इस प्रकार "निम्नपूंजीपति प्रूदों", जो म्यूलबर्गर के अनुसार एक मिथकीय आकृति हैं, यहां सर्वथा मूर्त्त ऐतिहासिक अस्तित्व धारण कर लेते हैं।

म्यूलबर्गर आगे कहते हैं—

"जब मैं प्रूदों के साथ यह कहता हूं कि समाज का आर्थिक जीवन **अधिकार की अवधारणा** से ओतप्रोत होना चाहिए तो मैं समकालीन समाज का एक ऐसे समाज के रूप में **वर्णन कर रहा हूं** जिसमें यह सच है कि अधिकार की प्रत्येक अवधारणा लुप्त नहीं है परन्तु जिसमें क्रान्ति के अधिकार की अवधारणा लुप्त है, यह एक ऐसा तथ्य है जिसे स्वयं एंगेल्स स्वीकार करेंगे।"

दुर्भाग्यवश, मैं म्यूलबर्गर के लिए यह करने की स्थिति में नहीं हूं। म्यूलबर्गर मांग करते हैं कि समाज अधिकार की अवधारणा से ओतप्रोत **होना चाहिए** और इसे वह वर्णन बताते हैं। यदि अदालत क़र्ज़ चुकाने की मांग करने का समन लिये हुए अपना कारिन्दा भेजती है तो म्यूलबर्गर के अनुसार अदालत मेरा एक ऐसे व्यक्ति के रूप में **वर्णन** करने के अलावा और कुछ नहीं करती जो क़र्ज़ा नहीं चुकाता! वर्णन एक चीज़ है तथा मांग दूसरी चीज़ है। ठीक इसी चीज़ में जर्मन वैज्ञानिक समाजवाद तथा प्रूदों के बीच मूल अन्तर है। आर्थिक सम्बन्ध जिस रूप में हैं तथा जिस रूप में विकसित हो रहे हैं, हम उसी रूप में उनका

वर्णन करते हैं—और म्यूलबर्गर के कहने के बावजूद किसी वस्तु का वास्तविक वर्णन उस वस्तु का साथ ही स्पष्टीकरण भी होता है—तथा हम ठीक-ठीक आर्थिक दृष्टि से इस बात का प्रमाण पेश करते हैं कि उनका यह विकास साथ ही सामाजिक क्रान्ति के तत्त्वों का भी विकास है—यह एक ओर उस वर्ग, सर्वहारा वर्ग का विकास है जिसके जीवन की अवस्थाएं उसे लाज़िमी तौर पर सामाजिक क्रान्ति की ओर धकेलती हैं तथा दूसरी ओर यह उत्पादक शक्तियों का विकास है जो पूंजीवादी समाज के ढांचे के अन्दर आगे न समा सकने के कारण उसे लाज़िमी तौर पर तोड़ देंगी तथा जो साथ ही स्वयं सामाजिक प्रगति के हित में वर्ग-विभेद को सदा-सर्वदा के लिए मिटाने के साधन प्रस्तुत करती हैं। इसके विपरीत प्रूदों समकालीन समाज से मांग करते हैं कि वह अपने आर्थिक विकास के नियमों के अनुसार नहीं, वरन् न्याय के निर्देशों के अनुसार अपने को बदले (अधिकार की **अवधारणा** उनकी नहीं, वरन् म्यूलबर्गर की है)। जहां हम सिद्ध कर देते हैं, वहां प्रूदों तथा उनके साथ म्यूलबर्गर **प्रवचन** तथा विलाप करते हैं।

"क्रांति के अधिकार की अवधारणा" क्या चीज़ है, यह समझने में मैं बिल्कुल असमर्थ हूं। यह सच है कि प्रूदों "क्रान्ति" को एक तरह की देवी, अपने "न्याय" का साकार रूप तथा कार्यान्वियनकर्त्री बना देते हैं; ऐसा करते हुए वह १७८९–१७९४ की पूंजीवादी क्रान्ति को आगामी सर्वहारा क्रान्ति के साथ गड्डमड्ड करने की विचित्र ग़लती कर बैठते हैं। ऐसा वह लगभग अपनी सभी कृतियों में करते हैं, ख़ास तौर पर १८४८ के बाद से। मैं उदाहरण के रूप में केवल एक को, अर्थात् 'क्रान्ति का आम विचार' नामक कृति को (१८६८, पृष्ठ ३९–४०) उद्धृत करने जा रहा हूं। लेकिन म्यूलबर्गर चूंकि प्रूदों के सम्बन्ध में सारी ज़िम्मेवारी से इन्कार करते हैं, मुझे इस बात की इजाज़त नहीं है कि "क्रान्ति के अधिकार की अवधारणा" का स्पष्टीकरण करने के लिए प्रूदों की ओर नज़र घुमाऊं, इसलिए मुझे घोर अन्धकार में ही रहना होगा।

म्यूलबर्गर आगे कहते हैं—

"परन्तु न प्रूदों और न मैं विद्यमान अन्यायपूर्ण अवस्थाओं के **स्पष्टीकरण** के लिए 'शाश्वत न्याय' की दुहाई देते हैं और न—जैसा कि एंगेल्स मेरे बारे में कहते हैं—इस न्याय की दुहाई देकर इन अवस्थाओं में सुधार की अपेक्षा करते हैं।"

म्यूलबर्गर, ज़ाहिर है, यह सोच रहे हैं कि "जर्मनी में प्रूदों सामान्यतया अज्ञात हैं।" प्रूदों अपनी तमाम कृतियों में तमाम सामाजिक, क़ानूनी, राजनीतिक तथा धार्मिक प्रस्थापनाओं को "न्याय" के पैमाने से नापते हैं और उन्हें यह देखकर ठुकराते या स्वीकार करते हैं कि वे उसके अनुरूप हैं या नहीं जिसे वह "न्याय" कहते हैं। 'आर्थिक अन्तर्विरोधों' में इस न्याय को "शाश्वत न्याय", «justice éternelle» कहते हैं। आगे चलकर शाश्वतता के बारे में और कुछ नहीं कहा जाता परन्तु विचार सारतः क़ायम रहता है। उदाहरण के लिए, उनकी कृति 'क्रान्ति तथा धर्म में न्याय' (१८५८) में निम्नलिखित अंश पूरे तीन खंडों में दिये गये प्रवचन का विषय है (खण्ड १, पृष्ठ ४२) –

"वह कौनसा मूल सिद्धान्त, समाजों का आंगिक, नियमनकारी, सार्वभौम मूल सिद्धान्त है, जो दूसरे सब को अपने अधीन करता है, जो तमाम विद्रोही तत्वों पर शासन करता है, उनकी रक्षा करता है, उन्हें दबाता है, सज़ा देता है तथा आवश्यकता पड़ने पर उन्हें कुचलता है? क्या है यह – धर्म, आदर्श या **हित**?... मेरी राय में यह सिद्धान्त **न्याय** है। न्याय क्या है? **यह तो मानवता का मूल सार है।** विश्व की उत्पत्ति से लेकर अब तक यह क्या रहा है? कुछ भी नहीं। उसे क्या होना चाहिए? सब कुछ।"

न्याय, जो मानवता का मूल सार है, यदि **शाश्वत** न्याय नहीं है तो फिर क्या है? न्याय, जो समाजों का आंगिक, नियमनकारी, सार्वभौम मूल सिद्धान्त है, जो यह सब होते हुए भी अब तक कुछ भी नहीं रहा है, परन्तु जिसे सब कुछ होना चाहिए – यदि यह वह पैमाना नहीं है जिससे सारे मानवीय मामलों को नापा जाना चाहिए, यदि यह वह सबसे बड़ा पंच नहीं है जिससे सारे टकरावों में अपील की जानी चाहिए तो और क्या है? और क्या मैंने इसके अलावा और कोई दावा किया था कि प्रूदों राजनीतिक अर्थशास्त्र के बारे में अपने अज्ञान तथा बेबसी को छुपाते हुए तमाम आर्थिक सम्बन्धों को आर्थिक नियमों के पैमाने से नहीं, वरन् इस चीज़ से नापते हैं कि वे इस शाश्वत न्याय की उनकी अवधारणा से मेल खाते हैं या नहीं। और म्यूलबर्गर तथा प्रूदों में तब क्या अन्तर रह जाता है जब म्यूलबर्गर मांग करते हैं कि "आधुनिक समाज के जीवन में तमाम परिवर्तन... **अधिकार की अवधारणा** से ओतप्रोत होने चाहिए, अर्थात् उन्हें सर्वत्र **न्याय की कड़ी अपेक्षाओं** के अनुसार सम्पन्न किया जाना चाहिए"? तो क्या मुझे पढ़ना नहीं आता या म्यूलबर्गर को लिखना नहीं आता?

म्यूलबर्गर आगे कहते हैं –

"प्रूदों भी मार्क्स और एंगेल्स की ही तरह यह जानते हैं कि मानव समाज में न्यायिक नहीं, वरन् आर्थिक सम्बन्ध वास्तविक प्रेरक शक्ति हैं; वह यह भी जानते हैं कि किसी जनगण के अधिकार की अवधारणाएं किसी सम्बन्धित समय पर आर्थिक सम्बन्धों की, विशेष रूप से उत्पादन सम्बन्धों की अभिव्यक्ति, छाप, उपज हैं ... संक्षेप में प्रूदों के लिए अधिकार ऐतिहासिक रूप से उत्पन्न होनेवाली आर्थिक उपज है।"

यदि प्रूदों यह सब (मैं म्यूलबर्गर द्वारा प्रयुक्त अस्पष्ट अभिव्यंजनाओं को नज़रअन्दाज़ करने तथा उनके नेक इरादों को मानने के लिए तैयार हूं), "मार्क्स तथा एंगेल्स की ही तरह यह जानते हैं", तो फिर झगड़े के लिए रह क्या गया है? मुसीबत यह है कि प्रूदों के ज्ञान के सम्बन्ध में स्थिति कुछ भिन्न है। किसी सम्बन्धित समाज के आर्थिक सम्बन्ध अपने को सर्वप्रथम **हितों** के रूप में प्रस्तुत करते हैं। परन्तु प्रूदों अपनी अभी-अभी उद्धृत रचना में घुमा-फिरा कर यह कहते हैं कि "समाजों का आंगिक, नियमनकारी, सार्वभौम मूल सिद्धान्त, जो दूसरे सब को अपने अधीन करता है", **हित** नहीं, वरन् **न्याय** है। और इसे वह अपनी तमाम कृतियों के तमाम निर्णायक अंशों में दुहराते हैं। यह सब म्यूलबर्गर को यह कहने से नहीं रोकता—

"... आर्थिक अधिकार का विचार, जिस रूप में प्रूदों ने उसे सर्वोपरि 'युद्ध तथा शान्ति' में सर्वाधिक गहनतापूर्वक विकसित किया है, लासाल के मूल विचार से पूरी तरह मेल खाता है जिसे उन्होंने 'हस्तगत अधिकारों की प्रणाली' के लिए अपनी प्रस्तावना में इतने सुन्दर ढंग से व्यक्त किया है।"

'युद्ध तथा शान्ति' प्रूदों की इतनी सारी अधकचरी कृतियों में शायद सबसे ज्यादा अधकचरी है। परन्तु मुझे यह उम्मीद नहीं थी कि इसे इतिहास की जर्मन भौतिकवादी अवधारणा के बारे में, जो समस्त ऐतिहासिक घटनाओं तथा विचारों, सारी राजनीति, दर्शन तथा धर्म पर सम्बन्धित ऐतिहासिक अवधि के जीवन की भौतिक, आर्थिक अवस्थाओं के दृष्टिकोण से प्रकाश डालती है, प्रूदों की कथित समझदारी के रूप में प्रस्तुत किया जायेगा। पुस्तक में इतनी कम भौतिकवादिता है कि वह **स्रष्टा** को मदद के लिए बुलाये बिना युद्ध के बारे में अपनी अवधारणा की रचना तक नहीं कर सकती—

"परन्तु स्रष्टा के, जिसने हमारे लिए जीवन का यह रूप चुना, अपने ही उद्देश्य थे।" (खंड २, पृष्ठ १००, १८६९ का संस्करण)

पुस्तक कैसे ऐतिहासिक ज्ञान पर आधारित है, उसका पता इस तथ्य से चल जाता है कि यह स्वर्ण युग के अस्तित्व में विश्वास करती है—

"आरम्भ में, जब मानवजाति पृथ्वी की सतह पर छितरे रूप में ही बसी हुई थी, प्रकृति बिना कठिनाई के उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति किया करती थी। यह था स्वर्ण युग, शान्ति तथा समृद्धि का युग।" (वही, पृष्ठ १०२)

प्रूदों का आर्थिक दृष्टिकोण घोर माल्थुसपंथी दृष्टिकोण है—

"जब उत्पादन दुगुना हो जायेगा तो आबादी भी जल्द दुगुनी हो जायेगी।" (पृष्ठ १०६)

तो फिर इस पुस्तक में भौतिकवाद किसमें निहित है? इस चीज़ में कि यह घोषित करती है कि युद्ध का कारण सदैव और अब भी "कंगाली" है (उदाहरणार्थ पृष्ठ १४३)। चचा ब्रेसिग* भी एक ऐसे ही निपुण भौतिकवादी थे जब उन्होंने अपने १८४८ के भाषण में बड़े सारगर्भित शब्द कहे थे—"बड़ी ग़रीबी का कारण बड़ी pauvrete** है।"

लासाल की कृति 'हस्तगत अधिकारों की प्रणाली' पर न्यायविद की ही नहीं, वरन् पुराने हेगेलपंथी की भी छाप है। पृष्ठ ७ पर वह सुस्पष्ट रूप से कहते हैं कि "**अर्थशास्त्र** में भी हस्तगत अधिकार की अवधारणा आगे के सारे विकास की प्रेरक शक्ति है" और वह यह सिद्ध करने का प्रयास करते हैं (पृष्ठ ११) कि "अधिकार एक तर्कपरक अंग है जो स्वयं **अपने आप से** विकसित होता है (और इसलिए आर्थिक पूर्वापेक्षाओं से नहीं)। लासाल के लिए प्रश्न अधिकार को आर्थिक सम्बन्धों से नहीं, वरन् "स्वयं इच्छा की अवधारणा से ग्रहण करने का है, जिसका अधिकार का दर्शन केवल विकास तथा प्रतिबिम्ब है" (पृष्ठ १२)। तो यह पुस्तक यहां कैसे आ गयी? प्रूदों तथा लासाल में अन्तर सिर्फ़ इतना है कि लासाल वास्तव में विधिशास्त्री तथा हेगेलपंथी थे जबकि

---

*चचा ब्रेसिग—जर्मन पूंजीवादी हास्य रस-लेखक तथा उपन्यासकार फ़्रिट्ज़ रायटर की कृतियों का एक हास्य-पात्र।—सं०

** कंगाली।—सं०

11*

विधिशास्त्र तथा दर्शन दोनों में और साथ ही दूसरे सारे मामलों में भी प्रूदों मात्र पल्लवग्राही थे।

मैं भली भांति जानता हूं कि प्रूदों, जो अपनी बात का स्वयं निरन्तर खंडन करते रहते हैं, समय-समय पर इस तरह का बयान दे बैठते हैं मानों उन्होंने विचारों का तथ्यों के आधार पर स्पष्टीकरण किया हो। परन्तु ऐसे बयानों में कोई महत्व नहीं होता जब उनकी तुलना उनके मूल चिन्तन से की जाती है; और जहां वे मिलते भी हैं, वे बिल्कुल उलझे हुए होते हैं तथा उनमें अन्तर्निहित असंगतता होती है।

समाज के विकास की किसी ख़ास, बहुत ही आरम्भिक मंज़िल में यह आवश्यकता पैदा होती है कि वस्तुओं के उत्पादन, वितरण तथा विनिमय की नित्य आवर्तक क्रियाओं को एक समान नियम के अन्तर्गत लाया जाये, यह सुनिश्चित किया जाये कि व्यक्ति अपने को उत्पादन तथा विनिमय की समान अवस्थाओं के मातहत करे। यह नियम, जो आरम्भ में रीति होता है, शीघ्र क़ानून बन जाता है। क़ानून के साथ ऐसे निकाय भी लाज़िमी तौर पर प्रकट होते हैं जिन्हें इसके परिपालन की ज़िम्मेवारी सौंपी जाती है—याने सार्वजनिक सत्ता, राज्य। और अधिक सामाजिक विकास के साथ क़ानून न्यूनाधिक रूप में एक व्यापक क़ानूनी प्रणाली बन जाता है। यह क़ानूनी प्रणाली जितनी ज़्यादा जटिल होती है, उसकी अभिव्यक्ति का रूप उससे उतना ही दूर होता जाता है जिसमें सामाजिक जीवन की सामान्य आर्थिक अवस्थाएं व्यक्त हुआ करती हैं। वह ऐसे स्वतंत्र तत्व के रूप में प्रकट होती है जो अपने अस्तित्व का तथा अपने आगे के विकास की नींव का औचित्य आर्थिक सम्बन्धों से नहीं, वरन् अपनी ही आन्तरिक आधारशिलाओं से या कहें "इच्छा की अवधारणा" से प्राप्त करता है। लोग भूल जाते हैं कि जिस तरह उन्होंने स्वयं अपने मूल को पशु-जगत से प्राप्त किया, उसी तरह उनके अधिकार ने अपना मूल जीवन की आर्थिक अवस्थाओं से प्राप्त किया था। क़ानूनी प्रणाली द्वारा विकसित होकर एक जटिल, व्यापक सम्पूर्ण इकाई का रूप ग्रहण करने के साथ श्रम का एक नया सामाजिक विभाजन आवश्यक हो जाता है: पेशेवर न्यायविदों की एक श्रेणी विकसित हो जाती है और इनके साथ ही विधिशास्त्र जन्म लेता है। और आगे विकास होने पर यह शास्त्र विभिन्न जनगण तथा विभिन्न कालों की क़ानूनी प्रणालियों की तुलना सम्बद्ध आर्थिक सम्बन्धों के प्रतिबिम्ब के रूप में नहीं, वरन् ऐसी प्रणालियों के रूप में करता है जो अपना प्रमाणीकरण अपने आप में पाती हैं। यह तुलना कुछ समान बिन्दुओं की पूर्वकल्पना

करती है और क़ानूनवेत्ता इन तमाम क़ानूनी प्रणालियों में न्यूनाधिक समान बिन्दुओं को **नैसर्गिक अधिकार** के नाम से पुकारते हैं। क्या कुछ नैसर्गिक अधिकार के क्षेत्र में आता है और क्या नहीं, यह मापने के लिए इस्तेमाल किया जानेवाला पैमाना स्वयं अधिकार की, सर्वाधिक अमूर्त अभिव्यक्ति है अर्थात् **न्याय**। इसलिए इसके आगे से क़ानूनवेत्ताओं तथा उन तमाम लोगों के लिए, जो उनके शब्दों पर विश्वास करते हैं, अधिकार का विकास मानव अवस्थाओं को – जहां तक वे क़ानूनी भाषा में व्यक्त होती हैं – न्याय के आदर्श, शाश्वत न्याय के अधिक समीप लाने के प्रयास के अलावा और कुछ नहीं है। और यह न्याय सदैव विद्यमान आर्थिक सम्बन्धों की कभी उनके अनुदारपंथी तो कभी उनके क्रान्तिकारी दृष्टिकोण से आदर्शीकृत, महिमामंडित अभिव्यक्ति के अलावा और कुछ नहीं होता। यूनानियों तथा रोमनों का न्याय दासप्रथा को न्यायसंगत ठहराता था; १७८९ के पूंजीपति वर्ग के न्याय ने सामन्तवाद को इस आधार पर मिटाने की मांग की कि वह अन्यायपूर्ण है। प्रशियाई ज़मींदारों के लिए तो तुच्छ ज़िला क़ानून तक शाश्वत न्याय का उल्लंघन है।[75] इसलिए शाश्वत न्याय की अवधारणा देशकाल के अनुसार ही नहीं, वरन् सम्बन्धित लोगों के अनुसार भी भिन्न-भिन्न होती है और उसकी गिनती उन चीज़ों में होती है जिनके बारे में म्यूलबर्गर ने ठीक ही कहा है, "हरेक किसी चीज़ को अलग-अलग ढंग से समझता है।" जहां दैनंदिन जीवन में चर्चित सम्बन्धों के सारल्य को देखते हुए अधिकार, ग़लती, न्याय तथा अधिकार की भावना जैसी अभिव्यंजनाएं सामाजिक मामलों तक के संदर्भ में बिना किसी ग़लतफ़हमी के स्वीकार की जाती हैं, वहां वे, जैसा कि हम देख चुके हैं, आर्थिक सम्बन्धों की किसी भी तरह की वैज्ञानिक जांच में उसी तरह की घोर भ्रान्ति पैदा करती हैं जैसी उदाहरण के लिए आधुनिक रसायनशास्त्र में फ़्लोजिस्टीन सिद्धान्त की शब्दावली के बरक़रार रखे जाने की सूरत में पैदा हो सकती है। यह भ्रान्ति उस समय और भी विकृत हो जाती है जब प्रूदों की तरह कोई इस सामाजिक फ़्लोजिस्टीन में, "न्याय" में विश्वास करे अथवा म्यूलबर्गर की तरह यह यक़ीन दिलाये कि फ़्लोजिस्टीन सिद्धान्त आक्सीजन सिद्धान्त से कम सही नहीं है।*

---

*आक्सीजन की खोज से पहले रसायनज्ञ वायुमंडलीय वायु में पदार्थों के दहन का कारण यह माना करते थे कि उसमें एक विशेष दहनशील पदार्थ, फ़्लोजिस्टीन विद्यमान है जो दहन की प्रक्रिया के दौरान ग़ायब हो जाता है। चूंकि उन्होंने देखा कि दहन के बाद सामान्य पदार्थ जलने से पूर्व की तुलना में

३

म्यूलबर्गर आगे शिकायत करते हैं कि मैंने उनके निम्नलिखित "ज़ोरदार" बयान को प्रतिक्रियावादी विलपि बताया—

"हमारी बहुप्रशंसित शताब्दी पर इस तथ्य से बड़ा और कोई व्यंग्य नहीं हो सकता कि बड़े शहरों में ९० प्रतिशत और इससे भी बड़ी आबादी के पास कोई ऐसी जगह नहीं है जिसे वे अपना कह सकें।"

निश्चय ही यदि म्यूलबर्गर ने अपने को, जैसा कि वह जताते हैं, "वर्तमान काल की विभीषिकाओं" तक सीमित रखा होता तो मैंने यक़ीनन "उनके तथा उनके विनम्र शब्दों के बारे में" एक भी शब्द न कहा होता। परन्तु असलीयत यह है कि वह सर्वथा भिन्न काम करते हैं। वह इन "विभीषिकाओं" को इस तथ्य का **परिणाम** बताते हैं कि मज़दूरों के पास "कोई ऐसी जगह नहीं है जिसे वे अपना कह सकें।" चाहे कोई "वर्तमान काल की विभीषिकाओं" पर इसलिए विलाप करे कि मकानों पर मज़दूरों का स्वामित्व मिटा दिया गया है या चाहे ज़मींदारों की तरह इसलिए विलाप करे कि सामन्तवाद तथा शिल्प संघ मिटा दिये गये हैं, इनसे अवश्यम्भाविता के, ऐतिहासिक आवश्यकता के आगमन पर प्रतिक्रियावादी विलाप, शोकपूर्ण गीत के अलावा और कोई परिणाम निकलनेवाला नहीं है। इसका प्रतिक्रियावादी स्वरूप ठीक इसी तथ्य में निहित है कि म्यूलबर्गर मज़दूरों के लिए मकानों पर निजी स्वामित्व की पुन:स्थापना करना चाहते हैं—यह ऐसा मामला है जिसे इतिहास बहुत पहले ही ख़त्म कर चुका है; कि वह मज़दूरों में से हरेक को फिर से अपने मकान का स्वामी बनाने के अलावा उनकी मुक्ति के किसी और रास्ते की कल्पना नहीं कर सकते।

ज़्यादा भारी होते हैं, इसलिए उन्होंने घोषित किया कि फ़्लोजिस्टीन में एक ऋणात्मक भार होता है जिसके फलस्वरूप फ़्लोजिस्टीन से रहित पदार्थ फ़्लोजिस्टीन के होने की तुलना में ज़्यादा भारी होता है। इस तरह आक्सीजन के सारे मुख्य गुणों का कारण फ़्लोजिस्टीन बताया गया, परन्तु पूर्ण **विलोमित रूप में**। जब यह खोज हो गयी कि दहन एक जलते पदार्थ का दूसरे पदार्थ—आक्सीजन—से संयोजन है और आक्सीजन मूल रूप में प्राप्त हो गया, तो इस खोज ने पुरानी मान्यता का अन्त कर दिया परन्तु इसका पुराने रसायनज्ञ लम्बे अर्से तक विरोध करते रहे। **(एंगेल्स की टिप्पणी)**

वह आगे कहते हैं—

"मैं पूरे ज़ोर से घोषणा करता हूं कि वास्तविक संघर्ष उत्पादन की पूंजीवादी पद्धति के विरुद्ध किया जाता है; केवल **उसके रूपान्तरण से ही** आवासीय परिस्थितियों में सुधार की आशा की जा सकती है। एंगेल्स तो इसमें से कुछ भी नहीं देख पाते ... मैं मकानों को किराये पर उठाने की व्यवस्था ख़त्म करने के लिए सामाजिक प्रश्न के पूर्ण समाधान की पूर्वकल्पना करता हूं।"

दुर्भाग्यवश, मुझे अभी भी इसमें से कुछ नहीं दिखायी दे रहा है। मेरे लिए यह जानना अब भी असम्भव है कि कोई व्यक्ति, जिसका नाम मैंने कभी नहीं सुना, अपने मस्तिष्क के गुप्त खानों में क्या पूर्वकल्पना कर रहा है। मैं तो मात्र यही कर सकता था कि म्यूलबर्गर के छपे हुए लेखों को ही पकड़े रहूं। और उनमें (पुस्तिका के पृष्ठ १५ और १६ पर) आज भी यही पढ़ने को मिलता है कि किराये पर मकान उठाने की व्यवस्था का उन्मूलन कर सकने के लिए म्यूलबर्गर ... किराये के मकानों के सिवाय और किसी चीज़ की पूर्वकल्पना नहीं करते। पृष्ठ १७ पर ही वह "पूंजी की उत्पादकता से सीधे-सीधे निपटते" हैं जिसकी हम आगे चर्चा करेंगे। अपने उत्तर में भी वह इसकी पुष्टि यह कहकर करते हैं—

"यह एक तरह इस चीज़ को प्रदर्शित करने का प्रश्न था कि **विद्यमान परिस्थितियों से** कैसे आवास प्रश्न का पूर्ण समाधान हासिल किया जा सकता था।"

"विद्यमान परिस्थितियों से" और "उत्पादन की पूंजीवादी पद्धति के रूपान्तरण से" (इसे उन्मूलन पढ़ें)—ये तो निश्चय ही दो सर्वथा परस्परविरोधी वस्तुएं हैं।

स्वभावतः म्यूलबर्गर इस बात का रोना रोते हैं कि मैं श्री दोलफ़ुस और दूसरे कारख़ानेदारों द्वारा मज़दूरों को अपने मकान हासिल करने में मदद देने की लोकोपकारी कोशिशों को म्यूलबर्गर की प्रूदोंपंथी योजनाओं का एकमात्र सम्भव व्यावहारिक मूर्त्त रूप मानता हूं। यदि वह अनुभव कर लेते कि समाज की मुक्ति के लिए प्रूदों की योजना पूरी तरह **पूंजीवादी** समाज पर आधारित कल्पना की उड़ान है तो वह इस पर विश्वास नहीं करते। मैंने उनके नेक इरादों को कभी

चुनौती नहीं दी। परन्तु वह तब डा० रेशाउएर की इस बात के लिए क्यों प्रशंसा करते हैं कि उन्होंने वियेना नगरपालिका से श्री दोल्फ़ुस की योजनाओं का अनुकरण करने का प्रस्ताव किया?

म्यूलबर्गर आगे कहते हैं—

"जहां तक विशेष रूप से नगर तथा देहात के बीच विरोध का प्रश्न है, उसे मिटाने की इच्छा कल्पनाविलास है। यह विरोध नैसर्गिक है, यह कहना अधिक सही होगा कि इसका ऐतिहासिक रूप से प्रादुर्भाव हुआ है ... सवाल इस विरोध को **मिटाने** का नहीं, वरन् ऐसे राजनीतिक तथा सामाजिक रूप ढूंढने का है जिनमें यह **हानिरहित** होगा, यही नहीं, वस्तुतः **फलप्रद** भी होगा। इस तरह हितों के शान्तिपूर्ण तालमेल की, उनके धीरे-धीरे सन्तुलन की अपेक्षा करना सम्भव होगा।"

तो नगर तथा देहात के बीच विरोध मिटाना कल्पनाविलास है **क्योंकि** यह विरोध नैसर्गिक है, यह कहना ज्यादा सही होगा, कि इसका ऐतिहासिक रूप से प्रादुर्भाव हुआ है। आइये, इस तर्क को आधुनिक समाज के अन्य विरोधों पर लागू कर देखें कि हम कहां पहुंचते हैं। उदाहरण के लिए—

"जहां तक विशेष रूप से" पूंजीपतियों तथा उजरती मज़दूरों "के बीच विरोध का प्रश्न है, उसे मिटाने की इच्छा कल्पनाविलास है। यह विरोध नैसर्गिक है, यह कहना अधिक सही होगा कि इसका ऐतिहासिक रूप से प्रादुर्भाव हुआ है। सवाल इस विरोध को **मिटाने** का नहीं, वरन् ऐसे राजनीतिक तथा सामाजिक रूप ढूंढने का है जिनमें यह **हानिरहित** होगा, यही नहीं, वस्तुतः **फलप्रद** भी होगा। इस तरह हितों के शान्तिपूर्ण तालमेल की, उनके धीरे-धीरे सन्तुलन की अपेक्षा करना सम्भव होगा।"

और इस तरह हम फिर शुल्ज़े-डेलिच के पास पहुंच जाते हैं।

नगर तथा देहात के बीच विरोध को मिटाना पूंजीपतियों तथा उजरती मज़दूरों के बीच विरोध को मिटाने से न कम और न ज़्यादा कल्पनाविलास है। यह दिनोंदिन औद्योगिक तथा कृषि उत्पादन की अधिकाधिक मांग बनता जा रहा है। इसकी जितनी जोरदार ढंग से मांग लिबिग ने कृषि रसायन-सम्बन्धी अपनी कृतियों में की है उतनी और किसी ने नहीं की है; उन्होंने अपनी इन कृतियों में हमेशा सबसे पहले इस चीज़ की मांग की है कि इन्सान ज़मीन से जितना पाता है, उतना उसे ज़मीन को वापस करना होगा; इन कृतियों में वह साबित

करते हैं कि केवल शहरों, ख़ास तौर पर बड़े शहरों का अस्तित्व ही इसे नहीं होने देता। जब कोई यह देखता है कि यहां, अकेले लन्दन में पूरे सैक्सोनी राज्य में तैयार होनेवाली खाद से ज़्यादा रोज़ भारी ख़र्चा कर समुद्र में बहा दी जाती है, और इस से पूरे लन्दन के लिए जहर न बनने देने के लिए कितने विशाल ढांचों की आवश्यकता पड़ती है तो नगर तथा देहात के बीच विरोध मिटाने के कल्पनाविलास को उल्लेखनीय व्यावहारिक आधार मिल जाता है। और बर्लिन तक का, जो अपेक्षाकृत छोटा है, कम से कम तीस साल से अपनी ही गन्दगी की बदबू में दम घुटता आया है। दूसरी ओर, किसानों को ज्यों का त्यों रखते हुए वर्तमान पूंजीवादी समाज को उभारने की प्रूदों की तरह इच्छा करना पूर्णतया कल्पनाविलास है। पूरे देश में आबादी का यथासम्भव समरूप वितरण करके ही, औद्योगिक तथा कृषि उत्पादन के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध क़ायम करके और इस तरह आवश्यक हो जानेवाले संचार साधनों का विस्तार करके ही, – निस्संदेह यह मानते हुए कि उत्पादन की पूंजीवादी पद्धति का उन्मूलन किया जायेगा – देहाती आबादी को उस अलगाव तथा जड़ता से छुटकारा दिलाना सम्भव होगा जिनके बीच वह हज़ारों वर्षों से प्राय: अपरिवर्तित रूप में पनपती रही है। यह मानना कल्पनाविलास नहीं है कि मानवजाति की उन बेड़ियों से, जिन्हें उसके ऐतिहासिक अतीत ने तैयार किया है, मुक्ति तभी पूर्ण होगी जब नगर तथा देहात के बीच विरोध मिटा दिया जायेगा; कल्पनाविलास तब शुरू होता है जब कोई "विद्यमान परिस्थितियों के आधार पर" ऐसे रूप की पूर्वकल्पना करता है जिसमें विद्यमान समाज के इस या उस विरोध का समाधान किया जाना है। और आवास प्रश्न के हल के लिए प्रूदोंपंथी फ़ार्मूला अपनाकर म्यूलबर्गर ठीक यही कर रहे हैं।

म्यूलबर्गर आगे यह शिक़ायत करते हुए कि मैंने "पूंजी तथा ब्याज के विषय में प्रूदों के वीभत्स विचारों" के लिए कुछ हद तक उन्हें भी उत्तरदायी बना दिया है, घोषित करते हैं –

"मेरी यह पूर्वमान्यता है कि उत्पादन सम्बन्धों का परिवर्तन एक **पूर्वसिद्ध** तथ्य है तथा ब्याज की दर का नियमन करनेवाला संक्रमणात्मक क़ानून उत्पादन सम्बन्धों से नहीं, वरन् सामाजिक आवर्त से, संचलन के सम्बन्धों से ताल्लुक रखता है ... उत्पादन सम्बन्धों का परिवर्तन अथवा, जर्मन पंथ के अधिक सटीक शब्दों में, उत्पादन की पूंजीवादी पद्धति का उन्मूलन निस्सन्देह ब्याज ख़त्म करने के संक्रमणात्मक क़ानून के परिणामस्वरूप, जिसे एंगेल्स **मेरे मुंह से कहलाने** का

प्रयत्न करते हैं, सम्पन्न नहीं होगा अपितु मेहनतकश जनता द्वारा **श्रम के सारे औज़ारों के वास्तविक अभिग्रहण**, समग्र उद्योग के अभिग्रहण द्वारा सम्पन्न होगा। मेहनतकश जनता उस दशा में विमोचन की पूजा" (!) "करेगी या तात्कालिक हस्तगतकरण की, यह तय करना न मेरा और न एंगेल्स का काम है।"

मैं हैरान होकर अपनी आंखें मलता हूं। मैं म्यूलबर्गर के निबन्ध को शुरू से लेकर आख़िर तक फिर पढ़ जाता हूं ताकि वह अंश ढूंढ सकूं जिसमें उन्होंने कहा हो कि किराये के आवास का विमोचन "मेहनतकश जनता द्वारा श्रम के सारे औज़ारों के वास्तविक अभिग्रहण, समग्र उद्योग के अभिग्रहण को" एक स्वतःसिद्ध तथ्य के रूप में पूर्वकल्पना करता है। परन्तु मुझे कहीं भी ऐसा अंश नहीं मिलता। वह है ही नहीं। कहीं भी "वास्तविक अभिग्रहण" की चर्चा नहीं है। अलबत्ता पृष्ठ १७ पर निम्नलिखित अंश अवश्य है–

"आइये, अब यह मान लें कि पूंजी की उत्पादकता से, उदाहरण के लिए, **एक संक्रमणात्मक क़ानून द्वारा वस्तुतः सीधे-सीधे निपटा जाता है**–जैसा कि देर-सबेर करना ही होगा–**जो सारी पूंजियों पर एक प्रतिशत ब्याज निर्धारित करता है**, परन्तु ध्यान रहे, इस प्रवृत्ति के साथ कि ब्याज की यह दर भी अधिकाधिक शून्य की ओर पहुंचेगी ... तमाम अन्य उत्पादों की तरह मकान और आवास भी स्वभावतया इस क़ानून के कार्यक्षेत्र में शामिल हैं ... इसलिए हम देखते हैं कि इस दृष्टिकोण से भी किराये के घरों का विमोचन **सामान्यतया पूंजी की उत्पादकता के उन्मूलन का एक आवश्यक परिणाम है।**"

इस तरह म्यूलबर्गर की नवीनतम पैंतरेबाज़ी के विपरीत यहां सीधे-सादे शब्दों में यह कहा गया है कि पूंजी की उत्पादकता से–इन भ्रान्तिपूर्ण शब्दों से उनका निश्चित रूप से तात्पर्य उत्पादन की पूंजीवादी पद्धति से है–वस्तुतः ब्याज ख़त्म करने के क़ानून द्वारा सीधे-सीधे निपटा गया है और ठीक इसी क़ानून के फलस्वरूप "किराये के घरों का विमोचन सामान्यतया पूंजी की उत्पादकता के उन्मूलन का एक आवश्यक परिणाम है।" अब म्यूलबर्गर कहते हैं–क़तई नहीं। यह संक्रमणात्मक क़ानून "**उत्पादन** सम्बन्धों से नहीं, वरन् **संचलन** के सम्बन्धों से ताल्लुक रखता है।" इस घोर अन्तर्विरोध को, जो गेटे के शब्दों में "बुद्धिमानों के लिए उतना ही रहस्यमय है जितना मूर्खों के लिए"*, मेरे लिए केवल यही मानना शेष रह

* गेटे, 'फ़ाउस्ट', भाग १, अंक ६ 'चुड़ैल की गुफा' (पदान्वय)।–सं०

जाता है कि मेरा साबिक़ा दो पृथक-पृथक म्यूलबर्गरों से पड़ रहा है जिनमें से एक को यही शिकायत है कि मैंने "उसके मुंह से वह कहलाने" का यत्न किया जो दूसरे ने प्रकाशित करा दिया।

यह निस्सन्देह सच है कि मेहनतकश जनता न मुझसे और न म्यूलबर्गर से यह पूछेगी कि वास्तविक अभिग्रहण में उसे "विमोचन की पूजा करनी चाहिए या तात्कालिक हस्तगतकरण की"। पूरी सम्भावना इसी बात की है कि वह "पूजा" न करना ही ज्यादा पसन्द करे। परन्तु मेहनतकश जनता द्वारा श्रम के सारे औज़ारों के अभिग्रहण का कभी कोई मसला ही नहीं उठा था; मसला तो केवल म्यूलबर्गर के इस दावे (पृष्ठ १७) का था कि "आवास प्रश्न के हल की सारी अन्तर्वस्तु **विमोचन** शब्द में निहित है।" अब यदि वह विमोचन को सरासर सन्देहास्पद मानते हैं तो फिर अपने को, मुझे तथा पाठकों को यह व्यर्थ कष्ट देने का मतलब ही क्या था?

इसके अलावा, यह परिलक्षित किया जाना चाहिए कि श्रम के सारे औज़ारों का "वास्तविक अभिग्रहण", मेहनतकश जनता द्वारा समग्र उद्योग पर अधिकार प्रूदोंपंथी "विमोचन" के ठीक विपरीत है। दूसरे मामले में **अलग-अलग मजदूर** आवास, ज़मीन के टुकड़े तथा श्रम के औज़ारों का स्वामी बन जाते हैं; पहले मामले में "मेहनतकश जनता" मकानों, कारख़ानों तथा श्रम के औज़ारों की सामूहिक स्वामी बनी रहती है और लागत का हरजाना पाये बिना उन्हें अलग-अलग व्यक्तियों या संघों को कम से कम संक्रमण काल में इस्तेमाल करने की शायद ही इजाज़त दी जाये। इसी तरह भूमि पर स्वामित्व का उन्मूलन ज़मीन के किराये का उन्मूलन नहीं है, वरन् उसे समाज को स्थानान्तरित – भले ही संशोधित रूप में – करना मात्र है। इसलिए मेहनतकश जनता द्वारा श्रम के सारे औज़ारों का वास्तविक अभिग्रहण किराया सम्बन्धों के बरक़रार रखे जाने की सम्भावना क़तई ख़त्म नहीं करता।

सामान्यतया प्रश्न यह नहीं है कि सर्वहारा सत्तारूढ़ होने पर उत्पादन साधनों, कच्चा माल तथा आजीविका के साधनों पर बल प्रयोग द्वारा क़ब्ज़ा कर लेगा, उनका फ़ौरन मुआवज़ा देगा या वह छोटी-छोटी किश्तों में अदायगी कर सम्पत्ति का विमोचन करेगा। इस तरह के सवाल का पहले ही और तमाम परिस्थितियों के लिए उत्तर देने की चेष्टा करना कल्पनालोक का निर्माण करना होगा और इसे मैं दूसरों के लिए छोड़ देता हूं।

४

म्यूलबर्गर की विविध पैंतरेबाज़ियों के बीच से रास्ता ढूंढते हुए असल मसले तक, जिसका उत्तर देने से वह होशियारी से कतराते हैं, पहुंचने के लिए इतनी स्याही तथा कागज़ खर्च करना ज़रूरी था।

म्यूलबर्गर ने अपने लेख में कौनसी ठोस बातें कहीं?

पहली—कि "मकान, निर्माण स्थली, आदि की मूल लागत तथा उसके वर्तमान मूल्य में अन्तर" पर समाज का अधिकार है। अर्थशास्त्र की भाषा में इस अन्तर को ज़मीन का किराया कहते हैं। प्रूदों भी इसे समाज के लिए हस्तगत करना चाहते हैं जैसा कि उनकी पुस्तक 'क्रान्ति का आम विचार' में—पृष्ठ २१९, १८६८ का संस्करण—पढ़ने को मिलता है।

दूसरी—कि आवास समस्या का हल इसमें निहित है कि हरेक अपने आवास में किरायेदार होने की जगह उसका स्वामी बने।

तीसरी—कि इस समाधान को एक ऐसा क़ानून पास कर मूर्त्त रूप दिया जायेगा जो किराये की अदायगी को मकान की ख़रीद की क़ीमत की किश्तों में परिणत कर देगा। इनमें से दूसरा और तीसरा मुद्दा प्रूदों से लिये गये हैं जिन्हें हरेक 'क्रान्ति का आम विचार' पुस्तक के पृष्ठ १९९ आदि में देख सकता है जबकि पृष्ठ २०३ पर सम्बन्धित क़ानून का मसौदा पहले से तैयार किया हुआ मिलता है।

चौथी—कि पूंजी की उत्पादकता की समस्या से सीधे-सीधे एक संक्रमणात्मक क़ानून द्वारा निपटा जाता है जो ब्याज की दर घटाकर अस्थायी तौर पर एक प्रतिशत कर देता है तथा जिसमें उसे आगे चलकर और कमी करने का प्रावधान होता है। यह मुद्दा भी प्रूदों से प्राप्त किया गया है जिसे 'आम विचार' के पृष्ठ १८२ से लेकर १८६ तक विस्तार के साथ पढ़ा जा सकता है।

इनमें से हरेक मुद्दे के मामले में मैंने प्रूदों के उन लेखांशों को उद्धृत कर दिया है जिनमें म्यूलबर्गर द्वारा की गयी नक़ल का मूल मिल सकता है, और अब मैं पूछता हूं कि मैंने एक ऐसे लेख के, जिसमें पूर्णतया प्रूदोंपंथी, केवल प्रूदोंपंथी विचार हैं, लेखक को प्रूदोंपंथी कहकर क्या सही बात नहीं कही है? फिर भी म्यूलबर्गर को सबसे अधिक कटु शिकायत इस बात से है कि मैंने उन्हें इसलिए प्रूदोंपंथी कहा कि मुझे "कुछ ऐसी चन्द **अभिव्यंजनाएं** मिलीं जो प्रूदों की विशिष्टता हैं!" बात इसके विपरीत है। सारी "**अभिव्यंजनाएं**" म्यूलबर्गर

की हैं तथा उनकी **अन्तर्वस्तु** प्रूदों की है। और मैं जब इस प्रूदोंपंथी लेख के साथ प्रूदों को जोड़ता हूं तो म्यूलबर्गर शिकायत करते हैं कि मैं प्रूदों के "बीभत्स विचार" उनके बता रहा हूं।

इस प्रूदोंपंथी योजना का मैंने क्या उत्तर दिया था?

पहला – कि ज़मीन के किराये का राज्य को स्थानान्तरण ज़मीन पर निजी स्वामित्व के उन्मूलन के बराबर है।

दूसरा – कि किराये के घर के विमोचन तथा आवास का स्वामित्व ऐसे पक्ष को, जो अब तक वहां किरायादार था, हस्तान्तरित करने से उत्पादन की पूंजीवादी पद्धति को ज़रा भी आंच नहीं आती।

तीसरा – कि बड़े पैमाने के उद्योग तथा नगर के आधुनिक विकास के कारण यह प्रस्ताव उतना ही बेतुका है जितना प्रतिक्रियावादी और प्रत्येक व्यक्ति के अपने आवास पर निजी स्वामित्व को फिर से लागू किया जाना प्रतिगामी पग होगा।

चौथा – कि पूंजी पर ब्याज की दर की अनिवार्य कमी उत्पादन की पूंजीवादी पद्धति पर कदापि प्रहार नहीं करेगी। इसके विपरीत यह – जैसा कि सूदख़ोरी विरोधी क़ानून सिद्ध करते हैं – पुरानी मांग जितनी ही असम्भव है।

पांचवां – कि पूंजी पर ब्याज के ख़ात्मे से मकानों के किराये की अदायगी कदापि ख़त्म नहीं होती।

म्यूलबर्गर अब दूसरे और चौथे मुद्दे से सहमत हो गये हैं। दूसरे मुद्दों का वह कोई उत्तर नहीं देते। परन्तु ठीक ये ही वे मुद्दे हैं जिनको लेकर पूरा वाद-विवाद चल रहा है। वैसे म्यूलबर्गर का उत्तर प्रतिवाद नहीं है; यह उत्तर सारे आर्थिक मुद्दों से, जो अन्ततः निर्णायक हैं, बड़ी सावधानी से कतराता है। यह व्यक्तिगत शिकायत है, और कुछ नहीं। उदाहरण के लिए उनकी शिकायत है कि मैं अन्य प्रश्नों, उदाहरणार्थ राजकीय ऋणों, निजी ऋणों तथा उधार से सम्बन्धित प्रश्नों के उनके घोषित समाधान की पहले से कल्पना कर लेता हूं और कहता हूं कि उनका समाधान आवास प्रश्न की ही तरह सर्वत्र एक जैसा होगा – ब्याज का ख़ात्मा, ब्याज की अदायगी को किश्तों में परिणत कर पूंजी चुकाना तथा मुक्त उधार। इस सब के बावजूद मैं अब भी शर्त लगाकर कहता हूं कि यदि म्यूलबर्गर के ये लेख कभी प्रकाश में आयें तो उनकी मूल अन्तर्वस्तु प्रूदों के 'आम विचार' से (पृष्ठ १८२ पर उधार, पृष्ठ १८६ पर राजकीय ऋण, पृष्ठ १९६ पर निजी ऋण) उसी तरह मेल खायेगी जिस तरह आवास प्रश्न पर उनके लेख उसी पुस्तक से मेरे द्वारा उद्धृत किये गये अंशों से मेल खाते हैं।

म्यूलबर्गर इस मौक़े का लाभ उठाकर सूचित करते हैं कि कराधान, राजकीय ऋण, निजी ऋण तथा उधार का, जिनके साथ अब म्युनिसिपल स्वायत्तता का प्रश्न और जोड़ दिया गया है, किसान के लिए तथा देहात में प्रचार के लिए सबसे अधिक महत्व है। इससे कुछ हद तक मैं सहमत हूं परन्तु १) अब तक किसान की कोई चर्चा नहीं हुई है और २) इन तमाम समस्याओं के प्रूदोंपंथी "समाधान" आवास प्रश्न के उनके समाधान की ही तरह आर्थिक दृष्टि से बिल्कुल बेतुके तथा मूलतया पूंजीवादी हैं। मुझे म्यूलबर्गर के इस आरोप से अपना बचाव करने की कोई आवश्यकता नहीं है कि मैं किसानों को आन्दोलन में शामिल करने की आवश्यकता से इन्कार करता हूं। लेकिन मैं इस उद्देश्य के लिए उनके वास्ते प्रूदोंपंथी नीम हक़ीमी की सिफ़ारिश करना यक़ीनन मूर्खता मानता हूं। जर्मनी में अब भी बड़ी-बड़ी जागीरें हैं। प्रूदों के सिद्धान्त के अनुसार इन सब को छोटे-छोटे कृषक फ़ार्मों में बांटा जाना चाहिए जो कृषि विज्ञान के वर्तमान स्तर को देखते हुए तथा फ़्रांस और पश्चिमी जर्मनी में ज़मीन के छोटे-छोटे खंडों में विभाजन के अनुभव के बाद निश्चित रूप से प्रतिक्रियावादी पग होगा। इसके विपरीत अभी विद्यमान बड़ी जागीरें हमें समूहबद्ध मेहनतकशों के ज़रिए बड़े पैमाने की खेती – कृषि की एकमात्र ऐसी प्रणाली जो सारे आधुनिक साधनों, मशीनों, आदि का उपयोग कर सकती है – करने के लिए तथा इस तरह छोटे किसानों को सहचारिता की मदद से बड़े पैमाने की अर्थव्यवस्था के लाभ प्रदर्शित करने के लिए एक तरह वांछनीय आधार प्रदान करेंगी। डेनिश समाजवादी, जो इस मामले में दूसरे सब लोगों से आगे हैं, इससे बहुत पहले अवगत हो गये थे।

मेरे लिए इस भर्त्सना से अपना बचाव करना भी सरासर अनावश्यक है कि मैं मज़दूरों की वर्तमान आवासीय अवस्थाओं को "महत्त्वहीन तफ़सील" मानता हूं। जहां तक मुझे मालूम है, मैंने ही जर्मन साहित्य में सबसे पहले इन अवस्थाओं का उनके क्लासिकीय रूप में, जिसमें वे इंगलैंड में विद्यमान हैं, वर्णन किया था; इसलिए नहीं कि वे "**न्याय की मेरी भावना** को ठेस पहुंचाते हैं", जैसा कि म्यूलबर्गर सोचते हैं – जो कोई अपनी न्याय की भावना को ठेस पहुंचानेवाले सारे तथ्यों के बारे में पुस्तकें लिखने का आग्रह करेगा, उसे बहुत दौड़धूप करनी होगी – बल्कि इसलिए कि – जैसा कि कोई भी मेरी पुस्तक की प्रस्तावना* में पढ़ सकता है – उस समय ऊपर उठ रहे और खोखले शब्दजाल पर अपनी शक्ति

* फ़्रेडरिक एंगेल्स, 'इंगलैंड में मज़दूर वर्ग की स्थिति'। – सं०

जाया कर रहे जर्मन समाजवाद के लिए बड़े पैमाने के आधुनिक उद्योग द्वारा पैदा की गयी सामाजिक अवस्थाओं का वर्णन करके तथ्यगत आधार प्रस्तुत कर सकूं। परन्तु मेरे दिमाग़ में तथाकथित आवास **प्रश्न** को हल करने का यत्न करने की बात उसी तरह कभी नहीं आयी जिस तरह उससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण प्रश्न की, **खाद्य प्रश्न** की तफ़सीलों में अपने को व्यस्त रखने की बात नहीं आयी थी। यदि मैं यह सिद्ध कर सकूं कि हमारे आधुनिक समाज में उत्पादन अपने तमाम सदस्यों को पूरा भोजन देने के लिए काफ़ी है और मेहनतकश जनसाधारण के लिए फ़िलहाल बड़े और स्वास्थ्यप्रद आवास मुहैया करने के लिये पर्याप्त मकान मौजूद हैं तो इससे मुझे सन्तोष हो जायेगा। भावी समाज भोजन तथा आवास के वितरण को किस तरह संगठित करेगा, इसकी अटकलबाज़ी लगाने का मतलब सीधे **कल्पनालोक** में पहुंचना होगा। हम आज तक की उत्पादन की तमाम पद्धतियों की बुनियादी अवस्थाओं के बारे में अपनी समझदारी के आधार पर हद से हद यह कह सकते हैं कि उत्पादन की पूंजीवादी पद्धति के पतन के साथ हस्तगतकरण के कतिपय रूप, जो समाज में अब तक विद्यमान रहे, असम्भव हो जायेंगे। संक्रमणात्मक पगों तक को सर्वत्र समय विशेष में विद्यमान सम्बन्धों के अनुरूप होना पड़ेगा। छोटी भूमि सम्पत्ति वाले देशों में वे उन देशों से सर्वत्र भिन्न होंगे जहां बड़ी भूमि सम्पत्ति विद्यमान है, आदि। म्यूलबर्गर स्वयं दूसरों की तुलना में इस बात के बेहतर प्रमाण हैं कि जब कोई आवास प्रश्न जैसे तथाकथित व्यावहारिक समस्याओं के लिए पृथक समाधान ढूंढने का यत्न करता है तो वह कहां पहुंच जाता है। उन्होंने पहले २८ पृष्ठ यह समझाने में रंग दिये कि "आवास प्रश्न के समाधान की सारी अन्तर्वस्तु **विमोचन** शब्द में निहित है", फिर वह बुरी तरह फंस जाने पर संकोचपूर्वक हकलाते हुए कहते हैं कि यह सचमुच बहुत सन्देहास्पद है कि मकानों को वस्तुतः अपने अधिकार में कर लेने के बाद "मेहनतकश लोग विमोचन की ज्यादा पूजा करेंगे" या हस्तगतकरण के किसी अन्य रूप की।

म्यूलबर्गर मांग करते हैं कि हम **व्यावहारिक** बनें, कि "वास्तविक व्यावहारिक प्रश्नों से सामना" होने पर हमें "मात्र मृत तथा अमूर्त सूत्रों के साथ आगे" नहीं आना चाहिए, कि हमें "अमूर्त समाजवाद से **निश्चित, ठोस सामाजिक सम्बन्धों** के समीप पहुंचना चाहिए।" यदि म्यूलबर्गर ने यह किया होता तो शायद आन्दोलन की बड़ी सेवा कर देते। निश्चित, ठोस सामाजिक सम्बन्धों के समीप आने की दिशा में प्रथम पग यक़ीनन यह है कि उनका अध्ययन किया जाता

है, उनके विद्यमान आर्थिक अन्तस्सम्बन्धों के अनुसार उन्हें जांचा जाता है। परन्तु म्यूलबर्गर के लेखों में हमें क्या मिलता है? दो पूरे वाक्य, यानी—

१. "किरायेदार का मकान-मालिक के साथ सम्बन्ध उजरती मज़दूर के पूंजीपति के साथ सम्बन्ध जैसा है।"

मैं पृथक प्रकाशन के पृष्ठ ६* पर यह सिद्ध कर चुका हूं कि यह सरासर ग़लत है और म्यूलबर्गर के पास उत्तर देने के लिए एक भी शब्द नहीं है।

२. "जिस मामले" (सामाजिक सुधार में) "से सीधे-सीधे निपटा जाना है, वह राजनीतिक अर्थशास्त्र के उदारतावादी पंथ के शब्दों में **पूंजी की उत्पादकता है जो वस्तुतः विद्यमान नहीं है परन्तु जो अपने प्रतीयमान अस्तित्व में** उस सारी असमानता को छुपाने की आड़ का काम देती है जिसके बोझ से वर्तमान समाज दबा हुआ है।"

इस तरह जिस मामले से सीधे-सीधे निपटा जाना है, वह "**वस्तुतः विद्यमान नहीं है**" और इसलिए वह "मामला" नहीं है। बुराई उसमें नहीं, वरन् उसके **प्रतीयमान अस्तित्व** में है। इसके बावजूद "तथाकथित उत्पादकता (पूंजी की) जादू के थैले से मकान और शहर बाहर निकाल देती है", जिनका अस्तित्व "प्रतीयमान" नहीं है (पृष्ठ १२)। और यह है वह व्यक्ति जो—यद्यपि वह मार्क्स की 'पूंजी' से भी "अच्छी तरह अवगत है"—पूंजी तथा श्रम के सम्बन्धों के बारे में इतने बेहद भ्रान्तिपूर्ण ढंग से बड़बड़ाता है और फिर भी जर्मन मजदूरों को नया और बेहतर रास्ता दिखाने का बीड़ा उठाता है और अपने को एक ऐसे "वास्तुशिल्पी" के रूप में प्रस्तुत करता है जिसके दिमाग़ में "भावी समाज के वास्तुशिल्पीय ढांचे की, कम से कम उसकी मुख्य बाह्य रेखाओं की तस्वीर साफ़ है"!

और कोई भी व्यक्ति "निश्चित, ठोस सामाजिक सम्बन्धों के उतने समीप नहीं पहुंच पाया है" जितना मार्क्स अपनी '**पूंजी**' में पहुंचे हैं। उन्होंने हर पहलू से उन्हें जांचने में २५ वर्ष बिताये तथा उनकी समीक्षा के परिणामों में तथाकथित समाधानों के, जहां तक वे आज सम्भव हैं, अंकुर भी मौजूद हैं। परन्तु मित्र म्यूलबर्गर के लिए यह पर्याप्त नहीं है। ये सब अमूर्त समाजवाद हैं, मृत तथा अमूर्त फ़ार्मूला हैं। "निश्चित, ठोस सामाजिक सम्बन्धों का" अध्ययन करने के बजाय मित्र म्यूलबर्गर प्रूदों के चन्द ग्रंथों को पढ़कर सन्तोष कर लेते हैं जो यद्यपि

---

* देखें प्रस्तुत खण्ड।—सं०

उन्हें निश्चित, ठोस सामाजिक सम्बन्धों के बारे में कुछ भी नहीं बताते परन्तु जो इसके विपरीत उन्हें सारी सामाजिक बुराइयों के ठोस चमत्कारपूर्ण रामबाण ज़रूर देते हैं। फिर सामाजिक मुक्ति की इस तैयारशुदा योजना को, इस प्रूदोंपंथी **प्रणाली** को वह जर्मन मज़दूरों के सामने इस बहाने प्रस्तुत करते हैं कि वह "सारी **प्रणालियों** से छुटकारा" पाना चाहते हैं जबकि मैं "उलटा रास्ता चुनता हूं"! इसे समझ सकने के लिए मुझे स्वीकार करना होगा कि मैं अंधा हूं और म्यूलबर्गर बहरे हैं, इस तरह हमारे लिए एक दूसरे को समझना सर्वथा असम्भव है।

बस, काफ़ी हो गया। यह वाद-विवाद भले ही और कोई हितसाधन न करे, उसकी इतनी क़ीमत तो है ही कि उसने इस बात का प्रमाण दे दिया है कि इन स्वयम्भू "व्यावहारिक" समाजवादियों का व्यवहार वस्तुतः क्या है। तमाम सामाजिक बुराइयों के ख़ात्मे के ये व्यावहारिक प्रस्ताव, ये सार्वत्रिक सामाजिक रामबाण सदैव और सर्वत्र उन पंथों के संस्थापकों के कार्य रहे हैं जो उस समय सामने आये जब सर्वहारा आन्दोलन अभी शैशवावस्था में था। प्रूदों भी उसी पंथ के हैं। सर्वहारा का विकास इन शिशु-परिधानों को एक ओर फेंक देता है और स्वयं मज़दूर वर्ग में यह अनुभूति भरता है कि पहले से गढ़े हुए और सार्वत्रिक व्यवहार योग्य इन "व्यावहारिक समाधानों" से ज़्यादा और कोई अव्यावहारिक नहीं है और व्यावहारिक समाजवाद उत्पादन की पूंजीवादी उत्पादन पद्धति का उसके विभिन्न पहलुओं समेत सही ज्ञान प्राप्त करने में निहित है। मज़दूर वर्ग को, जिसे इसका ज्ञान हो, इस बारे में किसी भी सूरत में कभी भी सन्देह **नहीं** रहेगा कि कौनसे सामाजिक संस्थान उसके प्रहारों के लक्ष्य होने चाहिए तथा ये प्रहार किस ढंग से किये जाने चाहिए।

फ़्रेडरिक एंगेल्स द्वारा मई १८७२ और जनवरी १८७३ के बीच लिखित।

अंग्रेज़ी से अनूदित।

«Der Volksstaat» समाचारपत्र के अंक ५१, ५२, ५३, १०३ तथा १०४ में २६ तथा २९ जून; ३ जुलाई, २५ और २८ दिसम्बर १८७२; अंक २, ३, १२, १३, १५ और १६ में ४ और ८ जनवरी; ८, १२, १९ तथा २२ फ़रवरी १८७३ को तथा लाइपज़िग में १८७२–१८७३ में तीन पृथक हिस्सों में प्रकाशित।

हस्ताक्षर – फ़्रेडरिक एंगेल्स

सत्ता के सम्बन्ध में

इधर अनेक समाजवादियों ने उस चीज़ के ख़िलाफ़ बाक़ायदा एक जेहाद छेड़ दिया है जिसे वे **सत्ता का सिद्धान्त** के नाम से पुकारते हैं। उन द्वारा इस या उस कार्य की निन्दा करने के लिए उसे सत्तावादी बताना पर्याप्त है। कार्य-प्रणाली की इस संक्षिप्त विधि का इस तरह दुरुपयोग किया जा रहा है कि उसकी ज़रा कुछ और बारीकी से जांच करना आवश्यक हो गया है। सत्ता शब्द का यहां जिस अर्थ में उपयोग किया गया है, उसका अर्थ है—दूसरे की इच्छा को हमारी इच्छा पर थोपा जाना; दूसरी ओर सत्ता मातहती की पूर्वकल्पना करती है। परन्तु ये दोनों शब्द चूंकि अच्छे नहीं लगते और जिस सम्बन्ध का वे प्रतिनिधित्व करते हैं, वह चूंकि मातहत पक्ष के लिए क्लेशकर होता है, इसलिए सवाल यह पता लगाने का है कि क्या उसे ख़त्म करने का कोई रास्ता है, क्या हम—वर्तमान समाज की परिस्थितियों के अन्तर्गत—ऐसी और कोई सामाजिक प्रणाली तैयार कर सकते हैं जिसके अन्तर्गत इसके लिए कोई गुंजाइश नहीं रखी जायेगी और फलस्वरूप जिसे लुप्त होना पड़ेगा। आर्थिक, औद्योगिक तथा कृषि-सम्बन्धी अवस्थाओं की, जिन्हें लेकर समकालीन पूंजीवादी समाज का आधार बना है, जांच करने पर हमें पता चलता है कि वे अलग-थलग व्यक्तियों के कार्यकलाप के स्थान पर लोगों के संयुक्त कार्यकलापों की ओर अधिकाधिक प्रवृत्त हैं। अपनी बड़ी-बड़ी फ़ैक्टरियों और कारख़ानों समेत जहां सैकड़ों मज़दूर भाप द्वारा चलनेवाली जटिल मशीनों का संचालन करते हैं, आधुनिक उद्योग ने पृथक-पृथक उत्पादकों के वर्कशापों का स्थान ले लिया है; राजपथों पर पुरानी घोड़ा-गाड़ियों की जगह रेलगाड़ियों ने ठीक उसी तरह ले ली है जिस तरह छोटे पालदार नौकाओं की जगह स्टीमरों ने ली है। कृषि तक मशीन और भाप के प्रभुत्व के

अन्तर्गत आ रही है ; ये धीरे-धीरे परन्तु निर्ममतापूर्वक छोटे भू-स्वामियों के स्थान पर बड़े पूंजीपतियों को ला रही हैं जो उजरती मज़दूरों की मदद से विस्तृत भू-खंडों पर काश्त कर रहे हैं। संयुक्त कार्यकलाप, एक दूसरे पर आश्रित जटिल प्रक्रियाएं पृथक-पृथक व्यक्तियों के स्वतंत्र कार्यकलाप का स्थान ले रही हैं। परन्तु जो कोई संयुक्त कार्यकलाप की चर्चा करता है, वह संगठन की बात करता है ; तो क्या सत्ता के बिना संगठन सम्भव है?

मान लें कि कोई सामाजिक क्रान्ति पूंजीपतियों का तख़्ता उलट देती है जिनकी सत्ता इस समय सम्पदा के उत्पादन तथा संचलन पर है। मान लें कि सत्तावाद के विरोधियों का यह पूरा दृष्टिकोण स्वीकार कर लिया जाता है कि भूमि तथा श्रम के औज़ार मज़दूरों की सामूहिक सम्पत्ति बन गये हैं जो उन्हें इस्तेमाल करते हैं। तो क्या इससे सत्ता लुप्त हो जायेगी अथवा वह केवल अपना रूप बदलेगी? आइये, देखें।

उदाहरण के लिए किसी कपास कताई मिल को ले लें। कपास को कम से कम ६ क्रमिक संक्रियाओं के बीच से गुज़रना पड़ता है, तब कहीं वह सूत का रूप धारण करती है ; और ये सारी संक्रियाएं अधिकतर अलग-अलग कमरों में होती हैं। यही नहीं, मशीनों को चालू रखने के लिए एक इंजीनियर की जरूरत पड़ती है जो भाप इंजन की देखभाल करता है, रोजमर्रा की मरम्मत के लिए मिस्तरियों की जरूरत पड़ती है तथा कई अन्य मज़दूरों की आवश्यकता होती है जिनका काम उत्पादों को एक कमरे से दूसरे कमरे में पहुंचाना, आदि होता है। ये सब मज़दूर – पुरुष, स्त्रियां और बच्चे – काम के उन घंटों के दौरान काम शुरू करने तथा ख़त्म करने के लिए विवश होते हैं जिन्हें भाप की सत्ता नियत करती है और यह भाप की सत्ता व्यक्तिगत स्वायत्तता की कोई परवाह नहीं करती। इसलिए मज़दूरों को सबसे पहले काम के घंटे नियत कर लेने चाहिए ; और एक बार ये घंटे नियत हो जायें तो बिना किसी अपवाद के सब द्वारा उनका पालन होना चाहिए। फिर हर कमरे में तथा हर घड़ी उत्पादन तथा सामग्रियों के वितरण, आदि की प्रक्रिया के सम्बन्ध में विशेष प्रश्न पैदा होते हैं जिन्हें फ़ौरन हल करना होता है वरना सारा उत्पादन तत्काल रुक जायेगा ; ये प्रश्न श्रम की प्रत्येक शाखा के शीर्ष स्थान पर किसी डेलीगेट द्वारा अथवा – यदि सम्भव हुआ – बहुमत द्वारा तय किये जाते हैं, अलग-अलग व्यक्तियों की इच्छा सदैव मातहत रहनी होगी ; इसका अर्थ यह हुआ कि प्रश्न सत्तावादी ढंग

से तय किये जाते हैं। किसी बड़ी फ़ैक्टरी की स्वचालित मशीन मज़दूरों से काम लेनेवाले छोटे पूंजीपतियों से हमेशा कहीं अधिक स्वेच्छाचारी होती है। कम से कम काम के घंटों के मामले में इन फ़ैक्टरियों के द्वार पर ये शब्द लिखे जा सकते हैं – «Lasciate ogni autonomia, voi che entrate!» * यदि इन्सान ने अपने ज्ञान और आविष्कार करने की प्रतिभा की मदद से प्रकृति की शक्तियों को अपने मातहत कर लिया है तो प्रकृति की शक्तियां भी उसे – जहां तक वह उनका उपयोग करता है – वास्तविक स्वेच्छाचारिता के मातहत लाकर, जो सारे सामाजिक संगठन से बाहर होती है, उससे बदला लेती हैं। बड़े पैमाने के उद्योग में सत्ता के उन्मूलन की कामना करना स्वयं उद्योग का उन्मूलन करने, चरखे की ओर लौटने के लिए यांत्रिक करघे को नष्ट करने के बराबर है।

एक और उदाहरण ले लें – रेलगाड़ियां। यहां भी असंख्य व्यक्तियों का सहयोग नितान्त आवश्यक है। यह सहयोग भी ठीक-ठीक निश्चित घंटों के अन्दर अमल में लाया जाना चाहिए ताकि कोई दुर्घटना न हो। यहां भी काम की पहली शर्त प्रभुत्वशाली इच्छा है जो सारे मातहत प्रश्नों को तय करती है भले ही इस इच्छा का प्रतिनिधित्व एक डेलीगेट करे अथवा ऐसी कमेटी करे जिसे बहुसंख्या के प्रस्तावों के कार्यान्वियन का दायित्व सौंपा गया हो। दोनों ही मामलों में यह अत्यन्त सुस्पष्ट सत्ता है। और उस रवाना की जानेवाली पहली ही रेलगाड़ी का क्या होगा यदि माननीय यात्रियों पर रेलवे कर्मचारियों की सत्ता ख़त्म कर दी जाये?

परन्तु सत्ता – और वह भी पूर्ण शक्ति युक्त सत्ता – की आवश्यकता जितनी स्पष्ट खुले सागर पर चलनेवाले जहाज़ में होती है, उतनी और कहीं नहीं। वहां ख़तरे के समय सब का जीवन उन सब द्वारा एक व्यक्ति की इच्छा का तत्काल तथा निर्विवाद रूप में पालन किये जाने पर निर्भर करता है।

मैंने इस तरह के तर्क जब सबसे कट्टर सत्तावादविरोधियों के सामने रखे थे तो वे मुझे एकमात्र यही उत्तर दे सके – हां, यह सच है, लेकिन यहां मामला उस सत्ता का नहीं है जो हम अपने डेलीगेटों को सौंपते हैं, बल्कि **सौंपे जानेवाले कुछ निश्चित कार्यभार का** है। ये सज्जन सोचते हैं कि वे चीज़ों का नाम बदलकर स्वयं चीज़ों को बदल देते हैं। ये गहन चिन्तक पूरी दुनिया की इस तरह हंसी उड़ाते हैं।

---

* "प्रवेश करनेवालो, सारी स्वायत्तता पीछे छोड़ जाओ!" दान्ते, 'दिव्य कामेडी', नरक, गीत ३ (पदान्वय)। – **सं०**

इस तरह हम देख चुके हैं कि एक ओर कुछ निश्चित सत्ता—वह चाहे किसी भी रूप में क्यों न हो—तथा दूसरी ओर कुछ निश्चित मातहती, जो सारे सामाजिक संगठन से स्वतंत्र होती है, हमारे ऊपर उन भौतिक अवस्थाओं के साथ थोपी जाती हैं जिनके अन्तर्गत उत्पादन तथा उत्पादों का संचलन होता है।

दूसरी ओर हम देख चुके हैं कि बड़े पैमाने के उद्योग तथा बड़े पैमाने की कृषि के साथ उत्पादन तथा संचलन की भौतिक अवस्थाएं अवश्यम्भावी रूप से विकसित होती हैं तथा इस सत्ता के कार्यक्षेत्र के विस्तार की ओर उन्मुख होती हैं। इसलिए यह कहना उपहासास्पद है कि सत्ता का सिद्धान्त पूर्णतः बुरा है तथा स्वायत्तता का सिद्धान्त पूर्णतः अच्छा है। सत्ता तथा स्वायत्तता सापेक्ष वस्तुएं हैं जिनके कार्यक्षेत्र समाज के विकास के विविध दौरों के साथ बदलते जाते हैं। स्वायत्ततावादी यदि अपने को यह कहने तक सीमित रखते कि भविष्य का सामाजिक संगठन सत्ता को मात्र उन सीमाओं के अन्दर रखेगा जिनके अन्तर्गत उत्पादन की अवस्थाएं उन्हें अवश्यम्भावी बना देती हैं तो हम उनसे सहमत होते, परन्तु वे उन तमाम तथ्यों के मामले में अंधे हैं जो सत्ता को आवश्यक बनाते हैं, तथा वे शब्द के विरुद्ध आग्रहपूर्वक संघर्ष करते हैं।

सत्तावादविरोधी राजनीतिक सत्ता, राज्य के विरुद्ध चिल्लाने तक अपने को क्यों सीमित नहीं रखते? सारे समाजवादी इस बात पर सहमत हैं कि राजनीतिक राज्य का और उसके साथ राजनीतिक सत्ता का भावी सामाजिक क्रान्ति के फ़लस्वरूप लोप हो जायेगा, अर्थात् सार्वजनिक कार्य अपना राजनीतिक चरित्र खो बैठेंगे तथा समाज के हितों पर नज़र रखनेवाले सामान्य प्रशासनिक कार्यों में रूपान्तरित हो जायेंगे। परन्तु सत्तावादविरोधी यह मांग करते हैं कि सत्तावादी राजनीतिक राज्य का उसे जन्म देनेवाली सामाजिक अवस्थाओं को नष्ट किये जाने से पहले ही एक झटके में उन्मूलन कर दिया जाये। वे यह मांग करते हैं कि सामाजिक क्रान्ति का पहला काम यह होना चाहिए कि वह सत्ता का उन्मूलन करे। क्या इन सज्जनों ने कभी क्रान्ति देखी है? क्रान्ति निश्चित रूप से सर्वाधिक—जितनी कि कल्पना की जा सकती है—सत्तावादी वस्तु होती है। यह ऐसा कार्य है जिसमें आबादी का एक भाग राइफ़लों, संगीनों और तोपों के माध्यम से, चरम सत्तावादी साधनों के माध्यम से दूसरे भाग पर अपनी इच्छा थोपता है। और यदि विजयी पार्टी यह नहीं चाहती कि उसके प्रयत्न निष्फल रहें तो उसे ऐसे आतंक की मदद से अपना शासन क़ायम रखना होगा जिसे उसके हथियार प्रतिक्रियावादियों के मन में उत्पन्न करते हैं। यदि पेरिस कम्यून ने

पूंजीपति वर्ग के विरुद्ध सशस्त्र जनता की सत्ता इस्तेमाल न की होती तो क्या वह एक दिन भी टिक पाती? इसके विपरीत क्या हमें कम्यून की इसलिए भर्त्सना नहीं करनी चाहिए कि उसने इस सत्ता का पर्याप्त उपयोग नहीं किया?

इसलिए दो चीज़ों में से एक ही हो सकती है – या तो सत्तावादविरोधियों को यह पता नहीं है कि वे क्या कह रहे हैं और यदि ऐसा है तो वे सिवाय भ्रम के और कुछ पैदा नहीं कर रहे हैं; अथवा उन्हें इसका पता है और यदि ऐसा है तो वे सर्वहारा आन्दोलन के साथ ग़द्दारी कर रहे हैं। दोनों सूरत में वे केवल प्रतिक्रियावाद का हितसाधन कर रहे हैं।

फ़्रेडरिक एंगेल्स द्वारा अक्तूबर १८७२ – मार्च १८७३ में लिखित। दिसम्बर १८७३ में «*Almanacco Repubblicano per l'anno 1874*» में प्रकाशित।

अंग्रेज़ी से अनूदित।

हस्ताक्षर – **फ़्रेडरिक एंगेल्स**

कम्यून के ब्लांकीपंथी उत्प्रवासियों का कार्यक्रम

('उत्प्रवासी साहित्य' लेखमाला का दूसरा लेख)[76]

प्रत्येक असफल क्रान्ति या प्रतिक्रान्ति के उपरान्त बचकर विदेश चले जानेवाले उत्प्रवासियों की गतिविधियां बहुत ज़ोर पकड़ लेती हैं। नाना रंगभेदों के पार्टी ग्रूप गठित हो जाते हैं जो एक दूसरे पर गाड़ी को दलदल में फंसाने, ग़द्दारी करने तथा दूसरे सारे महापाप करने का आरोप लगाते हैं। वे अपनी मातृभूमि के साथ सक्रिय सम्बन्ध बनाये रखते हैं, संगठित होते हैं, षड्यंत्र रचते हैं, पर्चे और अख़बार छापते हैं तथा शपथ लेते हैं कि अगले २४ घंटों में फिर से "शुरूआत" होगी, कि विजय सुनिश्चित है, और इस प्रत्याशा में सरकारी ओहदे बांटते हैं। स्वभावतया एक के बाद दूसरी निराशा हाथ लगती है जिसके लिए अनिवार्य ऐतिहासिक परिस्थितियों को नहीं, जिन्हें वे समझना नहीं चाहते, अपितु अलग-अलग व्यक्तियों की सांयोगिक ग़लतियों को दोषी ठहराया जाता है; पारस्परिक आक्षेप संचित होते जाते हैं और उनका परिणाम होता है आम कलह। ऐसा है १७६२ के शाही उत्प्रवासियों से लेकर आज तक के उत्प्रवासियों की सारी सोसायटियों का इतिहास; और जिन उत्प्रवासियों में समझ-बूझ तथा विवेक है, वे इस निरर्थक टंटेबाज़ी से मौक़ा मिलते ही उपयुक्त ढंग से अलग हो जाते हैं तथा उस ओर मुड़ते हैं जो अधिक उपयोगी होता है।

कम्यून के उपरान्त फ़्रांसीसी उत्प्रवासी भी इस अवश्यम्भावी नियति से नहीं बच सके। सर्वयूरोपीय कुत्सापूर्ण मुहिम के कारण, जिसने सब पर समान रूप से तथा विशेष रूप से लन्दन स्थित फ़्रांसीसी उत्प्रवासियों पर–जिनका लन्दन में इंटरनेशनल की जनरल कौंसिल के रूप में अपना समान केन्द्र था–प्रहार किया,

वे कुछ समय तक अपनी आन्तरिक टंटेबाज़ी को कम से कम बाहरी दुनिया से छुपाने के लिए विवश रहे। परन्तु पिछले दो वर्षों में उनके लिए अपने बीच विघटन की प्रक्रिया को छुपाना सम्भव नहीं रहा जो उनकी क़तारों के बीच तेज़ी से विस्तृत होती जा रही थी। सर्वत्र खुला कलह भड़क उठा। स्विट्ज़रलैंड में उत्प्रवासियों का एक हिस्सा ख़ास तौर से **मालोन** के, जो गुप्त सहबंध के संस्थापकों में से था, प्रभाव में बकूनिनपंथियों से मिल गया। फिर लन्दन में तथाकथित ब्लांकीपंथी इंटरनेशनल से अलग हो गये और उन्होंने एक स्वतंत्र ग्रूप बना लिया जिसने अपना नाम "क्रान्तिकारी कम्यून" रख लिया। आगे चलकर दूसरे बहुत-से ग्रूप प्रकट हुए जो निरन्तर एक दूसरे में मिलते गये तथा पुनर्गठित होते रहे परन्तु जो घोषणापत्रों तक के मामले में कोई काम की चीज़ तैयार नहीं कर सके। परन्तु ब्लांकीपंथियों ने *«Communeux»* के नाम एक अपील जारी की है जिसमें उन्होंने दुनिया का ध्यान अपने कार्यक्रम की ओर आकृष्ट किया है।

वे ब्लांकीपंथी इसलिए नहीं कहलाते कि वे ब्लांकी द्वारा गठित ग्रूप के लोग हैं; ३३ हस्ताक्षरकर्त्ताओं में से केवल चन्द ने ही कभी ब्लांकी से बातचीत की होगी। वे ब्लांकीपंथी इसलिए कहलाते हैं कि वे उनकी भावना के तथा उनकी परम्परा के अनुसार काम करना चाहते हैं। ब्लांकी मूलतया राजनीतिक क्रान्तिकारी हैं; वे समाजवादी तो केवल भावना के कारण हैं क्योंकि जनता के दुख-दर्द के प्रति उनकी सहानुभूति है। परन्तु उनके पास न तो कोई समाजवादी सिद्धान्त है और न सामाजिक सुधारों के लिए कोई व्यावहारिक प्रस्ताव। अपनी राजनीतिक गतिविधियों के मामले में वह मूलतया "कर्मशील व्यक्ति" थे जो यह विश्वास करते थे कि यदि एक छोटी-सी, सुसंगठित अल्पसंख्या ठीक मौक़े पर क्रान्तिकारी विप्लव को मूर्त रूप देने का यत्न करे तो चन्द आरम्भिक सफलताएं हासिल करके जनसमुदाय को अपने साथ कर सकती है और इस तरह विजयी क्रान्ति सम्पन्न कर सकती है। लूई फ़िलिप के समय वह स्वभावतया यह नाभिक एक गुप्त सोसायटी के रूप में संगठित करने में सफल रहे और इस संगठन का वही हाल हुआ जो आम तौर पर षड्यंत्रों का होता है—क्रान्ति की शीघ्र शुरूआत के निरन्तर कोरे वचनों के दिये जाने से लोग तंग आकर अन्ततः सारा धैर्य खो बैठे और विद्रोही हो गये और तब दो ही विकल्प रह गये—या तो षड्यंत्र को धराशायी होने दिया जाये या बिना किसी बाह्य कारण के विद्रोह शुरू कर दिया जाये। विद्रोह शुरू हुआ (१२ मई १८३९), परन्तु उसे तत्काल कुचल दिया

गया। प्रसंगतः ब्लांकी का षड्यंत्र एकमात्र ऐसा षड्यंत्र था जिसका पुलिस सुराग लगाने में ज़रा भी सफल नहीं हो सकी थी। इसलिए विद्रोह पुलिस के लिए बिना मेघ के वज्रपात जैसा था।—चूंकि ब्लांकी हर क्रान्ति को एक छोटी-सी क्रान्तिकारी अल्पसंख्या द्वारा राज्य पर्युत्क्षेपण मानते थे, इसलिए इसका स्वभावतया यह अर्थ निकलता है कि इसकी सफलता के बाद अनिवार्यतः अधिनायकत्व की स्थापना होगी—परन्तु ध्यान रहे, पूरे क्रान्तिकारी वर्ग का, सर्वहारा का अधिनायकत्व नहीं, वरन् उन चन्द लोगों का अधिनायकत्व जिन्होंने विद्रोह सम्पन्न किया तथा जो स्वयं आरम्भ से ही एक या कई व्यक्तियों के अधिनायकत्व के अन्तर्गत संगठित होते हैं।

ज़ाहिर है, ब्लांकी पुरानी पीढ़ी के क्रान्तिकारी हैं। क्रान्तिकारी घटना-प्रवाह के विषय में ये विचार, कम से कम जहां तक जर्मन मज़दूर पार्टी का सम्बन्ध है, बहुत पहले पुराने पड़ चुके हैं और फ़्रांस में भी उन्हें केवल कम समझदार अथवा अधिक अधीर मज़दूरों की स्वीकृति मिल सकती है। हम यह भी देखेंगे कि चर्चित कार्यक्रम में ये विचार निश्चित सीमाओं में बांधे गये हैं। परन्तु हमारे लन्दन के ब्लांकीपंथी भी इस सिद्धान्त से पथ-प्रदर्शन पाते हैं कि क्रान्तियां स्वयं नहीं होती हैं,—वे की जाती हैं; कि उन्हें एक अपेक्षाकृत छोटी-सी अल्पसंख्या पहले से तैयार की गयी योजना के अनुसार सम्पन्न करती है; और अन्ततः यह कि किसी भी समय "शीघ्र शुरूआत" हो सकती है।

ऐसे सिद्धान्तों के कारण लोग स्वभावतया उत्प्रवासियों की सारी आत्म-प्रवंचनाओं के ऐसे शिकार बन जाते हैं, जिनका उद्धार नहीं हो सकता और उन्हें मजबूरन एक के बाद दूसरी ग़लती के जाल में फंसना पड़ता है। सर्वोपरि वे "कर्मशील ब्लांकी" की भूमिका अदा करना चाहते हैं। परन्तु मात्र नेक इरादा यहां काफ़ी नहीं होता; ब्लांकी की क्रान्तिकारी सहजवृत्ति, शीघ्र निर्णय करने की उनकी योग्यता सब में नहीं होती; और हेमलेट कर्म की चाहे कितनी ही बात करे, वह हेमलेट ही रहेगा। यही नहीं, हमारे तैंतीस कर्मशील व्यक्ति जब देखते हैं कि इस क्षेत्र में करने के लिए वह कुछ भी नहीं है जिसे वे कर्म की बात कहते हैं तो हमारे ये तैंतीस ब्रूटस अन्तर्विरोध में, जो त्रासदीय से अधिक प्रहसनात्मक है, उस अन्तर्विरोध में फंस जाते हैं जिसमें उनकी उस उदास मुद्रा से त्रासदी नहीं बढ़ती है जिसे वे ऐसे धारण करते हैं मानो वे "बग़ल में छुरी दबाये मोरोस" हों, जो, प्रसंगतः, उनके दिमाग़ में पैदा तक नहीं होती। वे क्या कर रहे हैं? वे भविष्य के लिए नुस्खों की सूचियां तैयार करके कम्यून में भाग लेनेवाले लोगों

की क़तारों को शुद्ध (épuré) करने के लिए अगले "विस्फोट" की तैयारी कर रहे हैं; यही कारण है कि दूसरे उत्प्रवासी उन्हें शुद्ध (les purs) कहते हैं। मैं नहीं कह सकता कि यह उपाधि वे स्वयं ग्रहण करते हैं या नहीं, फिर भी यह उनमें से कुछ के लिए भी उपयुक्त नहीं बैठती। उनकी गुप्त बैठकें होती हैं, उनके निर्णय भी गुप्त रखे जाते हैं फिर भी वे अगली सुबह ही सारे फ़्रांसीसी मुहल्ले में प्रतिध्वनित हो उठते हैं। और जैसा कि ऐसे गम्भीर कर्मशील व्यक्तियों के साथ हमेशा होता है, जब उनके पास करने के लिए कुछ नहीं रह गया तो उन्होंने अपने एक उपयुक्त विरोधी, पेरिस के तुच्छ अख़बार के एक सबसे कुख्यात सदस्य, वेर्मेर्श नामक किसी व्यक्ति के साथ जो कम्यून के समय «Pére Duchêne»[77] अख़बार जो १७६३ में एबेर के अख़बार की घटिया नकल था, निकालता था, पहले व्यक्तिगत और फिर साहित्यिक वाद-विवाद छेड़ दिया। इन लोगों के नैतिक रोष के उत्तर में इस महानुभाव ने अपने एक पर्चे में उन्हें "ठग या ठगों का संगी" बताया तथा इन अपशब्दभरे आक्षेपों की झड़ी लगा दी—

"हर शब्द कूड़ादानी, और वह भी खाली नहीं"।*

और हमारे ये तैंतीस ब्रूटस ऐसे विरोधी से झगड़ा मोल लेना उपयुक्त पाते हैं!

यदि कोई चीज़ निश्चित है तो वह यह है कि थका देनेवाले युद्ध के बाद, पेरिस में भुखमरी के बाद, ख़ास तौर पर १८७१ में मई के दिनों के भयावह रक्तपातपूर्ण दिनों के बाद पेरिस के सर्वहारा को फिर से सशक्त होने के लिए काफ़ी लम्बे आराम की ज़रूरत है, कि विद्रोह की हर समयपूर्व चेष्टा का परिणाम केवल एक नयी और शायद पहले से भयंकर पराजय ही होगा। हमारे ब्लांकीपंथिया का भिन्न विचार है।

वेर्साई में राजतंत्रीय बहुमत का विघटन उनकी नज़र में जिस चीज़ का सूत्रपात करता है, वह है

"वेर्साई का पतन, कम्यून के लिए प्रतिशोध और यह कि हम एक महान ऐतिहासिक घड़ी की ओर, एक ऐसे बड़े संकट की ओर अग्रसर हो रहे हैं जब जनता, जो, लगता है, दम तोड़ रही है और जिसकी क़िस्मत में मौत बदी हुई है, नयी शक्ति के साथ अपनी क्रान्तिकारी अग्रगति पुनः आरम्भ करेगी।"

---

*हाइने, 'वाद-विवाद'।—सं०

दूसरे शब्दों में, पुनः शुरूआत, और यही नहीं शीघ्र ही शुरूआत होती है। "कम्यून के लिए प्रतिशोध"-सम्बन्धी आशा उत्प्रवासी भ्रम मात्र नहीं है, वह उन लोगों की आस्था का आवश्यक प्रतीक है जिन्होंने अपने दिमाग़ में यह बात बिठा ली है कि वे उस समय ही "कर्मशील लोग" होंगे जब क्रान्ति भड़काने की दृष्टि से करने को कुछ नहीं रह जाता।

यह पुराना राग है। चूंकि शुरूआत होनेवाली है, इसलिए वे अनुभव करते हैं कि "वक़्त आ गया है जब उत्प्रवासियों को, जिनमें ज़िंदगी की एक भी चिनगारी अब भी बाक़ी है, अपनी स्थिति निर्धारित करनी चाहिए।" और इस तरह ये तैंतीस हमें बताते हैं कि वे १) निरीश्वरवादी, २) कम्युनिस्ट तथा ३) क्रान्तिकारी हैं।

हमारे ब्लांकीपंथियों और बकूनिनपंथियों में एक समान बुनियादी गुण यह है कि वे सबसे दूरगामी, सबसे उग्र प्रवृत्ति का प्रतिनिधित्व करना चाहते हैं। प्रसंगतः यही कारण है कि ब्लांकीपंथी जहां लक्ष्य के मामले में बकूनिनपंथियों का विरोध करते हैं, वहां वे साधनों के बारे में प्रायः उनसे सहमत होते हैं। इसलिए सवाल निरीश्वरवाद के सम्बन्ध में दूसरे सब की तुलना में अधिक आमूल परिवर्तनवादी होने का है। हमारे ज़माने में निरीश्वरवादी होना ख़ुशक़िस्मती से कठिन नहीं है। यूरोपीय मज़दूर पार्टियों में निरीश्वरवाद कमोबेश स्वतःसिद्ध है भले ही कुछ यूरोपीय देशों में उसका स्वरूप उस स्पेनी बकूनिनपंथी के निरीश्वरवाद से मिलता हो जिसने घोषित किया था – भगवान पर विश्वास करना पूरे समाजवाद के विरुद्ध है परन्तु मरियम में विश्वास करना दूसरी बात है और हर शरीफ़ समाजवादी को उसमें विश्वास करना चाहिए। जहां तक जर्मन सामाजिक-जनवादी मज़दूरों का सम्बन्ध है, यह कहा जा सकता है कि उनके लिए निरीश्वरवाद की उपयोगिता ख़त्म हो चुकी है; यह विशुद्ध निषेध उन पर लागू नहीं होता क्योंकि वे भगवान पर विश्वास का अब सैद्धान्तिक नहीं, वरन् व्यावहारिक विरोध करते हैं; उन्होंने **बस भगवान को ताक पर रख दिया है;** वे यथार्थ संसार में रहते तथा सोचते हैं और इसलिए भौतिकवादी हैं। शायद यही बात फ़्रांस पर लागू होती है। यदि नहीं होती तो इससे आसान काम और कोई नहीं हो सकता कि मज़दूरों के बीच पिछली शताब्दी का शानदार फ़्रांसीसी भौतिकवादी साहित्य व्यापक पैमाने पर बांटा जाये जिसमें फ़्रांसीसी आत्मा ने रूप तथा अन्तर्वस्तु दोनों दृष्टि से उदात्त अभिव्यक्ति पायी है और जो उस समय के विज्ञान के स्तर को ध्यान में रखते हुए आज भी अन्तर्वस्तु की दृष्टि से अतीव उदात्त तथा रूप की दृष्टि से अद्वितीय है। परन्तु यह चीज़ हमारे ब्लांकीपंथियों को उपयुक्त सिद्ध

नहीं होती। वे सबसे ज़्यादा आमूल परिवर्तनवादी हैं, यह सिद्ध करने के लिए १७९३ की तरह भगवान का फ़तवा देकर अस्तित्व ख़त्म कर दिया जाता है–

"कम्यून अतीत की इस विपदा के हौवे को" (भगवान को), "उसकी वर्तमान विपदा के इस कारण को" (अस्तित्वहीन भगवान–कारण!) "सदा के लिए मुक्त कर देगी।–कम्यून में पुरोहितों के लिए कोई स्थान नहीं है, हर धार्मिक प्रवचन, हर धार्मिक संगठन पर पाबन्दी लगायी जानी चाहिए।"

और लोगों को par ordre du mufti* निरीश्वरवादी में परिणत करने की इस मांग पर कम्यून के दो सदस्यों के हस्ताक्षर हैं जिन्हें निश्चय ही यह पता लगाने के लिए काफ़ी मौक़ा मिला होगा कि पहले, कोई भी आज्ञप्ति काग़ज़ पर जारी की जा सकती है परन्तु इसका मतलब यह नहीं है कि उसका कार्यान्वयन होकर रहेगा; दूसरे, यह कि सताना अवांछनीय आस्थाओं को दृढ़ बनाने का सर्वोत्तम साधन है! इतना तो निश्चित है–ईश्वर की आज भी जो एकमात्र सेवा की जा सकती है, वह यह है कि निरीश्वरवाद को आस्था का अनिवार्य प्रतीक बना दिया जाये और सामान्यतया धर्म पर पाबन्दी लगाकर बिस्मार्क के चर्चविरोधी Kulturkampf[78] को भी मात दे दी जाये।

कार्यक्रम का दूसरा मुद्दा कम्युनिज़्म है।

यहां हम अपने को अधिक परिचित आधारभूमि पर पाते हैं क्योंकि हम यहां जिस जलयान में सफ़र कर रहे हैं, उसका नाम 'कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र' है जो फ़रवरी १८४८ में प्रकाशित हुआ था। १८७२ के शरद काल में ही इंटरनेशनल छोड़नेवाले पांच ब्लांकीपंथी एक समाजवादी कार्यक्रम अंगीकार कर चुके थे जो अपनी समस्त मूल विशेषताओं के मामले में वर्तमान जर्मन कम्युनिज़्म से मिलता था और उन्होंने इंटरनेशनल से नाता तोड़ने का एकमात्र आधार यह बनाया कि उसने इन पांच के ढंग से क्रान्ति के साथ खिलवाड़ करने से इन्कार कर दिया था। अब तैंतीस की कौंसिल ने भी इस कार्यक्रम को इतिहास पर उसके सारे भौतिकवादी दृष्टिकोण समेत अंगीकार कर लिया है हालांकि इसके ब्लांकीपंथी फ़्रांसीसी भाषा में अनुवाद की उन जगहों में काफ़ी सुधार की गुंजाइश है, जहां 'घोषणापत्र' के पाठ का लगभग शाब्दिक रूप प्रस्तुत नहीं किया गया है, उदाहरण के लिए यह वाक्य लें–

---

*मुफ़्ती के फ़तवे पर, ऊपर से आदेश पर।–सं०

"पूंजीपति वर्ग ने श्रम के शोषण से वे रहस्यमय पर्दे हटा दिये हैं जिनमें दासता के सारे रूपों की यह अन्तिम अभिव्यक्ति छुपी हुई थी–सरकारें, धर्म, परिवार, क़ानून, वर्तमान तथा अतीत दोनों के संस्थान इस समाज में, जो पूंजीपति तथा उजरती मज़दूरों के विरोध पर आश्रित हैं, अन्ततः उत्पीड़न के साधनों के रूप में प्रकट होते हैं जिनकी सहायता से पूंजीपति वर्ग अपने शासन की रक्षा करता है तथा सर्वहारा को कुचलता है।"

आइये, ज़रा इसकी तुलना 'कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र' के अनुभाग १ से करें, "एक शब्द में धार्मिक तथा राजनीतिक धोखे की टट्टी के पीछे छिपे शोषण के स्थान पर उसने नग्न, निर्लज्ज, प्रत्यक्ष और पाशविक शोषण की स्थापना की है। जिन पेशों के सम्बन्ध में अब तक लोगों के मन में आदर तथा श्रद्धा की भावना थी, उनका प्रभामंडल पूंजीपति वर्ग ने छीन लिया। वकील, डाक्टर, पुरोहित, कवि और वैज्ञानिक, सभी को उसने अपना वेतनभोगी उजरती मज़दूर बना दिया है। पूंजीपति वर्ग ने पारिवारिक सम्बन्धों के ऊपर से भावुकता का पर्दा उतार फेंका है और पारिवारिक सम्बन्ध को केवल द्रव्य के सम्बन्ध में बदल दिया है," आदि।*

परन्तु ज्यों ही हम सिद्धान्त की ऊंचाई से व्यवहार के क्षेत्र में नीचे उतरते हैं, इन तैंतीस सज्जनों की विशिष्टता सामने आ जाती है–

"हम इसलिए कम्युनिस्ट हैं कि हम बीच के पड़ावों में ठहरे बिना, समझौतेबाज़ी में पड़े बिना, जो केवल विजय को स्थगित ही करती है तथा दासता की अवधि बढ़ाती है, अपने लक्ष्य तक पहुंचना चाहते हैं।"

जर्मन कम्युनिस्ट इसलिए कम्युनिस्ट हैं कि वे तमाम बीच के पड़ावों और समझौतों के बीच, जिन्हें उन्होंने नहीं, वरन् ऐतिहासिक विकास ने रचा, अपने अन्तिम लक्ष्य को–वर्गों का उन्मूलन तथा ऐसे समाज की स्थापना जिसमें भूमि तथा उत्पादन साधनों पर कोई निजी स्वामित्व नहीं होगा–स्पष्ट रूप से देखते तथा उसका सदैव अनुसरण करते आये हैं। तैंतीस ब्लांकीपंथी कम्युनिस्ट इसलिए हैं कि वे कल्पना करते हैं कि वे जैसे ही बीच के पड़ावों तथा समझौतेबाज़ी

---

*देखें प्रस्तुत संस्करण, खण्ड १, भाग १।–सं०

को लांघने का इरादा कर लेंगे, मैदान फ़तह हो जायेगा और यदि – जैसा कि उनका दृढ़ विश्वास है – दो एक दिनों में "शुरूआत" होनेवाली है और वे कर्णधर हों तो परसों "कम्युनिज़्म लागू हो जायेगा" और यदि वे ऐसा तुरन्त नहीं कर सकते तो वे कम्युनिस्ट हैं ही नहीं।

अधीरता को आश्वस्तकारी सैद्धान्तिक तर्क के रूप में प्रस्तुत करना कैसा बचकाना भोलापन है!

अन्ततः हमारे तैंतीस "क्रान्तिकारी" हैं।

आडम्बरपूर्ण शब्दों के उपयोग के मामले में, जितना मानव के बूते की बात है, बकूनिनपंथी सब कुछ कर चुके हैं। परन्तु हमारे ब्लांकीपंथी उन्हें भी मात देने के लिए कर्त्तव्यबद्ध हैं। परन्तु कैसे? यह सुविदित है कि लिस्बन तथा न्यूयार्क से लेकर बुडापेस्ट तथा बेलग्रेड तक समस्त समाजवादी सर्वहारा ने पेरिस कम्यून की कार्रवाइयों का en bloc* उत्तरदायित्व ग्रहण किया। परन्तु यह हमारे ब्लांकीपंथियों के लिए काफ़ी नहीं है –

"जहां तक हमारा सम्बन्ध है, हम जनता के दुश्मनों को प्राणदंड देने के" (कम्यून के समय) "उत्तरदायित्व में अपने भाग का दावा करते हैं" (मारे गये लोगों की सूची संलग्न है), "हम उस आगज़नी के उत्तरदायित्व में अपने भाग का दावा करते हैं जिसने राजतंत्रवादी या पूंजीवादी दमन के हथियारों को नष्ट किया था अथवा लड़ाई में जुटे लोगों की रक्षा की थी।"

हर क्रान्ति के समय और निस्सन्देह दूसरे तमाम अवसरों की तरह बहुत-सारी ग़लतियां अपरिहार्य होती हैं; और जब जनता इतनी स्थिरचित्त हो जाती है कि घटनाओं की आलोचनात्मक ढंग से समीक्षा कर सके तो वह ये निष्कर्ष निकालती है – हमने ऐसे बहुत-से काम किये हैं जिन्हें यदि न किया जाता तो बेहतर होता और हम ऐसे बहुत-से काम करने में चूक गये हैं जिन्हें यदि किया गया होता तो बेहतर होता, और बात बिगड़ने का यही कारण है।

परन्तु आलोचनात्मक रुख़ के कितने अभाव की आवश्यकता होती है यह घोषित करने के लिए कि कम्यून से कोई ग़लती हुई ही नहीं, निश्चयपूर्वक यह कहने के लिए कि हर बार किसी मकान को लगायी गयी आग अथवा हर बार किसी बंधक बनाये हुए व्यक्ति को गोली से उड़ाने का मामला अक्षरशः वैसा

---

*समग्र रूप में। – सं०

था जैसा होना चाहिए था! क्या यह दावा यह कहने जैसा नहीं है कि मई माह के उस सप्ताह में लोगों ने उतने ही व्यक्तियों को–एक भी अधिक नहीं–गोली से उड़ाया जितनों को गोली से उड़ाना जरूरी था, उन्होंने ठीक उन मकानों को ही–एक भी ज्यादा नहीं–जलाया जितनों को जलाना जरूरी था? क्या यह दावा प्रथम फ़्रांसीसी क्रान्ति के विषय में यह कहने जैसा नहीं है–जितने भी लोगों के सिर काटे गये, उन्हें अपना दंड मिला था, पहले उन्हें जिनका सिर रोबेसपियेर ने कटवाया था और फिर स्वयं रोबेसपियेर को? ऐसी बचकाना बातें तब सामने आती हैं जब मूलतः अच्छे स्वभाव वाले लोग घोर नृशंस होने की इच्छा के वशीभूत हो जाते हैं।

चलिये, काफ़ी हो गया। उत्प्रवासियों की तमाम मूर्खतापूर्ण कार्रवाइयों और नन्हे कार्ल (या एदुअर्द?)* को भयावह दिखाने की हास्यकर चेष्टाओं के बावजूद हमें कार्यक्रम में कुछ निश्चित प्रगति अभिलक्षित होती है। यह पहला घोषणापत्र है जिसमें **फ़्रांसीसी मजदूर समकालीन जर्मन कम्युनिज्म के ध्येय के साथ एकजुट होते हैं।** इतना ही नहीं, ये मजदूर ऐसी प्रवृत्ति के हैं जो फ़्रांसीसियों को गोया क्रान्ति के लिए ही जन्मे लोग तथा पेरिस को क्रान्तिकारी यरूशलम मानते हैं। उन्हें वहां तक ले आने का निर्विवाद श्रेय **वाइयां** को है जो हस्ताक्षरकर्त्ताओं में से एक हैं तथा जिन्हें–जैसा कि सर्वविदित है–जर्मन भाषा तथा जर्मन समाजवादी साहित्य का अच्छा ज्ञान है। जर्मन समाजवादी मजदूर, जिन्होंने १८७० में यह सिद्ध कर दिया था कि उनके लिए किसी भी तरह का अंधराष्ट्रवाद विजातीय है, इसे एक शुभ लक्षण मान सकते हैं कि फ़्रांसीसी मजदूर सही सैद्धान्तिक स्थिति अपना रहे हैं भले ही ये सिद्धान्त जर्मनी से आते हों।

एंगेल्स द्वारा जून १८७४ में लिखित।

अंग्रेजी से अनूदित।

«*Der Volksstaat*» समाचारपत्र के अंक ७३ में २६ जून १८७४ को तथा फ़्रे० एंगेल्स की पुस्तक «*Internationales aus dem «Volksstaat» (1871—1875)*» बर्लिन में, १८६४ को प्रकाशित।

हस्ताक्षर – फ़्रे० एंगेल्स

---

*इशारा एदुअर्द वाइयां की ओर है।–सं०

रूस में सामाजिक सम्बन्धों के विषय में[79]

('उत्प्रवासी साहित्य' लेखमाला का पांचवां लेख)

श्री त्काचोव विषय विशेष के सम्बन्ध में जर्मन मज़दूरों से कहते हैं कि रूस के सम्बन्ध में मुझे "मामूली ज्ञान" तक नहीं है, कि मेरे पास सिवाय "अज्ञान" के और कुछ नहीं है; और इसलिए वह वास्तविक स्थिति समझाने, इस बात का कारण बताने के लिए कर्त्तव्यबद्ध हैं कि ठीक इसी मौक़े पर रूस में सामाजिक क्रान्ति बिल्कुल आसानी से, पश्चिमी यूरोप की तुलना में कहीं ज्यादा आसानी से क्यों सम्पन्न की जा सकती है।

"हमारे पास शहरी सर्वहारा नहीं है, यह निस्सन्देह सच है। पर हमारे पास पूंजीपति वर्ग भी तो नहीं है... हमारे मज़दूरों को केवल **राजनीतिक सत्ता** के विरुद्ध संघर्ष करना पड़ेगा–**पूंजी की शक्ति** तो हमारे यहां अभी भ्रूणावस्था में ही है। और, महानुभाव, आप इस बात से निस्सन्देह अवगत हैं कि पहले से टक्कर लेना दूसरे से कहीं ज्यादा आसान है।"[80]

आधुनिक समाजवाद जो क्रान्ति चाहता है, वह संक्षेप में पूंजीपति वर्ग पर सर्वहारा वर्ग की विजय तथा समस्त वर्ग-विभेदों को मिटाकर समाज के एक नये संगठन की स्थापना है। यह इस क्रान्ति को सम्पन्न करनेवाले सर्वहारा का ही नहीं, वरन् पूंजीपति वर्ग का भी तक़ाज़ा करता है जिसके हाथों में समाज की उत्पादक शक्तियां इस हद तक विकसित कर चुकी हैं कि वर्ग-विरोधों का अन्तिम रूप से उन्मूलन करना सम्भव हो जाता है। बर्बरों तथा अर्द्धबर्बरों तक के बीच भी इसी तरह कोई वर्ग-विभेद नहीं होते तथा हर जनता इस प्रकार की अवस्था से

बीच से गुज़री है। इस अवस्था की पुनर्स्थापना की बात हमारे दिमाग़ में इस सीधी-सादी वजह से नहीं आ सकती कि समाज की उत्पादक शक्तियां ज्यों-ज्यों विकसित होती हैं, इस अवस्था से लाज़िमी तौर पर वर्ग-विरोध पैदा होते हैं। समाज की उत्पादक शक्तियों के एक ख़ास स्तर पर ही, हमारी आधुनिक अवस्थाओं की दृष्टि से भी अधिक ऊंचे स्तर पर ही उत्पादन को इस हद तक बढ़ाना सम्भव होता है कि वर्ग-विभेदों के उन्मूलन में वास्तविक प्रगति हो सकती है, कि सामाजिक उत्पादन पद्धति में गतिरोध, यहां तक कि ह्रास लाये बिना स्थायी हो सकती है। परन्तु उत्पादक शक्तियां केवल पूंजीपति वर्ग के ज़रिए ही विकास के इस स्तर पर पहुंच सकी हैं। इसीलिए पूंजीपति वर्ग समाजवादी क्रान्ति की उतनी ही आवश्यक पूर्वशर्त है जितनी आवश्यक पूर्वशर्त स्वयं सर्वहारा वर्ग है। इसलिए जो व्यक्ति यह कहता है कि यह क्रान्ति ऐसे देश में आसानी से सम्पन्न की जा सकती है जहां **भले ही** सर्वहारा वर्ग न हो, वहां पूंजीपति वर्ग **भी नहीं** है, वह यही साबित करता है कि उसे अभी समाजवाद की वर्णमाला सीखनी होगी।

इसलिए रूसी मज़दूरों का—और ये मज़दूर, श्री त्काचोव के शब्दों में, "ज़मीन की काश्त करनेवाले हैं और इसलिए सर्वहारा नहीं, वरन् **मालिक** हैं",—काम आसान है क्योंकि उन्हें पूंजी की शक्ति के विरुद्ध नहीं, वरन् "केवल राजनीतिक सत्ता के विरुद्ध", रूसी राज्य के विरुद्ध संघर्ष करना होगा। और यह राज्य

"केवल बहुत दूर से एक शक्ति प्रतीत होता है... उसकी जनता के आर्थिक जीवन में जड़ें ही नहीं हैं; वह किसी ख़ास सामाजिक श्रेणी के हितों का मूर्त्त रूप नहीं है... आपके देश में राज्य कोई काल्पनिक शक्ति नहीं है। वह मज़बूती से पूंजी पर टिका हुआ है; वह अपने अन्दर" (!!) "कतिपय आर्थिक हितों को मूर्त्त रूप देता है... हमारे देश में स्थिति बिल्कुल उलट है—हमारे समाज के रूप के अस्तित्व का स्रोत राज्य, कहना चाहिए, हवा में झूलता राज्य है, जिसमें और विद्यमान सामाजिक व्यवस्था में कोई समानता नहीं है, जिसकी जड़ें अतीत में हैं, वर्तमान में नहीं।"

इस भ्रान्त धारणा पर कि आर्थिक हितों को राज्य की ज़रूरत होती है जिसका वे स्वयं निर्माण करते हैं ताकि **वह मूर्त रूप** प्राप्त कर सके, अथवा इस साहसिक दावे पर कि रूसी "सामाजिक रूप का" (जिसमें निस्सन्देह किसानों की सामुदायिक सम्पत्ति भी शामिल होनी चाहिए) "स्रोत राज्य है", और इस

अन्तर्विरोध पर कि इस राज्य में और विद्यमान सामाजिक व्यवस्था में, जो मानो उसकी ही रचना है, "कोई समानता नहीं है", हमें ज़रा भी समय नहीं गंवाना चाहिए। इसके बजाय हमें तुरन्त इस "हवा में झूलते राज्य" की जांच कर लेनी चाहिए जो एक भी सामाजिक श्रेणी के हितों का प्रतिनिधित्व नहीं करता।

यूरोपीय रूस में किसानों के पास १० करोड़ ५० लाख देस्यातीना और अभिजात वर्ग के पास (मैं यहां बड़े जागीरदारों को संक्षिप्तता की ख़ातिर यह नाम दे रहा हूं) १० करोड़ देस्यातीना ज़मीन है जिसमें से लगभग आधा भाग १५ हज़ार अभिजातों का है। फलस्वरूप प्रत्येक अभिजात के हिस्से में औसतन ३,३०० देस्यातीना ज़मीन आ जाती है। अतः किसानों की ज़मीन अभिजातों की ज़मीन से थोड़ी ही ज़्यादा है। तो देखा आपने, अभिजातों की रूसी राज्य में, जो आधे देश पर उनके स्वामित्व की रक्षा करता है, ज़रा भी दिलचस्पी नहीं है! चलिए, आगे बढ़ें। किसान अपने आधे भाग पर प्रति वर्ष १९ करोड़ ५० लाख रूबल लगान देते हैं तथा अभिजात १ करोड़ ३० लाख रूबल! अभिजातों की ज़मीन किसानों की ज़मीन से औसतन दुगुनी उपजाऊ है क्योंकि बेगारी के विमोचन के बन्दोबस्त के दौरान राज्य ने किसानों से ज़मीन का बड़ा ही नहीं, वरन् सबसे बढ़िया हिस्सा भी छीनकर उसे अभिजातों के हवाले कर दिया था और अपने पास रह जानेवाली यह सबसे ख़राब ज़मीन किसानों ने अभिजातों को सबसे बढ़िया ज़मीन देने की क़ीमत पर हासिल की।* और रूसी अभिजात वर्ग की रूसी राज्य में ज़रा भी दिलचस्पी नहीं है!

किसानों को – उनके विशाल जनसमुदाय को – विमोचन ने सबसे ज़्यादा तंगहाली तथा पूरी तरह असह्य स्थिति में डाल दिया है। उनकी भूमि का सबसे बड़ा तथा सबसे अच्छा हिस्सा ही नहीं छीना गया जिससे देश के सबसे उपजाऊ इलाक़ों में किसानों की ज़मीन इतनी कम – रूसी कृषि परिस्थितियों के अनुसार – है कि उससे उनका गुज़ारा नहीं हो सकता। उनसे उसके लिए कसकर क़ीमत ही नहीं वसूली गयी जिसके लिए राज्य ने उन्हें उधार दिया और जिसके लिए उन्हें अब राज्य के मूलधन की अदायगी ब्याज समेत किश्तों में करनी पड़ रही

अपवाद पोलैंड है जहां सरकार अपने प्रति शत्रुता रखनेवाले अभिजात वर्ग को बर्बाद करना तथा किसानों को अपनी ओर करना चाहती थी। («Der Volksstaat»* के पाठ में एंगेल्स की टिप्पणी, जिसे १८७५ तथा १८९४ के संस्करणों से निकाल दिया गया।)

है। भूमि कर का प्रायः पूरा बोझ उनपर थोपा ही नहीं गया है, इसके साथ ही अभिजात वर्ग उससे लगभग साफ़ बच गया है; अकेला यह भूमि कर ही कृषक की ज़मीन के किराये का पूरा मूल्य और उससे ज्यादा हड़प जाता है, तथा आगे के सारे भुगतान, जो किसान को करने पड़ते हैं तथा जिसकी हम आगे चर्चा करेंगे, उसकी आय के उस भाग से प्रत्यक्ष कटौतियां हैं जो उसकी मजदूरी है। इतना ही नहीं। भूमि कर के अलावा, राज्य द्वारा उधार दिये गये धन तथा ब्याज की अदायगी के अलावा हाल ही में स्थानीय प्रशासन के आरम्भ होने के बाद प्रान्तीय तथा ज़िला शुल्क भी लागू किये गये हैं। इस "सुधार" का सबसे बड़ा परिणाम किसान पर नये करों का नया बोझ लादा जाना था। राज्य ने अपनी आय को पूरी तरह अपने पास रखा, परन्तु अपने व्यय के अधिकांश भाग की पूर्ति का दायित्व प्रान्तों तथा ज़िलों को सौंप दिया जिन्होंने उसकी पूर्ति के लिए नये कर लगाये, और रूस में यह एक नियम है कि ऊंची श्रेणियां करों से प्रायः मुक्त रहती हैं जबकि किसान को लगभग सारे कर देने होते हैं।

इस तरह की स्थिति मानो सूदख़ोर के लिए विशेष रूप से पैदा की गयी है, और निम्न स्तर पर व्यापार करने में, व्यापार की अनुकूल परिस्थितियों और उससे अटूट रूप से जुड़ी ठगी से फ़ायदा उठाने में रूसियों में प्रायः बेजोड़ प्रतिभा होने के कारण—पीटर प्रथम ने बहुत पहले ही कहा था कि एक रूसी तीन यहूदियों को मात दे सकता है—सूदख़ोर हर जगह प्रकट हो जाता है। कर चुकाने का ज्योंही वक़्त आता है, सूदख़ोर, कुलक—बहुधा उसी ग्राम समुदाय का अमीर किसान—प्रकट हो जाते हैं तथा नक़द मुद्रा देने के लिए आगे बढ़ते हैं। किसान के पास हर सूरत में नक़द होना चाहिए और वह सूदख़ोर की शर्तें ज़रा भी बड़बड़ाहट किये बिना स्वीकार करने के लिए मजबूर होता है। इससे वह और ज्यादा शिकंजे में कस जाता है, और उसे अधिकाधिक नक़द मुद्रा की ज़रूरत पड़ती है। फ़सल की कटाई के समय अनाज का व्यापारी पहुंचता है; नक़द मुद्रा की आवश्यकता किसान को अनाज का, जिसकी उसे अपने तथा अपने परिवार का पेट भरने के लिए ज़रूरत होती है, एक हिस्सा बेचने के लिए मजबूर करती है। अनाज का व्यापारी झूठी अफ़वाहें फैलाता है, जिनसे क़ीमत घटती हैं, वह कम क़ीमत चुकाता है और यही नहीं अक्सर इसका एक हिस्सा भी सब तरह की महंगी चीज़ों के रूप में देता है क्योंकि रूस में जिन्स अदायगी प्रणाली बहुत विकसित है। यह सर्वथा स्पष्ट है कि रूस द्वारा बड़े पैमाने पर अनाज का निर्यात कृषक आबादी की प्रत्यक्ष भुखमरी पर आधारित है। किसान के शोषण का एक

और तरीक़ा यह है—सट्टेबाज़ सरकारी ज़मीन लम्बे अर्से के लिए पट्टे पर ले लेता है और बिना खाद डाले उसपर स्वयं तब तक काश्त करता है जब तक उससे अच्छी फ़सल हासिल होती रहती है; फिर वह उसे छोटे-छोटे टुकड़ों में बांटकर इस अनुपजाऊ ज़मीन को बहुत ऊंचे लगान पर पड़ोस के किसानों को दे देता है जो अपनी ज़मीन की आय से गुज़ारा नहीं कर पाते। ऊपर वर्णित अंग्रेज़ जिन्स अदायगी प्रणाली की जगह यहां हमारे सामने ठीक आयरिश बिचौलिया है। संक्षेप में संसार में रूस के अलावा और कोई ऐसा देश नहीं है जिसमें बुर्जुवा समाज की आदिम बर्बरता के होते हुए भी पूंजीवादी परजीवीपन इतना विकसित हो कि उसने अपने जाल के अन्दर पूरे देश को, पूरा जनसमूह ले लिया हो, फंसा लिया हो। और किसानों के इन सारे रक्त-चूषकों की रूसी राज्य के अस्तित्व में कोई दिलचस्पी नहीं है जिसके क़ानून तथा अदालतें इनके चतुराई भरे तथा मुनाफ़ादेह कारोबार की रक्षा करती हैं!

पीटर्सबर्ग, मास्को, ओदेस्सा का बड़ा पूंजीपति वर्ग, जो पिछले दशक में मुख्यतया रेलों के निर्माण की बदौलत अभूतपूर्व द्रुत गति से विकसित हुआ है तथा पिछले संकट का जिस पर ज़्यादा प्रभाव पड़ा है, अनाज, सन, फ़्लैक्स और चरबी के निर्यातक, जिनका सारा कारोबार किसानों की तंगहाली पर आधारित है, पूरे का पूरा बड़े पैमाने का रूसी उद्योग जो राज्य द्वारा प्रदान किये जानेवाले संरक्षण शुल्क की ही बदौलत अस्तित्वमान है—आबादी के इन महत्वपूर्ण तथा तेज़ी से बढ़ते जा रहे तत्वों की क्या रूसी राज्य के अस्तित्व में कोई दिलचस्पी नहीं है? अधिकारियों की उस अनगिनत फ़ौज की तो बात ही क्या जो पूरे रूस में फैली हुई है, उसे लूटती है तथा एक वास्तविक सामाजिक श्रेणी बन चुकी है। और जब श्री त्काचोव हमें आश्वस्त करते हैं कि रूसी राज्य की "जनता के आर्थिक जीवन में जड़ें ही नहीं हैं", कि वह "किसी ख़ास सामाजिक श्रेणी के हितों का मूर्त्त रूप नहीं है", कि वह "हवा में झूलता राज्य है", तो हमें ऐसे लगता है कि रूसी राज्य नहीं, वरन् यों कहें कि स्वयं श्री त्काचोव हवा में झूल रहे हैं।

यह सुस्पष्ट है कि भूदासत्व से मुक्ति के उपरान्त रूसी किसानों की हालत असाध्य हो गयी है, कि यह हालत देर तर क़ायम नहीं रखी जा सकती, कि यदि और किसी कारण नहीं तो अकेले इस कारण क्रान्ति रूस में आसन्न है। प्रश्न केवल इतना है—इस क्रान्ति का परिणाम क्या हो सकता है, क्या होगा? श्री त्काचोव कहते हैं कि यह सामाजिक क्रान्ति होगी। यह विशुद्ध पुनरुक्ति है।

प्रत्येक वास्तविक क्रान्ति इस अर्थ में सामाजिक क्रान्ति भी होती है कि वह एक नये वर्ग को सत्तारूढ़ करती है, उसे समाज को अपनी कल्पना के अनुसार नये सिरे से ढालने का मौक़ा देती है। परन्तु श्री त्काचोव यह कहना चाहते हैं कि यह क्रान्ति समाजवादी होगी, कि वह रूस में समाज का वह रूप प्रचलित कर देगी जो पश्चिम यूरोपीय समाजवाद का लक्ष्य है और ऐसा वह हम पश्चिम के लोगों से पहले ही कर देगी और वह भी समाज की ऐसी अवस्था में करेगी जिसमें सर्वहारा वर्ग तथा पूंजीपति वर्ग दोनों छितरे हुए रूप में प्रकट होते हैं तथा विकास की बहुत निचली मंज़िल में हैं। और यह इसलिए सम्भव है कि रूसी गोया समाजवाद के लिए ही पैदा हुए लोग हैं और उनके पास आर्तेल और भूमि का समान स्वामित्व है।

आर्तेल की श्री त्काचोव ने प्रसंगत: चर्चा की है, परन्तु उसे हम यहां इसलिए शामिल कर रहे हैं कि हर्ज़ेन के समय से ही बहुत-से रूसियों के लिए उसकी रहस्यमय भूमिका रही है। रूस में आर्तेल सहचारिता का व्यापकतम रूप, मुक्त सहकारिता का ऐसा सरलतम रूप रहा है जैसा शिकारी कबीलों में शिकार करने के लिए व्याप्त रहा है। नाम और अन्तर्वस्तु के मामले में वे स्लाव नहीं हैं, बल्कि तातार मूल के हैं। दोनों एक ओर किर्ग़िज़ और याकूत, आदि के बीच और दूसरी ओर लाप्पों, सामोयेदों तथा दूसरी फ़िनिश जातियों के बीच मिलते हैं।* यही कारण है कि आर्तेल दक्षिण-पश्चिम में नहीं, वरन् उत्तर और पूर्व में फ़िनों और तातारों के सम्पर्क में आने के कारण विकसित हुए। कठोर जलवायु विविध प्रकार की औद्योगिक गतिविधियों की अपेक्षा करती है और शहरी विकास की कमी तथा पूंजी के अभाव की पूर्ति, जहां तक सम्भव होता है, सहकारिता का यह रूप कर देती है। आर्तेल का एक सबसे अभिलाक्षणिक गुण – उसके सदस्यों का तीसरे पक्ष के प्रति सामूहिक उत्तरदायित्व – मूलत: प्राचीन जर्मनों के पारस्परिक उत्तरदायित्व (gewere) जैसे रक्त सम्बन्धों, रक्त प्रतिशोध, आदि पर आधारित था। यही नहीं, रूस में आर्तेल शब्द सामूहिक कार्यकलाप के लिए ही नहीं, वरन् सामूहिक संस्थान के लिए भी इस्तेमाल किया जाता है।

मज़दूरों के आर्तेलों में हमेशा एक बुज़ुर्ग (starosta, starshina) चुना जाता है जो ख़ज़ांची, मुनीम, आदि का, और जहां तक ज़रूरी होता है, मेनेजर

---

* आर्तेल के बारे में देखें *«Sbornik materialow ob Arteljach v Rossiji»* (रूस में आर्तेलों पर सामग्री का संग्रह), सेंट पीटर्सबर्ग, १८७३, भाग १। **(एंगेल्स की टिप्पणी)**

का काम करता है तथा विशेष वेतन पाता है। ऐसे आर्तेल निम्नलिखित मौक़ों पर स्थापित किये जाते हैं—

१. अस्थायी उद्यमों के लिए, जो काम पूरा होने पर भंग कर दिये जाते हैं;

२. एक ही व्यवसाय के सदस्यों के, उदाहरण के लिए माल-वाहक, आदि के लिए;

३. स्थायी उद्यमों के लिए, वास्तविक अर्थ में औद्योगिक प्रतिष्ठानों के लिए।

ये एक क़रार द्वारा स्थापित किये जाते हैं जिस पर सारे सदस्य हस्ताक्षर करते हैं। यदि ये सदस्य आवश्यक पूंजी—उदाहरण के लिए पनीर और मत्स्य उद्यमों के मामले में (जाल, नाव, आदि के लिए)—जमा नहीं कर पायें—और यह अक्सर होता है—तो आर्तेल सूदख़ोर के चंगुल में फंस जाता है जो कम पड़ गयी धनराशि बहुत ज़्यादा ब्याज पर देता है और उसके बाद काम से होनेवाली आय का बड़ा हिस्सा अपनी जेब में भर लेता है। परन्तु इनसे भी ज़्यादा शर्मनाक शोषण उन आर्तेलों का होता है जिनके सदस्य उजरती मज़दूरों की हैसियत में अपने को भाड़े पर मालिक के हवाले कर देते हैं। वे अपनी औद्योगिक गतिविधियों का स्वयं संचालन करते हैं तथा इस तरह पूंजीपति का देखभाल पर होनेवाला ख़र्चा बचा देते हैं। पूंजीपति मज़दूरों को रहने के लिए झोंपड़ियां तथा आजीविका के साधन क़र्ज़ पर दे देता है जिससे सबसे वीभत्स जिन्स अदायगी प्रणाली जन्म लेती है। आर्ख़ांगेल्स्काया गुबेर्निया में जंगलों में लकड़ी काटनेवालों, तारकोल उद्यमों में तथा साइबेरिया आदि में बहुत-से व्यवसायों में काम करनेवाले लोगों के साथ यही होता है (देखें फ़्लेरोव्स्की, 'रूस में मज़दूर वर्ग की दशा', सेंट पीटर्सबर्ग, १८६९)। इस तरह आर्तेल पूंजीपति द्वारा उजरती मज़दूर का शोषण सुगम बनाता है। दूसरी ओर ऐसे भी आर्तेल हैं जो ख़ुद उजरती मज़दूर रखते हैं जो उनके सदस्य **नहीं** होते।

इस तरह यह देखा जा सकता है कि आर्तेल ऐसी सहकारी सोसायटी है जो स्वतःस्फूर्त रूप से उत्पन्न हुई है और इसलिए अब भी बहुत अल्पविकसित है तथा इस कारण न तो वह विशिष्ट रूप से रूसी है और न स्लाव ही है। ऐसी सोसायटियां हर उस जगह बन जाती हैं जहां उनकी आवश्यकता होती है—उदाहरण के लिए स्विट्ज़रलैंड में डेरी फ़ार्मरों के बीच, इंगलैंड में मछुवाहों के बीच जहां वे अत्यन्त विविध रूप ग्रहण करती हैं। साइलेशियाई खुदाई मज़दूर (पोल नहीं, जर्मन), जिन्होंने पांचवें दशक में इतनी सारी जर्मन रेलवे लाइनों का

निर्माण किया था, वास्तविक आर्तेलों में संगठित थे। रूस में इस रूप का प्रभुत्व निस्सन्देह रूसी जनता में सहचारिता के प्रति दृढ़ आकर्षण की विद्यमानता सिद्ध करता है। परन्तु वह क़तई यह सिद्ध नहीं करता कि उनमें इस आकर्षण की मदद से आर्तेल से सीधे समाज की समाजवादी व्यवस्था में छलांग लगाने की योग्यता है। उसके लिए सर्वोपरि यह आवश्यक है कि स्वयं आर्तेल में विकास की क्षमता हो, कि वह अपने उस स्वयंस्फूर्त रूप का त्याग करे जिसमें – जैसा कि हम देख चुके हैं – वह मजदूर की कम तथा पूंजी की अधिक सेवा करता है; कि वह **कम से कम** पश्चिम यूरोपीय सहकारी सोसायटियों के स्तर तक ऊपर उठे। परन्तु यदि श्री त्काचोव की बात पर इस बार विश्वास (उपरिलिखित को देखते हुए यह यक़ीनन जोखिम भरा ही है) कर भी लिया जाये, तो बात कदापि ऐसी नहीं है। इसके विपरीत वह हमें ऐसे गर्व के साथ, जो उनके दृष्टिकोण का अत्यन्त अभिलाक्षणिक गुण है, यक़ीन दिलाते हैं –

"जहां तक रूस में कृत्रिम ढंग से रोपे जानेवाले जर्मन" (!) "नमूने की सहकारी तथा उधार सोसायटियों का सम्बन्ध है, उनकी ओर हमारे मजदूरों की बहुसंख्या ने पूर्ण उपेक्षा-भाव अपनाया है तथा वे लगभग सर्वत्र विफल रही हैं।"

आधुनिक सहकारी सोसायटी ने कम से कम यह सिद्ध तो कर दिया है कि वह स्वयं बड़े पैमाने के उद्योग को लाभप्रद ढंग से चलाने में समर्थ है (लंकाशायर में कताई तथा बुनाई)। आर्तेल यह करने में अब तक केवल असमर्थ ही नहीं रहा है; वह यदि और आगे विकसित नहीं होता तो बड़ा उद्योग उसे नष्ट तक कर देगा।

रूसी किसानों के सामुदायिक स्वामित्व का पता प्रशियाई सरकार के काउंसिलर हक्स्ट्हाउज़ेन ने १८४५ में लगाया था और उन्होंने दुनिया के सामने उसका ढिंढोरा पीटते हुए उसे सर्वथा अद्भुत वस्तु के रूप में प्रस्तुत किया था हालांकि उन्हें स्वयं अपनी वेस्टफ़ेलियन मातृभूमि में उसके पर्याप्त अवशेष मिल जाते, और एक सरकारी अधिकारी होने के नाते इस बारे में पूरी तरह जानना उनका फ़र्ज़ भी था।[81] हक्स्ट्हाउज़ेन से ही हर्ज़ेन को – ख़ुद रूसी जागीरदार – पहले-पहल पता लगा था कि उनके किसानों के पास साझी भूमि है और उन्होंने यह तथ्य रूसी किसानों को समाजवाद का सच्चा वाहक, जीर्णमान, गलित यूरोपीय पश्चिम के मजदूरों के विपरीत, जिन्हें पहले कृत्रिम रूप से समाजवाद हासिल

करने की अग्नि-परीक्षा के बीच से गुज़रना होगा, जन्मजात कम्युनिस्ट बताने के लिए इस्तेमाल किया। हर्ज़ेन से यह ज्ञान बकूनिन के पास और बकूनिन से त्काचोव के पास पहुंचा। आइये, ज़रा त्काचोव की बात सुनें—

"साझे स्वामित्व के सिद्धान्त... हमारी जनता की विशाल बहुसंख्या के रग-रग में हैं; कह सकते हैं कि वह अपने स्वभाव से ही, परम्परागत रूप से कम्युनिस्ट है। सामूहिक स्वामित्व का विचार रूसी जनता के पूरे विश्व-दृष्टिकोण से इस तरह गुंथा हुआ है" (यह हम अभी आगे देखेंगे कि रूसी किसान का विश्व कहां तक फैला हुआ है) "कि आज, जब सरकार यह समझने लगी है कि यह विचार 'सुव्यवस्थित समाज' के सिद्धान्तों से मेल नहीं खाता और इन सिद्धान्तों के नाम पर निजी स्वामित्व के विचार को जनता की चेतना तथा जीवन में बिठाना चाहती है, वह ऐसा केवल संगीन तथा कोड़े की मदद से ही कर सकती है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि हमारी जनता अपने अज्ञान के बावजूद पश्चिमी यूरोप के जनगण की तुलना में समाजवाद के कहीं समीप है हालांकि वे अधिक शिक्षित हैं।"

वास्तविकता यह है कि भूमि का सामुदायिक स्वामित्व स्वयं एक ऐसा संस्थान है जो भारत से लेकर आयरलैंड तक विकास के निचले स्तर वाले तमाम भारोपीय जनगण के बीच, यही नहीं भारत के प्रभाव में विकसित हो रहे मलयों के बीच—उदाहरण के लिए जावा में—पाया जाता है। १६०८ में ही नव विजित उत्तरी आयरलैंड में क़ानूनी रूप से प्रतिष्ठित भूमि पर सामुदायिक स्वामित्व ने अंग्रेज़ों को ज़मीन स्वामीहीन घोषित करने तथा उसे ताज के लिए ज़ब्त करने के बहाने का काम दिया। भारत में सामुदायिक स्वामित्व के रूपों की एक पूरी शृंखला वर्तमान काल तक अस्तित्व में है। जर्मनी में यह आम था; वहां अब भी यत्र-तत्र मिलनेवाली सामुदायिक भूमि उसके ही अवशेष हैं; उसके विशिष्ट अवशेष—सामुदायिक भूमि के समय-समय पर पुनर्विभाजन आदि—अब भी पाये जाते हैं, ख़ास तौर पर पहाड़ों में। प्राचीन जर्मन सामुदायिक स्वामित्व के विषय में अधिक सटीक संदर्भ तथा तफ़सीलें **मारेर** की विभिन्न रचनाओं में मिल जाती हैं जो आज भी इस प्रश्न के सम्बन्ध में क्लासिकीय हैं। पोलैंड तथा लघु रूस[82] समेत पश्चिम यूरोप में सामाजिक विकास की एक ख़ास मंज़िल के दौरान यह सामुदायिक स्वामित्व कृषि उत्पादन के लिए एक बेड़ी तथा ब्रेक बन गया और उसका अधिकाधिक उन्मूलन किया गया। दूसरी ओर वृहद रूस में (यानी ख़ासकर रूस में) यह आज भी बना हुआ है और इस तरह सर्वोपरि यह सिद्ध करता है कि

यहां कृषि उत्पादन तथा देहात में सामाजिक अवस्थाएं अब भी अविकसित हैं और स्थिति वस्तुत: ऐसी ही है। रूसी किसान केवल अपने समुदाय में रहता और काम करता है; शेष संसार का उसके लिए केवल उसी हद तक अस्तित्व है जिस हद तक वह उसके समुदाय के साथ हस्तक्षेप करता है। यह इस हद तक सच है कि रूस में «mir» शब्द के दो अर्थ हैं, एक ओर उसका अर्थ "विश्व" तथा दूसरी ओर उसका अर्थ "कृषक समुदाय" है। «Ves mir» – सारा विश्व – का किसान के लिए अर्थ समुदाय के सदस्यों की सभा है। इसलिए जब श्री त्काचोव रूसी किसानों के **विश्व-दृष्टिकोण** की बात करते हैं तो उन्होंने स्पष्टत: रूसी mir शब्द का ग़लत अनुवाद कर दिया है। अलग-अलग समुदायों का इस तरह एक दूसरे से पूरा अलगाव, जो पूरे देश में निस्सन्देह एक जैसे – परन्तु साझे बिल्कुल नहीं – हितों का सृजन करता है, **प्राच्य निरंकुशतावाद** का स्वाभाविक आधार है और भारत से लेकर रूस तक समाज के इस रूप ने – वह जहां कहीं प्रचलित रहा – सदैव उसे पैदा किया और उसमें सदैव अपना परिपूरक पाया है। सामान्य रूप में रूसी राज्य ही नहीं, बल्कि उसका विशिष्ट रूप, ज़ारशाही निरंकुशतावाद तक हवा में झूलता ही नहीं, बल्कि रूसी सामाजिक अवस्थाओं की, जिनमें तथा राज्य में श्री त्काचोव के अनुसार "कोई समानता नहीं है", अनिवार्य तथा तर्कसम्मत उपज है! **पूंजीवादी** दिशा में रूस का आगे विकास यहां भी रूसी राज्य द्वारा "संगीन और कोड़े" से हस्तक्षेप के बिना सामुदायिक स्वामित्व को धीरे-धीरे नष्ट कर देता। यह इस कारण और भी होता क्योंकि रूस में सामुदायिक स्वामित्व की भूमि पर किसान इस तरह मिलकर खेती नहीं करते कि उपज का ही बंटवारा हो सकता, जैसा कि भारत के कई भागों में आज भी होता है; इसके विपरीत ज़मीन समय-समय पर विभिन्न परिवारों के प्रमुखों के बीच बांटी जाती रहती है और हरेक अपने हिस्से के टुकड़े पर ख़ुद काश्त करता है। फलस्वरूप समुदाय के सदस्यों के बीच समृद्धि की मात्रा में बहुत अन्तर सम्भव है और वस्तुत: यह अन्तर है भी। लगभग सब जगह उनके बीच चन्द अमीर – यत्र-तत्र लखपति भी – किसान हैं जो सूदख़ोरी का काम करते हैं तथा किसानों के व्यापक जनसमुदाय का ख़ून चूसते हैं। इसे श्री त्काचोव से बेहतर और कोई नहीं जानता। जहां वह चाहते हैं कि जर्मन मज़दूर इस बात पर यक़ीन करें कि "सामूहिक स्वामित्व का विचार" रूसी किसानों के, इन जन्मजात, परम्परागत कम्युनिस्टों के बीच से केवल "संगीन और कोड़े" से ही ख़त्म किया जा सकता है, वहां वह अपनी रूसी पुस्तिका में पृष्ठ १५ पर लिखते हैं –

"किसानों के बीच से **सूदखोरों** (kulakov) का एक वर्ग—किसान अभिजात वर्ग—पैदा हो रहा है जो किसानों और ज़मींदारों की ज़मीन ख़रीदता और उसे लगान पर उठाता है।"

०

ये उसी तरह के रक्त-चूषक हैं जिनका हम ऊपर पर्याप्त विस्तार के साथ वर्णन कर चुके हैं।

सामुदायिक स्वामित्व पर सबसे ज़्यादा चोट की बेगारी से विमोचन ने। ज़मीन का बढ़िया तथा बेहतर हिस्सा ज़मींदारों को दे दिया गया; किसान के पास मुश्किल से गुज़ारा चलाने लायक़—और वह भी काफ़ी नहीं—ज़मीन बची। इसके अतिरिक्त वन ज़मींदारों के हवाले कर दिये गये; किसान ईंधन, औज़ारों तथा निर्माण के लिए पहले जो लकड़ी मुफ़्त ही प्राप्त कर लेते थे, उसे अब उन्हें ख़रीदना पड़ता है। इस तरह किसान के पास अब मकान, खाली ज़मीन के टुकड़े के अलावा और कुछ नहीं था और इस ज़मीन की काश्त के लिए उसके पास औज़ार नहीं थे; आम तौर पर उसके पास इतनी ज़मीन नहीं होती थी जो उसका और उसके परिवार का एक फ़सल से लेकर दूसरी फ़सल तक पेट भर सकती। ऐसी परिस्थितियों में, तथा करों और सूदख़ोरों के बोझ के नीचे ज़मीन का सामुदायिक स्वामित्व अब वरदान नहीं रह गया है, वह पांवों की बेड़ी बन गया है। किसान अक्सर ज़मीन छोड़कर सपरिवार या अकेले ही भ्रमणशील मज़दूरों के रूप में जीवनोपार्जन के लिए इस समुदाय से भाग जाते हैं।*

यह स्पष्ट है कि रूस में सामुदायिक स्वामित्व अपनी तरुणाई के दिन बहुत पीछे छोड़ आया है और सारे लक्षण इस बात के प्रमाण हैं कि वह अपने विघटन की ओर अग्रसर है। इसके बावजूद समाज के इस रूप को एक उच्चतर रूप में पहुंचाने की निर्विवाद रूप में सम्भावना विद्यमान है बशर्ते इसके लिए परिस्थितियों के परिपक्व होने तक यह टिका रहे, बशर्ते वह इस ढंग से विकसित होने की क्षमता प्रदर्शित कर सके कि किसान ज़मीन पर अलग-अलग नहीं, वरन् सामूहिक

---

*किसानों की दशा के बारे में देखें कृषि उत्पादन पर सरकारी आयोग की अधिकृत रिपोर्ट (१८७३) और साथ ही स्काल्दिन की कृति—'दूर-दराज़ के स्थानों में तथा राजधानी में', सेंट पीटर्सबर्ग, १८७०। दूसरी कृति एक नरम विचारों के अनुदारपंथी की है। (**एंगेल्स की टिप्पणी**)

रूप में काश्त करें ;* कि वह इस ढंग से उच्चतर रूप में पहुंचने की क्षमता प्रदर्शित करे कि यह रूसी किसानों के लिए पूंजीवादी छोटी जोतों की मध्यवर्ती मंज़िल से गुज़रे बिना सम्भव हो। इस सामुदायिक स्वामित्व के विघटन से पहले पश्चिम यूरोप में ऐसी विजयी सर्वहारा क्रान्ति की आवश्यकता है जो रूसी किसानों के लिए इस प्रकार के संक्रमण के लिए आवश्यक अवस्थाओं को, विशेष रूप से ऐसे भौतिक साधनों को प्रस्तुत करे जिनकी उसे अपनी पूरी कृषि-प्रणाली से लाज़िमी तौर पर जुड़ी हुई क्रान्ति सम्पन्न करने के लिए आवश्यकता पड़ेगी। इसलिए श्री त्काचोव का यह दावा सरासर बकवास है कि रूसी किसान "मालिक" होते हुए भी पश्चिमी यूरोप के सम्पत्तिहीन मज़दूरों की तुलना में "समाजवाद के अधिक समीप" हैं। बात ठीक इसके विपरीत है। यदि कोई चीज़ रूसी सामुदायिक स्वामित्व को अब भी बचा सकती है तथा उसे एक नये, वस्तुतः जीवन्त रूप में विकसित होने का मौक़ा दे सकती है तो वह पश्चिमी यूरोप में सर्वहारा क्रान्ति ही है।

श्री त्काचोव राजनीतिक क्रान्ति के प्रति उतना ही ग़ैरसंजीदा रुख़ अपनाते हैं जितना वह आर्थिक क्रान्ति के प्रति अपनाते हैं। वह कहते हैं कि रूसी जनता अपनी दासता के विरुद्ध "धार्मिक सम्प्रदायों... कर देने से इन्कार... डाकुओं के गिरोहों (जर्मन मज़दूरों को यह जानकर ख़ुशी होगी कि इस हिसाब से शिंडेरहान्स** जर्मन सामाजिक-जनवाद का पिता है)... आगज़नी... विद्रोहों के रूप में अनवरत विरोध करती है और इसलिए रूसी जनता को स्वभाव से क्रान्तिकारी माना जा सकता है।" इस तरह श्री त्काचोव को पूरा यक़ीन है कि "केवल इतना आवश्यक है कि कटुता तथा असन्तोष की सारी संचित भावना का, जो... हमारी जनता के मन में हमेशा खौलती रहती है, सर्वत्र एकसाथ बांध टूटे।" तब "क्रान्तिकारी शक्तियों की संघबद्धता **अपने आप** सम्पन्न हो जायेगी तथा संघर्ष का अन्त अनिवार्यतः जनता के ध्येय के पक्ष में होगा।

---

*पोलैंड में, विशेष रूप से ग्रोद्नो गुबेर्निया में, जहां अधिकांश ज़मींदार १८६३ के विद्रोह के फलस्वरूप बर्बाद हो गये थे, किसान अब बहुधा ज़मींदारों से जागीरें ख़रीदते या पट्टे पर लेते हैं और उसे टुकड़ों में बांटे बिना **सामुदायिक लाभार्थ** उस पर खेती करते हैं। और इन किसानों के पास शताब्दियों से कोई सामुदायिक स्वामित्व नहीं रहा तथा वे रूसी नहीं हैं अपितु पोल, लिथुआनियाई तथा बेलोरूसी हैं। (**एंगेल्स की टिप्पणी**)

कुख्यात जर्मन डाकू जोहन बुक्लेर का उपनाम। —सं०**

व्यावहारिक आवश्यकता, आत्म-रक्षा की सहजवृत्ति" तब सर्वथा स्वयं विरोधी ग्राम समुदायों के मध्य दृढ़ तथा अटूट सम्पर्क" का निर्माण कर देगी।

क्रान्ति की इससे अधिक सुगम तथा सुखद शर्तों पर कल्पना करना असम्भव है। तीन या चार स्थानों पर गोलियां चलाना आरम्भ कर दें, बाकी काम "सहज क्रान्तिकारिता", "व्यावहारिक आवश्यकता" तथा "आत्म-रक्षा की सहजवृत्ति "स्वयमेव" कर देंगी। यदि यह इतना आसान हो तो फिर यह सर्वथा अबोधगम्य है कि क्रान्ति बहुत पहले क्यों नहीं हुई थी, जनता क्यों मुक्त नहीं की गयी थी तथा रूस का आदर्श समाजवादी देश में क्यों रूपान्तरण नहीं हुआ था।

वस्तुतः बात बिल्कुल विपरीत है। यह सच है कि रूसी जनता ने, इस "सहज क्रान्तिकारी" ने **अभिजातों** के ख़िलाफ़, पृथक-पृथक अधिकारियों के ख़िलाफ़ अनेक अलग-थलग संघर्ष किये लेकिन **ज़ार के ख़िलाफ़ कभी नहीं**, सिवाय उन मौक़ों के जब **नक़ली ज़ार** जनता का अगुआ बनकर सिंहासन पर दावा करने लगते। येकातेरीना द्वितीय के समय अन्तिम बड़ा कृषक विद्रोह केवल इसलिए सम्भव हुआ कि येमेल्यान पुगाचोव ने दावा किया कि वह उसका पति, पीटर तृतीय है जिसे उसकी पत्नी ने क़त्ल नहीं कराया था, बल्कि सिंहासन से हटाकर जेल में बन्द कर दिया था और वह अब बच निकला। ज़ार रूसी किसान के लिए पार्थिव ईश्वर है: ईश्वर बहुत ऊपर तथा ज़ार बहुत दूर है,—किसान संकट की घड़ी में उसका ही नाम लेता है। इसमें कोई शक नहीं है कि कृषक आबादी के बहुत बड़े भाग की ख़ास तौर पर बेगारी से विमोचन के बाद ऐसी हालत हो गयी है जो उसे सरकार तथा ज़ार के विरुद्ध लड़ने के लिए अधिकाधिक विवश करती है। परन्तु श्री त्काचोव को "सहज क्रान्तिकारी"-सम्बन्धी अपनी परी-कथा के लिए श्रोताओं की तलाश और कहीं करनी होगी।

और **यदि** यह मान भी लिया जाये कि रूसी किसानों का व्यापक जनसमुदाय इतना सहज क्रान्तिकारी था, **यदि** हम यह कल्पना भी कर लें कि क्रान्तियां उसी तरह आदेश देकर तैयार की जा सकती हैं जिस तरह कोई बेलबूटेदार कपड़ा या समोवर तैयार किया जा सकता है, तब भी यह पूछा जा सकता है—क्या बारह साल से ऊपर के किसी व्यक्ति को क्रान्ति की धारा की ऐसे बचकाना ढंग से—जैसा कि हम यहां देख रहे हैं—कल्पना करना शोभा देता है? और याद रहे, इसे बकूनिन नमूने पर की गयी पहली क्रान्ति के, १८७३ की स्पेनी क्रान्ति की इतनी शानदार पराजय के बाद लिखा गया था। वहां भी विद्रोह अनेक स्थानों में एकसाथ शुरू किया गया था। वहां भी यह अनुमान लगाया गया था

कि व्यावहारिक आवश्यकता तथा आत्म-रक्षा की सहजवृत्ति विरोध करनेवाले समुदायों के बीच दृढ़ तथा अटूट सम्पर्क का निर्माण कर देंगी। परन्तु हुआ क्या? प्रत्येक समुदाय ने, प्रत्येक शहर ने केवल अपनी रक्षा की, पारस्परिक सहायता का सवाल ही नहीं उठा। और अपने साथ केवल तीन हज़ार लोगों को लेकर पाविया ने एक पखवाड़े में एक के बाद दूसरे शहर पर क़ब्ज़ा कर डाला और इस पूरी अराजकतावादी कीर्ति का अन्त कर डाला। (देखें, मेरा लेख 'कार्यरत बकूनिनपंथी', जहां इसपर विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला गया है)

रूस निर्विवाद रूप से क्रान्ति की देहरी पर खड़ा है। उसकी वित्तीय स्थिति सर्वथा विशृंखलित है। और ज्यादा कर लादने की गुंजाइश नहीं है, पुराने राजकीय ऋणों पर ब्याज नये ऋण लेकर चुकाया जा रहा है, और हर नया ऋण पहले से अधिक कठिनाई से प्राप्त हो रहा है; मुद्रा अब केवल रेलवे लाइनों के निर्माण के बहाने हासिल की जा सकती है। प्रशासन पहले ही ऊपर से नीचे तक भ्रष्ट है, अफ़सर लोग अपने वेतनों से अधिक चोरी, घूसखोरी तथा लूट-खसोट पर आश्रित हैं। पूरा कृषि उत्पादन – रूस के लिए अधिकतम महत्वपूर्ण – १८६१ की विमोचन व्यवस्था द्वारा पूरी तरह अस्त-व्यस्त हो चुका है; बड़े ज़मींदारों को पर्याप्त श्रमिक उपलब्ध नहीं हैं, किसानों के पास पर्याप्त भूमि नहीं है, वे करों के बोझ से झुके जा रहे हैं तथा सूदखोर उनका ख़ून बुरी तरह चूस रहे हैं; कृषि उत्पादन वर्ष प्रति वर्ष घटता जा रहा है। इन सब को बड़ी कठिनाई से और केवल बाहरी तौर पर एक ऐसा प्राच्य निरंकुशतावाद एक सूत्र में बांधे हुए है जिसकी स्वेच्छाचारिता की पश्चिम में हम कल्पना तक नहीं कर सकते; यह ऐसा निरंकुशतावाद है जिसका प्रबुद्ध वर्गों, विशेष रूप से तेज़ी से विकसित हो रहे राजधानी के पूंजीपति वर्ग के विचारों के साथ दिन प्रति दिन तीक्ष्ण टकराव ही नहीं हो रहा है अपितु जो अपने वर्तमान वाहक के रूप में अपना होश भी खो बैठा है, वह आज उदारतावाद को रियायतें देता है तो कल डर के मारे उन्हें रद्द कर देता है तथा इस तरह अपने को अधिकाधिक बदनाम कर रहा है। इसके साथ ही राजधानी में संकेंद्रित राष्ट्र के प्रबुद्ध वर्ग में यह अनुभूति बढ़ रही है कि यह स्थिति टिकनेवाली नहीं है, कि क्रान्ति आसन्न है, परन्तु साथ ही यह भ्रम भी विद्यमान है कि इस क्रान्ति को सुगम वैधानिक रास्ते में ले जाना सम्भव है। यहां क्रान्ति की सारी अवस्थाएं जुड़ी हुई हैं; राजधानी के ऊपरी वर्गों द्वारा तथा सम्भवतः स्वयं सरकार द्वारा शुरू की गयी इस क्रान्ति को किसानों को तेज़ी से आगे, पहले वैधानिक दौर के पार पहुंचाना होगा; यह क्रान्ति यदि

और किसी कारण नहीं तो कम से कम इस कारण यूरोप के लिए सबसे अधिक महत्व की होगी कि वह पूरे यूरोपीय प्रतिक्रियावाद की आरक्षित शक्ति को, जो अब तक अक्षुण्ण है, एक ही झटके में नष्ट कर देगी। यह क्रान्ति निस्सन्देह पास आती जा रही है। केवल दो घटनाएं इसे विलम्बित कर सकती हैं–तुर्की या आस्ट्रिया के विरुद्ध कामयाब लड़ाई जिसके लिए धन तथा दृढ़ संघबद्धता आवश्यक हैं, अथवा... विद्रोह का समयपूर्व प्रयास जो सम्पत्तिधारी वर्गों को फिर से सरकार की बांहों में पहुंचा देगा।

एंगेल्स द्वारा अप्रैल १८७५ में लिखित। अंग्रेज़ी से अनूदित।

१६, १८ और २१ अप्रैल १८७५ को «*Der Volksstaat*» के अंक ४३, ४४ और ४५ में, तथा एक पृथक पुस्तिका «*Soziales aus Rußland*», लाइपज़िग, १८७५ तथा «*Internationales aus dem «Volksstaat»*, बर्लिन, १८६४ में प्रकाशित।

हस्ताक्षर – **फ़्रे० एंगेल्स**

'रूस में सामाजिक सम्बन्धों के विषय में' लेख का परिशिष्ट

मुझे अपनी बात एक भूल सुधारने के साथ शुरू करनी चाहिए। बात यह है कि श्री त्काचोव–सही-सही कहा जाये–बकूनिनपंथी यानी अराजकतावादी नहीं थे, वह "ब्लांकीपंथी" होने का दावा करते थे। यह भूल सर्वथा स्वाभाविक थी क्योंकि श्री त्काचोव ने पश्चिम यूरोप के समक्ष उस समय के रूसी उत्प्रवासियों की रीति के अनुसार स्वयं घोषणा की थी कि उनकी सारे रूसी उत्प्रवासियों के साथ हमदर्दी है, साथ ही उन्होंने अपने एक पर्चे में मेरे द्वारा की गयी आलोचना के सिलसिले में बकूनिन और उनके संगी-साथियों की वकालत की थी और यह काम इस तरह किया मानों यह आलोचना स्वयं उनके विरुद्ध लक्षित हो।

रूसी कम्युनिस्ट ग्राम समुदाय के विचार, जिसकी उन्होंने मेरे साथ वाद विवाद में हिमायत की, मूलतः स्वयं हर्ज़ेन के थे। हर्ज़ेन ने, इस सर्वस्लाववादी लेखक ने, जिसे फुलाकर क्रान्तिकारी का रूप दिया गया, हक्स्टहाउज़ेन की 'रूस

का अध्ययन' शीर्षक कृति से यह सीखा था कि उसकी जागीर में काम करनेवाले भू-दासों का भूमि पर निजी स्वामित्व नहीं था तथा वे समय-समय पर कृषि भूमि तथा चरागाही ज़मीन का अपने बीच पुनर्वितरण किया करते थे। लेखक होने के नाते उन्हें वह चीज़ सीखने की आवश्यकता नहीं थी जो शीघ्र सर्वविदित हो गयी, अर्थात् भूमि का सामुदायिक स्वामित्व भूधारण का ऐसा रूप है जो आदिम काल में जर्मनों, केल्टों, हिन्दुस्तानियों, संक्षेप में सारे इंडो-यूरोपियन जनगण में प्रचलित था, जो हिन्दुस्तान में अब भी प्रचलित है, जिसे आयरलैंड और स्कॉटलैंड में हाल ही में जबरन ख़त्म किया गया तथा जर्मनी में आज भी यत्र-तत्र देखने को मिलता है, कि यह भूधारण का लुप्त हो रहा रूप है जो वस्तुतः विकास की एक ख़ास मंज़िल में सारे जनगण के बीच विद्यमान एक समान घटना-व्यापार है। परन्तु सर्वस्लाववादी होने के नाते हर्ज़ेन ने जो हद से हद कथनी में समाजवादी होने का दावा करता था, ग्राम समुदाय को एक ऐसे नये बहाने के रूप में देखा जिससे वह सड़े-गले पश्चिम के सामने अपना "पुनीत" रूस और उसका मिशन – इस पूर्णतः भ्रष्ट तथा पुराने पड़ चुके पश्चिम का कायाकल्प करने तथा आवश्यक होने पर बल-प्रयोग के ज़रिए उसका पुनरुज्जीवन करने का मिशन – और भी तेज़ रोशनी में दिखा सकें। जो अपनी तमाम कोशिशों के बावजूद जर्जर फ़्रांसीसी और अंग्रेज़ नहीं कर पाते, वह रूसियों के पास अपने घर में तैयार किया-कराया है।

"ग्राम समुदाय को क़ायम रखना तथा व्यक्ति को स्वतंत्रता देना, राष्ट्रीय एकता बरक़रार रखते हुए ग्राम तथा वोलोस्त का स्वशासन शहरों और पूरे राज्य तक फैलाना, – ऐसा है रूस के भविष्य का प्रश्न, अर्थात् ठीक उस सामाजिक विप्रतिषेध का प्रश्न जिसके समाधान का विषय पश्चिम के मस्तिष्कों पर छाया हुआ है और जो उन्हें परेशान कर रहा है।" (हर्ज़ेन, लिंटन के नाम पत्र)

तो हो सकता है कि रूस में राजनीतिक प्रश्न अब भी विद्यमान हो, परन्तु उसके लिए "सामाजिक प्रश्न" हल हो चुका है।

हर्ज़ेन का अंधानुसरण करनेवाले त्काचोव ने भी वही सहज दृष्टिकोण अपनाया। यद्यपि वह १८७५ में यह दावा करने की स्थिति में नहीं रहे कि रूस में "सामाजिक प्रश्न" हल हो चुका है, उन्होंने इतना ज़रूर कहा कि रूसी किसान, सारे के सारे जन्मजात कम्युनिस्ट, समाजवाद के बहुत समीप हैं और यही नहीं, पश्चिम यूरोप के बेचारे, अभागे सर्वहाराओं की तुलना में उनका जीवन कहीं बेहतर

है। यदि फ्रांसीसी जनतंत्रवादी अपनी एक शताब्दी की क्रान्तिकारी गतिविधि के बल पर अपनी जनता को गोया राजनीतिक कार्यकलाप के लिए जन्मे लोग मानते थे तो उस ज़माने के बहुत-से रूसी समाजवादियों ने रूस को गोया सामाजिक कार्यकलाप के लिए जन्मी जनता घोषित कर दिया था; पश्चिमी यूरोपीय सर्वहारा का संघर्ष पुराने आर्थिक संसार का नवीकरण करने नहीं जा रहा था; नहीं, यह नवीकरण तो रूसी कृषक समुदाय की ठीक गहराइयों से आनेवाला था। मेरी आलोचना इसी बचकाना दृष्टिकोण की ओर लक्षित थी।

परन्तु रूसी ग्राम समुदाय ने उन लोगों का ध्यान आकृष्ट किया, उन लोगों से मान्यता प्राप्त की जो हर्ज़ेनों तथा त्काचोवों से कहीं ऊंचे हैं। उनमें एक थे निकोलाई चेर्निशेव्स्की, वह महान चिन्तक, जिनका रूस इतना ऋणी है और साइबेरिया में याकूतों के बीच दीर्घकाल तक निर्वासन के कारण जिनका शनैः शनैः क्षय अलेक्सान्द्र द्वितीय "मुक्तिदाता" की स्मृति पर हमेशा के लिए कलंक का टीका बना रहेगा।

रूस और पश्चिमी यूरोप के बीच बौद्धिक अवरोध के कारण चेर्निशेव्स्की मार्क्स की कोई कृति नहीं पढ़ पाये थे और जब 'पूंजी' प्रकाशित हुई तो उन्हें स्रेद्ने-विल्यूइस्क में याकूतों के बीच रहते एक लम्बा अर्सा हो चुका था। उनका पूरा आत्मिक विकास इस बौद्धिक अवरोधक द्वारा पैदा की गयी परिस्थितियों के ही अन्तर्गत हो सकता था। ज़ारशाही सेंसर ने जो कुछ रूस के अन्दर नहीं आने दिया, उसका, जहां तक रूस का सम्बन्ध था, प्रायः अस्तित्व ही नहीं था। इसलिए यदि हमें चेर्निशेव्स्की की रचनाओं में कहीं कोई कमज़ोरियां नज़र आती हैं तो आश्चर्य इस पर होता है कि उनकी कृतियों में इनकी बहुलता क्यों नहीं है।

चेर्निशेव्स्की ने भी रूसी ग्राम समुदाय को समकालीन सामाजिक रूप से विकास की एक ऐसी नयी मंज़िल में संक्रमण के रूप में देखा था जो एक ओर रूसी ग्राम समुदाय से और दूसरी ओर अपने वर्ग-विरोधों समेत पश्चिमी यूरोपीय पूंजीवादी समाज से ऊंची है। रूस के पास ऐसा साधन है, जबकि पश्चिम के पास नहीं है, यही चेर्निशेव्स्की की राय में रूस को श्रेष्ठ स्थिति प्रदान करती है।

"व्यक्ति के अधिकारों का असीमित विस्तार पश्चिमी यूरोप में बेहतर व्यवस्था की स्थापना के मार्ग में बहुत बड़ी बाधा बन रहा है... व्यक्ति जिसके उपयोग का आदी हो गया है, उसके एक नगण्य भाग तक का परित्याग करना सुगम नहीं

है और पश्चिम में व्यक्ति असीमित वैयक्तिक अधिकारों के उपयोग का आदी है। पारस्परिक रियायत की उपयोगिता तथा आवश्यकता को केवल कटु अनुभव तथा लम्बे चिंतन से ही सीखा जा सकता है। पश्चिम में आर्थिक सम्बन्धों की बेहतर प्रणाली बलिदानों से जुड़ी हुई है और यही कारण है कि उसे स्थापित करना कठिन है। वह अंग्रेज़ तथा फ्रांसीसी किसानों की आदतों के विरुद्ध है।" परन्तु "जो एक देश में कल्पनाविलास प्रतीत होता है, वह दूसरे में एक तथ्य के रूप में विद्यमान है... अंग्रेज तथा फ्रांसीसी जिन आदतों को अपने राष्ट्रीय जीवन में अपनाना अत्यन्त कठिन पाते हैं वे वस्तुतः रूसियों के राष्ट्रीय जीवन में तथ्य के रूप में विद्यमान हैं... इस समय पश्चिम इतने कठिन तथा लम्बे मार्ग पर चलते हुए जिस व्यवस्था को लाने के लिए इच्छुक है, वह हमारे देश में ग्राम समुदाय के सशक्त रीति-रिवाजों में अब भी विद्यमान है... हम देख रहे हैं कि सामुदायिक भू-स्वामित्व के उन्मूलन के पश्चिम में कितने दुःखद परिणाम निकले हैं तथा पश्चिम के जनगण को वह लौटाना कितना कठिन है जिसे वे खो बैठे हैं। पश्चिम का उदाहरण हमारी नज़र से ओझल नहीं होना चाहिए।" (चेर्निशेव्स्की, कृतियां, जेनेवा संस्करण, खंड ५, पृष्ठ १६-१९, प्लेख़ानोव की कृति 'हमारे मतभेद', जेनेवा, १८८५ से उद्धृत)

वह उराल के कज़ाक़ों की चर्चा करते हैं जो मिलकर खेती करते थे तथा उत्पादों को पृथक-पृथक परिवारों में बांट लेते थे–

"यदि उराल के लोग अपनी वर्तमान व्यवस्था के अन्तर्गत उस समय तक रह जायें जब कृषि मशीनों का प्रचलन शुरू हो जायेगा तो उन्हें अपने बीच ऐसी व्यवस्था के बने रहने में बहुत ख़ुशी होगी जो सैकड़ों देस्यातीना भूमि को अपनी परिधि में लानेवाली बड़े पैमाने की खेती के लिए आवश्यक मशीनों का उपयोग करने देगी।" (वहीं, पृष्ठ १३१)

परन्तु यह नहीं भुलाया जाना चाहिए कि उराल के कज़ाक़, जिनके यहां ज़मीन पर सामुदायिक काश्त होती है तथा जिसकी फ़ौजी कारणों से रक्षा की जा रही है (आख़िर हमारे यहां भी तो बैरक कम्युनिज़्म है), रूस में बाक़ी सब लोगों से भिन्न हैं, वे मोसेल में बिल्कुल हमारे गृहस्थ समुदायों (Gehöferschaften) तथा उनके समय-समय पर हो रहे पुनर्वितरण की तरह हैं। और यदि वर्तमान व्यवस्था मशीनों के प्रचलन तक अक्षुण्ण रह जाती है तो लाभ उन्हें नहीं, वरन् रूसी फ़ौजी राजकोष को होगा जिसके वे चाकर हैं।

कुछ भी हो, तथ्य यह है–जहां पश्चिमी यूरोप में पूंजीवादी समाज विघटित हो रहा है और स्वयं अपने विकास के अपरिहार्य विरोधों के कारण उसके लिए

विनाश का खतरा पैदा हो गया है, वहां रूस में लगभग आधी ज़मीन साझी सम्पत्ति के रूप में ग्राम समुदायों के हाथ में है। यदि पश्चिम में समाज के एक नये संगठन के ज़रिए विरोधों के समाधान का अर्थ एक आवश्यक शर्त के रूप में यह है कि उत्पादन के तमाम साधनों को और फलस्वरूप ज़मीन को भी समग्र समाज के स्वामित्व के अन्तर्गत कर दिया जाये तो सवाल उठता है कि इस साझे स्वामित्व का जिसे पश्चिम में अभी स्थापित किया जाना है, तथा उस सामुदायिक स्वामित्व में क्या सम्बन्ध है जो पहले से या यों कहें कि अब भी रूस में विद्यमान है? क्या वह ऐसे जन आन्दोलन के लिए प्रस्थान-बिन्दु का काम दे सकता है जो पूरी पूंजीवादी अवधि को लांघकर रूसी किसान कम्युनिज़्म को पूंजीवादी युग की समस्त तकनीकी उपलब्धियों से समृद्ध करके तुरन्त उत्पादन के तमाम साधनों के मामले में आधुनिक समाजवादी सामुदायिक स्वामित्व में रूपान्तरित करेगा? अथवा जैसा कि मार्क्स ने आगे उद्धृत की गयी चिट्ठी* में चेर्निशेव्स्की के विचारों को निरूपित किया था, "क्या रूस को, जैसा कि उसके उदारतावादी अर्थशास्त्री चाहते हैं, ग्राम समुदाय को नष्ट कर काम शुरू करना चाहिए ताकि वह पूंजीवादी व्यवस्था में प्रवेश कर सके अथवा क्या वह अपनी ऐतिहासिक अवस्थाओं का विकास करते हुए इस व्यवस्था के फलों को उसकी यातनाएं झेले बिना प्राप्त कर सकता है?"

प्रश्न का इस तरह प्रस्तुतीकरण ही बताता है कि उसका समाधान कहां निहित है। रूसी समुदाय शताब्दियों से विद्यमान रहा है और इस पूरे अर्से में उसने अपने अन्दर एक बार भी ऐसा उत्प्रेरक उत्पन्न नहीं किया है जो उसके सामुदायिक स्वामित्व के उच्च रूप में रूपान्तरण कर सकता जैसा कि जर्मन मार्क, केल्ट क़बीले तथा भारतीय और आदिम कम्युनिस्ट व्यवस्था वाले दूसरे समुदायों के साथ हुआ। ये सब समय के प्रवाह के साथ तथा माल के उत्पादन तथा विनिमय के प्रभाव के अन्तर्गत, जो अलग-अलग परिवारों तथा व्यक्तियों पर छाया हुआ था तथा जो उनके अन्दर विकसित हुआ तथा जिससे वे धीरे-धीरे ओत-प्रोत होते चले गये, अधिकाधिक अपने कम्युनिस्ट स्वरूप का चोगा उतारते गये तथा स्वतंत्र भू-स्वामियों के समुदायों के रूप में एक दूसरे से अलग-अलग होते गये। इसलिए यदि यह प्रश्न करना ही सम्भव हो कि क्या इससे भिन्न और बेहतर भविष्य रूसी समुदाय की प्रतीक्षा कर रहा है तो इसका कारण स्वयं इसके अन्दर

* देखें प्रस्तुत खण्ड। –सं०

नहीं, वरन् इस तथ्य में ही निहित है कि एक यूरोपीय देश में उसने अपनी सापेक्ष जीवन-शक्ति ऐसे समय तक बरक़रार रखी है जब पश्चिमी यूरोप में सामान्यतया माल उत्पादन ही नहीं, वरन् उसके सर्वोच्च तथा अन्तिम रूप का – पूंजीवादी उत्पादन का – स्वयं उसके द्वारा निर्मित उत्पादक शक्तियों से अन्तर्विरोध हो गया है, जब उसने इन शक्तियों को संचालित करने में अपने को असमर्थ सिद्ध कर दिया है, और जब वह इन आन्तरिक अन्तर्विरोधों तथा तदनुरूपी वर्ग विरोधों द्वारा बर्बाद किया जा रहा है। अकेले इसी चीज़ से यह निष्कर्ष निकलता है कि रूसी समुदाय के अन्तत: रूपान्तरण की पहल कभी स्वयं उसकी ओर से नहीं आयेगी, वरन् केवल पश्चिम के औद्योगिक सर्वहारा की ओर से आयेगी। पश्चिमी यूरोपीय सर्वहारा की पूंजीपति वर्ग पर विजय तथा उसके फलस्वरूप पूंजीवादी उत्पादन के स्थान पर समाज द्वारा नियंत्रित अर्थतंत्र – यही है रूसी समुदाय को विकास की उसी मंज़िल पर पहुंचाने के लिए आवश्यक पूर्वशर्त।

दरअसल क़बायली प्रणाली से चले आनेवाले कृषक कम्युनिज़्म ने अपने अन्दर से अपने विघटन के सिवाय कभी और कुछ पैदा नहीं किया है। स्वयं रूसी कृषक समुदाय १८६१ तक इस तरह के कम्युनिज़्म का अपेक्षाकृत दुर्बल रूप था; ज़मीन की साझी काश्त को, जो भारत के कुछ भागों में तथा दक्षिण स्लाव गृह समुदायों (zadruga) के बीच अब भी प्रचलित है और जो शायद रूसी समुदाय का पूर्वज है, पृथक-पृथक परिवारों द्वारा काश्त के लिए जगह खाली करनी पड़ी; सामुदायिक स्वामित्व अब भी केवल अत्यन्त भिन्न-भिन्न स्थानों में भिन्न कालान्तरों में होनेवाले भूमि के पुनर्वितरण में प्रकट होता था। ये पुनर्वितरण एक बार स्वयं अथवा किसी विशेष आज्ञप्ति के ज़रिए लुप्त हो जायें तो आपके सामने छोटे भूमिधारी किसानों का गांव रह जाता है।

परन्तु मात्र यह एक तथ्य कि रूसी ग्राम समुदाय के साथ-साथ विद्यमान पश्चिमी यूरोप का पूंजीवादी उत्पादन अपनी मृत्यु की घड़ी के समीप पहुंचता जा रहा है और ख़ुद उसके भ्रूण में उत्पादन का एक ऐसा नया रूप है जिसके अन्तर्गत सामुदायिक स्वामित्व के नाते उत्पादन साधनों का योजनाबद्ध उपयोग होगा, मात्र यह तथ्य रूसी समुदाय को इतनी शक्ति नहीं देगा जो उसे अपने आप से एक नया सामाजिक रूप तैयार करने में मदद दे सके। स्वयं पूंजीवादी समाज द्वारा यह क्रान्ति सम्पन्न किये जाने से पहले वह पूंजीवादी समाज की विशाल उत्पादक शक्तियों को कैसे सामुदायिक स्वामित्व तथा सामाजिक साधन के रूप में अपने हाथों में ले सकता है? जब रूसी समुदाय ख़ुद यह भूल गया

है कि अपनी भूमि पर सामुदायिक ढर्रे पर कैसे काश्त की जाती है तो वह दुनिया को कैसे दिखायेगा कि बड़े पैमाने के उत्पादन का सामाजिक ढर्रे पर संचालन कैसे किया जा सकता है?

यह सच है कि रूस में बहुत-से लोगों को पश्चिमी पूंजीवादी समाज और उसके घोर अन्तर्विरोधों तथा टकरावों का काफ़ी ज्ञान है और इस प्रतीयमान बंदगली से बाहर निकलने का रास्ता उन्हें स्पष्ट रूप से मालूम है। परन्तु पहली बात तो यह है कि जो चन्द हजार लोग यह समझते हैं, वे ग्राम समुदायों में नहीं रहते जबकि रूस के लगभग ५ करोड़ व्यक्तियों को, जो अब भी भूमि के सामुदायिक स्वामित्व के अन्तर्गत रहते हैं, इस बारे में लेशमात्र ज्ञान भी नहीं है। वे इन चन्द हज़ार लोगों के विचारों को उतना ही विजातीय तथा दुर्बोध पाते हैं जितना विजातीय तथा दुर्बोध १८००–१८४० के अंग्रेज सर्वहाराओं ने उनकी मुक्ति के लिए राबर्ट ओवेन द्वारा बनायी गयी योजनाओं को पाया था। ओवेन ने न्यू-लानार्क में अपनी फ़ैक्टरी में जितने लोगों को काम पर रखा था, उनमें से अधिकांश का विघटित होनेवाली कम्युनिस्ट क़बायली व्यवस्था की रीति-रिवाजों के अन्तर्गत, स्काटलैंड के केल्टिक क़बीलों में लालन-पालन हुआ था। परन्तु ओवेन इस बारे में एक भी शब्द नहीं कहते कि इन लोगों ने उनके प्रति अधिक समझदारी का परिचय दिया। दूसरे, आर्थिक विकास की अपेक्षाकृत निचली मंज़िल में रहनेवाले समाज के लिए उन कार्यभारों तथा टकरावों को हल करना ऐतिहासिक रूप से असम्भव है जो विकास की कहीं ऊंची मंज़िल में खड़े समाज में उत्पन्न हुए हैं और जो केवल वहीं उत्पन्न हो सकते थे। माल उत्पादन तथा निजी विनिमय के प्रकट होने से पहले उत्पन्न होनेवाले सारे क़बायली सामुदायिक रूपों तथा भावी समाजवादी समाज में केवल यही समानता है कि कतिपय वस्तुएं, उत्पादन के साधन सामुदायिक सम्पत्ति होते हैं और कतिपय समूह उनका मिलकर उपयोग करते हैं। परन्तु अकेले इस एक समान गुण में इतनी क्षमता नहीं होती कि वह निचले सामाजिक रूप को भावी समाजवादी रूप में, पूंजीवादी समाज की इस अन्तिम उपज में विकसित कर सकें जिसे वह स्वयं पैदा करता है। प्रत्येक सम्बद्ध आर्थिक प्रणाली को अपने कार्यभारों को, अपने गर्भ से जन्मे कार्यभारों को स्वयं हल करना होगा, और दूसरे, सर्वथा विजातीय प्रणाली के समक्ष खड़े कार्यभारों को हल करने का यत्न करना सरासर मूर्खतापूर्ण होगा। यह चीज़ रूसी समुदाय पर उतनी ही लागू होती है जितनी वह दक्षिण स्लाव zadruga, भारतीय क़बायली समुदाय अथवा जांगल युग या बर्बर युग की किसी अवधि के सामाजिक

रूप पर लागू होती है, जिसका अभिलाक्षणिक गुण उत्पादन साधनों पर सामूहिक स्वामित्व है।

परन्तु यह सम्भव ही नहीं, वरन् अपरिहार्य भी है कि एक बार सर्वहारा विजयी हो जाये और उत्पादन साधनों पर पश्चिमी यूरोपीय राष्ट्रों में सार्वजनिक स्वामित्व स्थापित हो जाये तो वे देश, जो अभी-अभी पूंजीवादी उत्पादन आरम्भ कर सके हैं और जहां क़बायली संस्थान तथा उनके अवशेष अब भी अक्षुण्ण हैं, सामुदायिक स्वामित्व के इन अवशेषों को तथा सम्बन्धित लोक रीति-रिवाजों को समाजवादी समाज की ओर अपनी अग्रगति की अवधि को काफ़ी घटाने तथा अपने को उन मुसीबतों और संघर्षों से, जिनके बीच से हम पश्चिमी यूरोप के लोगों को अपना रास्ता बनाना पड़ा है, बचाने के लिए सशक्त साधन के रूप में इस्तेमाल कर सकेंगे। परन्तु इसकी अनिवार्य शर्त है अब तक के पूंजीवादी पश्चिम का उदाहरण तथा सक्रिय समर्थन। जब अपनी जन्मभूमि तथा उन देशों में, जहां पूंजीवादी अर्थव्यवस्था अपनी भरपूर जवानी में है, पूंजीवादी अर्थव्यवस्था का अन्त कर दिया जायेगा, जब पिछड़े हुए देश इस उदाहरण से देख लेंगे कि "यह किस तरह होता है", आधुनिक उद्योग की उत्पादक शक्तियों को समग्र समाज के लिए सामाजिक सम्पत्ति के रूप में काम करने के लिए कैसे विवश किया जाता है, केवल तभी पिछड़े हुए देश विकास की यह लघुकृत प्रक्रिया अपना सकेंगे। परन्तु तब उनकी सफलता सुनिश्चित होगी। यह बात केवल रूस पर ही नहीं, वरन् उन तमाम देशों पर भी लागू होती है जो विकास की पूंजीवाद से पहले की मंज़िल में हैं। फिर भी यह काम रूस में अपेक्षाकृत अधिक सुगमता के साथ किया जा सकेगा जहां देश की आबादी का एक भाग पूंजीवादी विकास के बौद्धिक फलों को आत्मसात कर चुका है, जिससे क्रान्ति के दौरान उसका सामाजिक रूपान्तरण पश्चिम के साथ-साथ सम्पन्न करना सम्भव होगा।

यह सब मार्क्स और मैंने 'कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र' के प्लेख़ानोव द्वारा अनूदित रूसी संस्करण की भूमिका में २१ जनवरी १८८२ को ही कह दिया था। हमने कहा था –

"परन्तु रूस में हम तेज़ी से विकसित हो रही पूंजीवादी ठगी तथा पूंजीवादी भू-सम्पत्ति के, जिसने अभी-अभी विकसित होना आरम्भ किया है, बिलकुल सामने आधी से अधिक ऐसी भूमि पाते हैं जिसपर किसानों का समान स्वामित्व है। अब सवाल यह है – क्या रूसी ओबश्चिना," (समुदाय – सं०) "जो बुरी तरह अन्तर्ध्वस्त होते हुए भी भूमि के आदिकालीन समान स्वामित्व का एक रूप है, सीधे कम्युनिस्ट ढंग

के समान स्वामित्व के उच्चतर रूप में प्रवेश कर सकती है? या इसके विपरीत उसे भी क्या विघटन की उसी प्रक्रिया के बीच से गुज़रना पड़ेगा जो पश्चिम का ऐतिहासिक विकासक्रम बनी है? इस समय इस प्रश्न का एकमात्र उत्तर यह है – यदि रूसी क्रान्ति पश्चिम में सर्वहारा क्रान्ति के लिए इस तरह घंटी बजाने लगे कि दोनों एक दूसरे के परिपूरक बन सकें तो भूमि का वर्तमान रूसी समान स्वामित्व कम्युनिस्ट विकास के लिए प्रस्थान-बिन्दु बन सकता है।"*

परन्तु यह ध्यान रखना चाहिए कि रूसी सामुदायिक स्वामित्व के जिस काफ़ी विघटन का यहां उल्लेख किया गया था, वह तब से और आगे बढ़ चुका है। क्रीमियाई युद्ध[83] की पराजयों ने रूस के द्रुत औद्योगिक विकास की आवश्यकता को स्पष्ट रूप से प्रदर्शित कर दिया। प्राथमिक आवश्यकता रेलों की थी जिनका बड़े पैमाने के देशी उद्योग के बिना अस्तित्व नहीं हो सकता। बड़े पैमाने के उद्योग की प्रारम्भिक शर्त किसानों की तथाकथित मुक्ति थी; इससे रूस में पूंजीवादी युग और साथ ही भूमि के सामुदायिक स्वामित्व के द्रुत क्षय का युग भी आरम्भ हुआ। किसान एक ओर विमोचन राशियों और पहले से बड़े करों के बोझ से इतने दबे हुए थे और दूसरी ओर उनके पास पहले से इतनी ख़राब और कम ज़मीन रहने दी गयी कि उन्होंने अपने को लाज़िमी तौर पर सूदख़ोरों के चंगुल में पाया जिनमें से अधिकांश ग्राम समुदाय के अमीर बन गये सदस्य थे। पहले के बहुत-से दूर-दराज़ इलाक़ों के लिए रेलों ने उनके अनाज के लिए मंडियों तक पहुंचने का रास्ता खोल दिया। परन्तु ये ही रेलें बड़े पैमाने के उद्योग के सस्ते उत्पाद भी लाने लगीं, और इन्होंने किसानों के घरेलू उद्योगों को अपदस्थ कर दिया जो उस समय तक वे ही चीज़ें अंशतः अपनी खपत तथा अंशतः बिक्री के लिए उत्पादित कर रहे थे। प्राचीन काल से चले आ रहे आर्थिक सम्बन्ध विशृंखलित हो गये, सम्बन्ध-सम्पर्कों का विघटन शुरू हो गया, जो विनिमयहीन अर्थव्यवस्था से मुद्रा अर्थव्यवस्था में संक्रमण करने पर हमेशा होता है, समुदाय के सदस्यों के बीच सम्पत्ति-सम्बन्धी बहुत बड़े विभेद प्रकट होने लगे – ग़रीब अमीरों के चंगुल में फंस गये। संक्षेप में, जिस प्रक्रिया ने सोलोन के ज़माने से कुछ ही समय पहले एथेन्स में मुद्रा अर्थव्यवस्था के प्रवेश के माध्यम से गोत्रों का विघटन किया था**, उसने ही रूसी समुदाय का विघटन आरम्भ किया। यह

---

* देखें प्रस्तुत संस्करण, खंड २, भाग १। – सं०

** फ़्रे० एंगेल्स, 'परिवार, निजी सम्पत्ति और राज्य की उत्पत्ति'। – सं०

सच है कि सोलोन ने निजी स्वामित्व के अभी अपरिपक्व अधिकार में क्रान्तिकारी ढंग से प्रवेश करते हुए क़र्ज़दारों का क़र्ज़ा महज़ मंसूख़ करके उन्हें बंधनों से मुक्त कर दिया था। परन्तु वह प्राचीन एथेन्सीय गोत्रों को पुनरुज्जीवित नहीं कर पाया था और इसी तरह दुनिया में ऐसी कोई शक्ति नहीं है जो रूसी समुदाय के विघटन के एक निश्चित चरम बिन्दु पर पहुंच चुकने के बाद उसे पुनरुज्जीवित करने में सक्षम हो। इसके अलावा रूसी सरकार ने समुदाय के सदस्यों के बीच १२ वर्ष में एकाधिक बार ज़मीन के पुनर्वितरण पर पाबन्दी लगा दी है ताकि ज़मीन का पुनर्वितरण करने की किसान की आदत ख़त्म की जा सके तथा उसे यह अनुभव कराया जाये कि वह अपने हिस्से में आयी ज़मीन का मालिक है।

मार्क्स ने रूस को १८७७ में भेजी गयी एक चिट्ठी में इसी भावना में अपनी बात कही थी।* श्री जुकोव्स्की नामक एक सज्जन ने—यह वही व्यक्ति हैं जिनके हस्ताक्षर राजकीय बैंक के कोषाध्यक्ष के रूप में इस समय रूसी बैंक नोटों पर अंकित रहते हैं—'वेस्तनिक येव्रोपी' (यूरोप का सन्देशवाहक) में मार्क्स के बारे में कुछ प्रकाशित किया था जिसका एक अन्य लेखक ने** 'ओतेचेस्त्वेन्नियें ज़पीस्की' में उत्तर दिया था।[84] लेखक के कथन में कुछ भूल-सुधार के रूप में मार्क्स ने इस पत्र के सम्पादक को एक चिट्ठी लिखी जो फ़्रांसीसी मूल की पांडुलिपि की प्रतियों के रूप में रूस में दीर्घकाल तक प्रसारित होती रही और फिर १८८६ में जेनेवा में 'वेस्तनिक नरोद्नोइ वोलि' (जन-इच्छा का सन्देशवाहक) में तथा आगे चलकर वह ख़ुद रूस में प्रकाशित हुई।[85] मार्क्स द्वारा लिखी गयी तमाम चीज़ों की तरह इस चिट्ठी ने भी रूसी क्षेत्रों का बहुत ध्यान आकृष्ट किया तथा उसकी सर्वथा विविध रूप में व्याख्या होती रही। यही कारण है कि मैं उसका यहां सार दे रहा हूं।

मार्क्स अपनी बात उन विचारों का खंडन करके शुरू करते हैं जो 'ओतेचेस्त्वेन्नियें ज़पीस्की' ने उनके बताये थे मानो रूसी उदारतावादियों की ही तरह मार्क्स भी यह विश्वास करते हों कि रूस का सबसे तात्कालिक कार्य कृषक सामुदायिक स्वामित्व को नष्ट करना तथा पूंजीवाद में कूद पड़ना है। उन्होंने 'पूंजी' के प्रथम संस्करण के परिशिष्ट में हर्ज़ेन के विषय में सरसरी तौर पर

---

*कार्ल मार्क्स, 'ओतेचेस्त्वेन्नियें ज़पीस्की' (पितृभूमि की टिप्पणियां) के सम्पादकमंडल के नाम पत्र।—सं०

**न० क० मिख़ाइलोव्स्की।—सं०

जो कहा था, उससे कुछ भी सिद्ध नहीं होता। उन्होंने जो कहा था, वह यह है, "यदि यूरोपीय महाद्वीप में पूंजीवादी उत्पादन का प्रभाव, जो मानवजाति को ध्वस्त करता है... इसी तरह विकसित होता गया जिस तरह वह अब तक होता आया है, और उसके साथ-साथ राष्ट्रीय सैनिक दलों, राष्ट्रीय ऋणों तथा युद्ध-कला के परिष्करण, आदि में प्रतियोगिता तीक्ष्ण होती चली गयी तो कोड़े और कल्मिक रक्त के अनिवार्य समावेश की सहायता से यूरोप का कायाकल्प अन्ततः सर्वथा अवश्यम्भावी हो जायेगा, जिसकी अर्द्धरूसी परन्तु पूरे मास्कोवासी हर्ज़ेन इतने जोश से भविष्यवाणी करते आये हैं (प्रसंगतः ध्यान रहे, इस उपन्यासकार ने रूस में नहीं, वरन् प्रशियाई Regierungsrat हक्स्टहाउज़ेन की कृतियों में "रूसी कम्युनिज़्म" के बारे में अपने आविष्कार किये थे) ('पूंजी', खंड १, प्रथम जर्मन संस्करण, पृष्ठ ७६३)। मार्क्स आगे कहते हैं, "अपने देश के लिए विकास का ऐसा मार्ग, जो उससे भिन्न हो जिस पर पश्चिमी यूरोप चल रहा है, ढूंढ़ने के रूसी जनता के" (आगे का उद्धरण मूल में रूसी भाषा में दिया गया है) "प्रयासों के बारे में इस वाक्यांश को मेरे विचारों की कदापि कुंजी नहीं माना जा सकता", आदि। "'पूंजी' के द्वितीय जर्मन संस्करण के परिशिष्ट में मैं 'महान रूसी विद्वान तथा आलोचक'" (चेर्निशेव्स्की)* "की चर्चा गहन आदर के साथ करता हूं जिसके वह पात्र हैं। अपने उल्लेखनीय लेखों में इस विद्वान ने इस प्रश्न का विवेचन किया है कि क्या रूस को, जैसा कि उसके उदारतावादी अर्थशास्त्री चाहते हैं, ग्राम समुदाय को नष्ट कर काम शुरू करना चाहिए ताकि वह पूंजीवादी व्यवस्था में प्रवेश कर सके अथवा क्या वह अपनी ऐतिहासिक अवस्थाओं का विकास करते हुए इस व्यवस्था के फलों को उसकी यातनाएं झेले बिना प्राप्त कर सकता है? वह दूसरी स्थिति के पक्ष में अपना विचार प्रकट करते हैं।"

"संक्षेप में, चूंकि मुझे 'कोई चीज़ अटकलबाज़ी पर' छोड़ना पसन्द नहीं है, इसलिए मैं अपनी बात बिना किसी लाग-लपेट के कहूंगा। रूस के आर्थिक विकास के विषय में जानकारी भरा निर्णय दे सकने के लिए मैंने रूसी सीखी थी तथा कई वर्षों तक मामले से सम्बन्धित सरकारी तथा अन्य प्रकाशनों का अध्ययन किया। मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा। **यदि रूस उस मार्ग पर अग्रसर होता रहा जिस पर वह १८६१ से चलता आया है तो वह ऐसा सर्वोत्तम अवसर खो बैठेगा**

---

*देखें प्रस्तुत संस्करण, खण्ड २, भाग १। – **सं०**

जैसा इतिहास ने किसी जनता के समक्ष इससे पहले कभी प्रस्तुत नहीं किया, और उसे पूंजीवादी व्यवस्था के सारे घातक उतार-चढ़ावों के बीच से गुज़रना होगा।"*

मार्क्स आगे अपने आलोचक की चन्द और भूलें सुधारते हैं; हमारे प्रश्न से प्रसंग रखनेवाला एकमात्र वाक्यांश इस प्रकार है—

"तो मेरे आलोचक इस ऐतिहासिक रेखाचित्र को रूस पर लागू करने के लिए उसका क्या उपयोग कर सके हैं?" (तात्पर्य पूंजी के आदिम संचय से है) "केवल यह—यदि रूस में पश्चिमी यूरोप के राष्ट्रों की तरह पूंजीवादी राष्ट्र बनने की प्रवृत्ति है—और पिछले चन्द वर्षों में उसने यह बनने के लिए एड़ी-चोटी का ज़ोर लगाया है—तो वह अपने किसानों के अच्छे-ख़ासे हिस्से को सर्वहारा में परिणत न किये जाने पर इस कार्य में विफल हो जायेगा; एक बार वह इसे कर लेता है और पूंजीवादी व्यवस्था की गोद में पहुंच जाता है तो वह सारे अन्य काफ़िर जनगण की तरह उसके अटल नियमों के अधीन हो जायेगा। बस।"

यह मार्क्स ने १८७७ में लिखा था। उस समय रूस में दो सरकारें थीं—ज़ार की सरकार तथा आतंकवादी षड्यंत्रकारियों की गुप्त कार्यकारी समिति[86] की सरकार। इस दूसरी, गुप्त सरकार की सत्ता दिन पर दिन बढ़ती जा रही थी। ज़ारशाही के तख़्ते का उलटा जाना आसन्न प्रतीत होता था; रूस की क्रान्ति सारे यूरोपीय प्रतिक्रियावाद को अपने सबसे ठोस अवलम्ब से, अपनी विशाल आरक्षित सेना से वंचित करने जा रही थी और इस तरह पश्चिम में राजनीतिक आन्दोलन के लिए संघर्ष में कहीं अधिक अनुकूल परिस्थितियां पैदा करके उसे एक और सशक्त प्रेरणा देने जा रही थी। इसलिए इसमें अचरज की कोई बात नहीं है कि मार्क्स ने अपने पत्र में रूसियों को पूंजीवाद में छलांग लगाने में बहुत जल्दबाज़ी न करने की सलाह दी।

रूस में कोई क्रान्ति नहीं हुई है। ज़ारशाही ने आतंकवाद पर विजय प्राप्त कर ली है जिसने फ़िलहाल तमाम "व्यवस्थाप्रेमी" सम्पत्तिधारी वर्गों को ज़ारशाही की बांहों में पहुंचा दिया है। मार्क्स के पत्र के बाद के १७ वर्षों में रूस में पूंजीवाद के विकास तथा ग्राम समुदाय के विघटन दोनों ने भीम डग भरे हैं। तो फिर आज, १८९४ में स्थिति क्या है?

चूंकि क्रीमियाई युद्ध की पराजयों तथा सम्राट निकोलाई प्रथम की आत्महत्या के बाद पुराना ज़ारशाही निरंकुशतावाद अपरिवर्तित रहा, केवल एक ही रास्ता

---

*शब्दों पर ज़ोर एंगेल्स ने दिया था।—**सं०**

बचा हुआ था—पूंजीवादी उद्योग में द्रुततम गति से प्रवेश। साम्राज्य के विशाल विस्तार तथा सैनिक कार्रवाइयों के केन्द्र तक लम्बे अभियानों ने सेना को तहस-नहस कर दिया था; इन केन्द्रों तक पहुंचने के लिए सामरिक रेल लाइनों का जाल बिछाया जाना आवश्यक था। परन्तु रेल लाइनों के निर्माण का अर्थ है पूंजीवादी उद्योग की स्थापना तथा आदिम कृषि का क्रान्तिकरण। एक ओर सबसे दूर-दराज़ हिस्सों तक की कृषि उपज का विश्व मंडी से सीधा सम्पर्क हो जाता है; दूसरी ओर रेल लाइनों के व्यापक जाल का निर्माण तथा उपयोग तब तक नहीं हो सकता जब तक अपने पास रेल की पटरियां, इंजन, डिब्बे, आदि मुहैया करनेवाला देश का अपना उद्योग न हो। परन्तु बड़े पैमाने के उद्योग की एक शाखा को पूरी प्रणाली चालू किये बिना निर्मित करना असम्भव है; अपेक्षाकृत आधुनिक कपड़ा उद्योग को, जिसकी जड़ें मास्को तथा व्लादीमिर गुबेर्नियाओं और बाल्टिक क्षेत्र में पहले ही जम चुकी थीं, नयी उत्प्रेरणा मिली। रेल लाइनों और कारख़ानों के निर्माण के बाद विद्यमान बैंकों का विस्तार हुआ तथा नये बैंकों की स्थापना हुई; किसानों की भू-दासत्व से मुक्ति के फलस्वरूप स्थानान्तरण की स्वतंत्रता ने जन्म लिया, और यह अपेक्षित ही था कि इन किसानों का एक बहुत बड़ा भाग भू-स्वामित्व से भी मुक्त हो। इस तरह रूस में उत्पादन की पूंजीवादी पद्धति की नींव अल्पकाल में ही पड़ गयी। परन्तु इसके साथ ही रूसी ग्राम समुदाय की जड़ों पर भी कुठाराघात हुआ।

अब इसका दुखड़ा लेकर बैठने से कोई लाभ नहीं है। यदि क्रीमियाई युद्ध के बाद अभिजाततंत्र तथा नौकरशाही के प्रत्यक्ष संसदीय शासन ने ज़ारशाही निरंकुशतावाद का स्थान ले लिया होता तो यह प्रक्रिया शायद धीमी हो गयी होती; परन्तु पनपता पूंजीपति वर्ग यदि सत्तारूढ़ हुआ होता तो यह प्रक्रिया यक़ीनन तेज़ होती। विद्यमान परिस्थितियों में कोई और रास्ता नहीं था। फ़्रांस में द्वितीय साम्राज्य[87] और इंगलैंड में फूलते-फलते पूंजीवादी उद्योग के रहते रूस से निश्चय ही यह अपेक्षा नहीं की जा सकती थी कि वह अपने ग्राम समुदाय के आधार पर सीधे राजकीय-समाजवादी प्रयोग के मैदान में कूद पड़े। कुछ न कुछ होना चाहिए था। और परिस्थितियों को देखते हुए जो सम्भव था, वह हुआ भी; जैसा कि माल उत्पादक देशों में हमेशा हुआ करता है, लोग अधिकतर अर्द्धचेतन रूप से अथवा पूर्णतः अचेत रूप से काम करते रहे, वे इस बात से अनभिज्ञ थे कि क्या हो रहा है।

परन्तु इस बीच एक नयी अवधि का, ऊपर से क्रान्तियों की अवधि का आगमन हुआ, जिसका सूत्रपात जर्मनी ने किया था, और इसके साथ यूरोप के समस्त देशों में समाजवाद के द्रुत विकास की अवधि आयी। रूस ने इस आम आन्दोलन में भाग लिया। जैसा कि अपेक्षित था, उसके आन्दोलन ने ज़ारशाही निरंकुशतावाद पर प्रहार तथा राष्ट्र के बौद्धिक एवं राजनीतिक विकास की स्वतंत्रता की प्राप्ति का रूप ग्रहण किया। ग्राम समुदाय की, जिसके गर्भ में से सामाजिक पुनर्जन्म होना था, जादुई शक्ति में आस्था ने,—जैसा कि हम देख चुके हैं, स्वयं चेर्निशेव्स्की इस आस्था से स्वतंत्र नहीं थे,—इस आस्था ने वीर रूसी अग्रणी योद्धाओं को जगाने तथा अनुप्राणित करने में अपनी भूमिका अदा की। इन लोगों के साथ, जो कुछ सौ से ज़्यादा नहीं थे, बल्कि जिन्होंने अपने साहस तथा आत्मा-त्याग के बल पर ज़ारशाही निरंकुशतावाद को ऐसी जगह पहुंचा दिया था जहां उसे आत्म-समर्पण की सम्भावना तथा उसकी शर्तों पर विचार करना पड़ा, इन लोगों के इस विश्वास से हमारा कोई झगड़ा नहीं है कि उनकी अपनी रूसी जनता गोया सामाजिक क्रान्ति के लिए पैदा हुई है। परन्तु हमारे लिए यक़ीनन यह ज़रूरी नहीं है कि हम उनकी भ्रान्तियों में सहभागी बनें। विशेष उद्देश्य के लिए जन्मे लोगों का वक़्त हमेशा-हमेशा के लिए लद चुका है।

जब यह संघर्ष चल रहा था, रूस में पूंजीवाद साहसपूर्वक प्रहार कर रहा था और उस लक्ष्य के समीपतर होता जा रहा था जिसे आतंकवादी पूरा नहीं कर सके थे। यह लक्ष्य था ज़ारशाही को घुटने टेकने के लिए मजबूर करना।

ज़ारशाही को धन की ज़रूरत थी। राज-दरबार के ऐश्वर्य-वैभव, नौकरशाही और सर्वोपरि अपनी सेना तथा घूसख़ोरी पर आधारित अपनी विदेश नीति के लिए ही नहीं, वरन् विशेष रूप से अपनी दयनीय वित्तीय प्रणाली तथा रेल निर्माण के क्षेत्र में तदनुरूप बेतुकी नीति के लिए भी उसे धन की दरकार थी। बाह्य स्रोत ज़ार के सारे घाटों की पूर्ति करने के लिए अब या तो इच्छुक नहीं रह गये थे अथवा इसके लिए अक्षम थे। सहायता की अब देश में ही तलाश की जानी थी। रेलों के शेयरों का एक हिस्सा अब देश के अन्दर फैलाना और कुछ ऋण वहीं हासिल करना ज़रूरी हो गया था। रूसी पूंजीपति वर्ग की पहली विजय रेलवे कंसेशनों की प्राप्ति थी जिनके अन्तर्गत सारे भावी मुनाफ़े शेयर होल्डरों के पास जाने थे जबकि सारे भावी नुक़सान राज्य को वहन करने थे। उसके बाद औद्योगिक प्रतिष्ठानों की स्थापना के लिए अनुदान तथा बोनस दिये जाने

लगे, देशी उद्योग के हितार्थ संरक्षण शुल्कों की व्यवस्था की गयी जिन्होंने बहुत-सी वस्तुओं का आयात प्रायः असम्भव बना दिया। रूसी राज्य की, जो अपरिमित ऋणों से दबा हुआ था तथा जिसकी विदेशों में साख प्रायः चौपट हो चुकी थी देशी उद्योग के कृत्रिम प्रसार में प्रत्यक्ष वित्तीय दिलचस्पी थी। विदेशी ऋणों का ब्याज चुकाने के लिए उसे सोने की बराबर आवश्यकता रहती है। परन्तु रूस में स्वर्ण मुद्रा है ही नहीं, केवल काग़ज़ी मुद्रा है। सीमाशुल्क राजस्व लागू कर सोने की एक ख़ास मात्रा की वसूली से कुछ सोना प्राप्त होता है। प्रसंगतः इसमे इन शुल्कों में ५० प्रतिशत वृद्धि हो जाती है। परन्तु अधिकांश सोना तो रूसी कच्चे माल का निर्यात विदेशी औद्योगिक उत्पादों के आयात से अधिक होने से ही प्राप्त होना चाहिए; रूसी सरकार विदेशी हुंडियां ख़रीदकर और उनकी राशि के बराबर काग़ज़ी मुद्रा देकर सोना प्राप्त करती है। इसलिए यदि सरकार अपने विदेशी ऋणों के ब्याज की अदायगी के लिए और ऋणों के वास्ते विदेशों से नये क़रार नहीं करना चाहती तो उसे यह सुनिश्चित करना होगा कि रूसी उद्योग इतनी तेज़ी से विकसित हो कि वह सारी घरेलू आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके। इसीलिए यह मांग की जाती है कि रूस विदेशों से स्वतंत्र हो, आत्म-निर्भर औद्योगिक देश बने; इसीलिए सरकार रूस के पूंजीवादी विकास को चन्द वर्षों के अन्दर उच्चतम शिखर पर पहुंचाने के लिए इतनी व्यग्रतापूर्वक चेष्टा कर रही है। जब तक यही नहीं होता, तब तक दो ही रास्ते रहेंगे—या तो राजकीय बैंक और राजकीय कोष द्वारा जमा की गयी सामरिक स्वर्ण निधि का उपयोग किया जाये अथवा राज्य का दीवाला निकलने की स्थिति का सामना किया जाये। दोनों में से किसी भी रास्ते का अर्थ होगा रूस की विदेश नीति का अन्त।

एक बात साफ़ है—इन परिस्थितियों में राज्य किशोर रूसी पूंजीपति वर्ग की मज़बूत जकड़ में है। राज्य को सारे महत्वपूर्ण आर्थिक मामलों में उसकी इच्छा के अनुसार काम करना होगा। वह ज़ार तथा उसके अधिकारियों के निरंकुशतावादी राजतंत्र को यदि अब भी सहन करता है तो केवल इसलिए कि यह राजतंत्र अपनी नौकरशाही के भ्रष्टाचार से नरम बनने के अलावा उसे किसी भी प्रकार के उन परिवर्तनों से ज़्यादा गारंटियां मुहैया करता है, जो भले ही पूंजीवादी-उदारतावादी भावना के हों परन्तु रूस की विद्यमान परिस्थितियों में जिनके परिणामों के बारे में कोई भी व्यक्ति भविष्यवाणी नहीं कर सकता। इसलिए रूस का औद्योगिक पूंजीवादी राज्य में यह त्वरित रूपान्तरण, उसके

कृषक समुदाय के एक बड़े भाग का सर्वहाराकरण तथा पुराने कम्युनिस्ट समुदाय का क्षय होता जा रहा है।

मैं यह निर्णय देने की स्थिति में नहीं हूं कि यह समुदाय अब भी इतना अक्षुण्ण है या नहीं कि वह समय आने पर तथा पश्चिमी यूरोप में क्रान्ति के साथ मिलकर कम्युनिस्ट विकास का वह प्रस्थान-बिन्दु बनेगा जिसकी मार्क्स और मैं १८८२ में भी आशा कर रहे थे। परन्तु इतना तो निश्चित है – यदि इस समुदाय में से कुछ बचाया जाना है तो पहली आवश्यकता यह है कि ज़ारशाही निरंकुशतावाद का तख़्ता उलटा जाये, रूस में क्रान्ति हो। रूसी क्रान्ति राष्ट्र के अधिकांश को, किसानों को गांवों में, जो उनका mir, उनका विश्व है, उनके अलगाव से केवल बाहर ही नहीं निकालेगी; वह किसानों को केवल उस बड़े रंगमंच पर ही नहीं पहुंचायेगी जहां वे बाहरी दुनिया को, और इसके साथ अपने को, अपनी हालत को, अपनी वर्तमान दुर्दशा से बचने के साधनों को पहचानने लगेंगे – रूसी क्रान्ति पश्चिम के मज़दूर आन्दोलन को भी नया संवेग प्रदान करेगी, उसके लिए संघर्ष की नयी तथा बेहतर अवस्थाएं पैदा करेगी तथा इस तरह आधुनिक औद्योगिक सर्वहारा की विजय को आगे बढ़ायेगी, उस विजय की ओर आगे बढ़ायेगी जिसके बिना समकालीन रूस समुदाय अथवा पूंजीवाद में से किसी के भी आधार पर समाज का समाजवादी रूपान्तरण हासिल नहीं कर सकता।

१८९४ के पूर्वार्द्ध में लिखित।
फ़्रेडरिक एंगेल्स की पुस्तक
«Internationales aus dam «Volksstaat»»
(1871–1875), बर्लिन, १८९४ में प्रकाशित।

अंग्रेज़ी से अनूदित।

बकूनिन की 'राज्यत्व तथा अराजकता' पुस्तक पर टिप्पणियों में से[85]

"उदाहरण के लिए, "крестьянская чернь" (साधारण किसानों, किसानों की भीड़) जिसके प्रति – जैसा कि सुविदित है – मार्क्सवादियों का रुख सद्भावनापूर्ण नहीं है और जिन पर – जो संस्कृति के निम्नतम स्तर पर हैं – सम्भवतः शहरों तथा कारख़ानों के सर्वहारा राज करेंगे।"

इसका मतलब यह है कि जहां कहीं किसानों के विशाल जनसमुदाय का निजी सम्पत्तिधारी के रूप में अस्तित्व है, जहां उसकी न्यूनाधिक रूप में बहुसंख्या है, जैसा कि पश्चिमी यूरोपीय महाद्वीप के तमाम देशों में है, जहां उसका लोप नहीं हुआ है, जहां, इंगलैंड की तरह, उसका स्थान खेतिहर मज़दूर ने नहीं लिया है, वहां ये चीज़ें हो सकती हैं – या तो वह मज़दूरों की हर क्रान्ति को न होने दे और उसे ध्वस्त कर दे जैसा कि उसने अब तक फ़्रांस में किया, अथवा सर्वहारा को (क्योंकि कृषक-स्वामी का स्थान सर्वहारा में नहीं है और जहां उसकी स्थिति उसे मजबूरन सर्वहारा के बीच पहुंचाती है, वहां भी वह यह सोचता है कि उसका स्थान वहां नहीं है) शासन करते समय ऐसे पग उठाने चाहिए जो किसान की हालत में प्रत्यक्ष सुधार लायेंगे तथा जो उसे क्रान्ति के पक्ष में ले आयेंगे। इन पगों को आरम्भ से ही निजी भू-स्वामित्व से सामूहिक भू-स्वामित्व में संक्रमण सुगम बनाना चाहिए ताकि किसान स्वयं आर्थिक साधनों के माध्यम से इसके पक्ष में आये; परन्तु यह सावधानी बरती जानी चाहिए कि उसे उदाहरण के लिए उत्तराधिकार तथा उसकी सम्पत्ति पर अधिकार के उन्मूलन जैसे पगों की घोषणा द्वारा विरोधी न बनाया जाये। इस तरह के पग केवल तभी उठाये जा सकने

हैं जब पूंजीपति-पट्टेदार ने किसान को अपदस्थ कर दिया हो और जहां वास्तविक काश्तकार उतना ही सर्वहारा, उजरती मजदूर हो जितना कि शहरी मजदूर और इसलिए जिसके उसके साथ एक जैसे **प्रत्यक्ष** हित हों, परोक्ष नहीं। बड़ी जागीरें सीधे किसानों के हवाले करके और इस तरह छोटे टुकड़ों का विस्तार करके भूमिधारण का दृढ़ीकरण नहीं किया जाना चाहिए, जैसा कि बकूनिन के क्रान्तिकारी कार्यक्रम में है।

"अथवा हम यदि इस प्रश्न पर राष्ट्रीय दृष्टिकोण से विचार करें तो हम यह मान सकते हैं कि जर्मनों के लिए स्लाव लोग उसी कारण जर्मन सर्वहारा की दासत्वपूर्ण अधीनता में रहेंगे जिस कारण जर्मन सर्वहारा अपने पूंजीपति वर्ग की दासत्वपूर्ण अधीनता में है" (पृष्ठ २७८)।

स्कूली बच्चों जैसी फ़िजूल की बात! आमूल परिवर्तनवादी सामाजिक क्रान्ति आर्थिक विकास की निश्चित ऐतिहासिक अवस्थाओं से जुड़ी हुई होती है; ये अवस्थाएं इस सामाजिक क्रान्ति की पूर्वावश्यकताएं होती हैं। इसलिए यह केवल वहीं सम्भव है जहां पूंजीवादी उत्पादन के साथ-साथ औद्योगिक सर्वहारा जनता का कम से कम काफ़ी बड़ा भाग हो। यदि वह विजय का मौक़ा हासिल करना चाहता है तो यह ज़रूरी है कि किसानों के लिए mutatis mutandis* प्रत्यक्षत: कम से कम उतना ज़रूर करे जितना फ़्रांसीसी पूंजीपति वर्ग ने अपनी क्रान्ति के दौरान उस समय विद्यमान फ़्रांसीसी किसानों के लिए किया था। क्या कहने इस विचार के कि मज़दूरों के शासन में खेतिहर श्रम का उत्पीड़न शामिल है! परन्तु ठीक इसी में बकूनिन का अन्त:तम विचार प्रकट होता है। उन्हें सामाजिक क्रान्ति का कोई ज्ञान नहीं है, वह उसकी केवल राजनीतिक वाक्यावली जानते हैं। उसकी आर्थिक अवस्थाओं का उनसे कोई मतलब नहीं है। चूंकि पिछले तमाम आर्थिक रूपों में—वे चाहे विकसित रहे हों या नहीं—श्रमिक का दासकरण शामिल है (चाहे वह उजरती मज़दूर, किसान, आदि के रूप में हो), इसलिए उनका विश्वास है कि इन तमाम रूपों के अन्तर्गत **आमूल परिवर्तनवादी क्रान्ति** सम्भव है। वह और आगे बढ़ते हैं। वह चाहते हैं कि यूरोपीय सामाजिक क्रान्ति, जिसका आर्थिक आधार पूंजीवादी उत्पादन है, की नींव रूसी या स्लाव कृषक और मवेशी

---

*आवश्यक परिवर्तनों सहित। —सं०

पालक जातियों के स्तर पर रखी जाये और उसे इस स्तर के ऊपर नहीं होना चाहिए ; वह इसे यह अनुभव करते हुए भी चाहते हैं कि **जहाजरानी** भाइयों में अन्तर पैदा कर देती है, परन्तु केवल **जहाजरानी**, क्योंकि यह ऐसा अन्तर है जिसे तमाम राजनीतिज्ञ जानते हैं! उनकी सामाजिक क्रान्ति का आधार आर्थिक अवस्थाएं नहीं, **इच्छा** है।

मार्क्स द्वारा १८७४ में तथा १८७५ के आरम्भ में लिखित।

अंग्रेज़ी से अनूदित।

सबसे पहले 'मार्क्सवाद का वृत्तान्त' पत्रिका में (अंक ११, १९२६) प्रकाशित।

कार्ल मार्क्स तथा फ़्रेडरिक एंगेल्स

चिट्ठी-पत्री

लुडविग कुगेलमन के नाम मार्क्स का पत्र

हैनोवर में

लन्दन, २३ फ़रवरी १८६५

प्रिय मित्र,

मुझे आपकी चिट्ठी, जो मेरे लिए बहुत दिलचस्प है, कल ही मिली। अब मैं आपके पृथक-पृथक मुद्दों के उत्तर दूंगा।

सबसे पहले मैं **लासाल** के प्रति अपने रुख़ का संक्षेप में वर्णन करूंगा। जब तक वह प्रचार में जुटे रहे, हमारे बीच सम्बन्ध टूटे रहे क्योंकि: १) उनकी आत्म-प्रशंसा की प्रवृत्ति से शेख़ीबाज़ी टपकती है, जिसमें उन्होंने मेरी तथा दूसरे लोगों की रचनाओं से अत्यन्त निर्लज्जतापूर्वक की गयी साहित्यिक चोरी जोड़ दी है; २) मैंने उनकी **राजनीतिक कार्यनीति की कड़ी निन्दा की;** ३) उनके प्रचार आरम्भ किये जाने **से पहले ही** मैंने उन्हें यहां लन्दन में पूरी तरह समझाया तथा उनके सामने "सिद्ध किया था" कि "**प्रशा राज्य**" द्वारा प्रत्यक्ष **समाजवादी** हस्तक्षेप की बात बकवास है। उन्होंने मुझे भेजी गयी अपनी चिट्ठियों में (१८४८ से १८६३ तक) और मेरे साथ मुलाक़ातों के दौरान अपने को हमेशा पार्टी का समर्थक बताया जिसका मैं प्रतिनिधित्व कर रहा था। ज्यों ही उन्हें लन्दन में (१८६२ के अन्त में) यह यक़ीन हो गया कि वह मेरे साथ चालबाज़ी नहीं चल सकते, उन्होंने "मज़दूर अधिनायक" के रूप में मेरे तथा पुरानी पार्टी के **विरुद्ध** मैदान में उतरने का फ़ैसला कर दिया। इन तमाम बातों के बावजूद प्रचारक के रूप में मैंने उनकी सेवाओं को मान्यता दी हालांकि उनके अल्पकालिक जीवनक्रम के अन्त में उनका प्रचार भी मुझे अधिकाधिक उभयार्थ रूप धारण

करता प्रतीत हुआ। उनकी सहसा मृत्यु, पुरानी दोस्ती, काउंटेस हात्सफ़ेल्द की विलापपूर्ण चिट्ठियां, पूंजीवादी अख़बारों की एक ऐसे व्यक्ति के प्रति **कायरतापूर्ण उद्दंडता** पर रोष जिससे वे उसके जीवित रहते इतना डरते थे—इन सब चीज़ों ने मुझे उस मनहूस ब्लींड* के विरुद्ध एक छोटा-सा वक्तव्य प्रकाशित करने के लिए प्रेरित किया जिसमें वैसे लासाल के कार्यकलाप के **सार** की **चर्चा** नहीं की गयी थी। (हात्सफ़ेल्द ने यह वक्तव्य «*Nordstern*»[89] को भेज दिया था)। इन्हीं कारणों से तथा ऐसे तत्वों को, जो मुझे ख़तरनाक लगे, हटाने की आशा में एंगेल्स और मैंने «*Social-Demokrat*»[90] में लिखने का फ़ैसला किया (उसने सन्देश** का अनुवाद प्रकाशित किया है तथा उसके अनुरोध पर मैंने प्रूदों की मृत्यु के अवसर पर उनके बारे में एक लेख लिखा था***); और जब श्वीट्ज़र ने **अपने सम्पादकमंडल का सन्तोषजनक कार्यक्रम** भेज दिया, मैंने अपने नामों का लेखक के रूप में उपयोग करने की इजाज़त दे दी। **व० लीब्कनेख़्त** की सम्पादकमंडल में अनौपचारिक सदस्य के रूप में उपस्थिति हमारे लिए एक और गारंटी थी। परन्तु शीघ्र ही यह स्पष्ट हो गया—इसके प्रमाण हमारे हाथ लग गये—कि **लासाल ने** वस्तुतः पार्टी के साथ **ग़द्दारी की थी।** उन्होंने बिस्मार्क के साथ नियमित क़रार स्थापित कर लिया था (**निस्सन्देह अपने लिए किसी तरह की** गारंटियों के बिना)। सितम्बर १८६४ के अन्त में उन्हें हैम्बर्ग जाना था और वहां (उस सनकी श्राम्म और प्रशियाई पुलिस जासूस मार के साथ मिलकर) बिस्मार्क को श्लेज़्विग-होल्श्टेइन का समामेलन करने, अर्थात् "मज़दूरों", आदि के नाम पर उसके समामेलन की घोषणा करने के लिए "**विवश करना था**" जिसके बदले बिस्मार्क ने सार्वजनिक मताधिकार और कुछ समाजवादी ढोंगबाज़ी करने का वचन दिया। यह अफ़सोस की बात है कि लासाल इस प्रहसनात्मक नाटक में अपनी भूमिका अन्त तक नहीं निभा सके! उससे वह घोर उपहासास्पद तथा मूर्ख दिखायी देते और इस तरह की कोशिशों का हमेशा के लिए ख़ात्मा हो जाता!

लासाल इसलिए इस ढंग से भटक गये कि वह श्री माइकेल की तरह के "**व्यावहारिक राजनीतिज्ञ**" थे, अन्तर केवल यह था कि वह और बड़े सांचे

---

* कार्ल मार्क्स, 'स्टूटगर्ट के «*Beobachter*» अख़बार के सम्पादक के नाम'।—सं०

** देखें प्रस्तुत संस्करण, खण्ड २, भाग १।—सं०

*** वही।—सं०

में ढले हुए थे तथा उनके और बड़े उद्देश्य थे। (प्रसंगतः, मैं माइकेल को बहुत पहले ही पर्याप्त रूप में पहचानते हुए उनके आचरण के बारे में इस निष्कर्ष पर पहुंच गया था कि राष्ट्रीय संघ[91] ने एक छोटे **हैनोवरियाई** वकील को अपनी चारदीवारी के बाहर जर्मनी में अपनी **आवाज** सुनाने और "**प्रशियाई**" तत्त्वावधान में "**हैनोवरियाई**" मिराबो की भूमिका अदा करते हुए अपनी बढ़ी हुई "**वास्तविकता**" को फिर अपनी हैनोवरियाई भूमि में प्रतिक्षिप्त कराने के लिए बहुत बढ़िया मौक़ा दिया।) जिस तरह माइकेल और उसके मौजूदा दोस्त प्रशियाई प्रिंस रीजेंट द्वारा उद्घोषित "नये युग"[92] पर झपटे ताकि राष्ट्रीय संघ में शामिल हो सकें और "प्रशियाई शीर्ष भाग" में पहुंच सकें, जिस तरह इन लोगों ने सामान्यतया **प्रशियाई तत्त्वावधान में** अपने "नागरिक गौरव" का विकास किया, ठीक उसी तरह लासाल चाहते थे कि वह उकेर्मार्क के फ़िलिप द्वितीय के साथ सर्वहारा के मार्किवस पोज़ा की[93] तथा बिस्मार्क उनके तथा प्रशियाई ताज के बीच कुटनी की भूमिका अदा करे। उन्होंने केवल राष्ट्रीय संघ के सज्जनों की नक़ल की। परन्तु जहां इन लोगों ने मध्यम वर्ग के हितार्थ प्रशियाई "प्रतिक्रियावाद" से अपील की, वहां लासाल ने बिस्मार्क के साथ सर्वहारा के हितार्थ हाथ मिलाया। राष्ट्रीय संघ के इन सज्जनों के पास लासाल से ज़्यादा औचित्य था क्योंकि जहां पूंजीपति वर्ग अपने बिल्कुल सामने के हित को "**वास्तविकता**" मानने का आदी है और जहां वस्तुतः इस वर्ग ने सर्वत्र सामन्तवाद तक से समझौतेबाज़ी की है, वहां अपने स्वरूप के ही कारण मज़दूर वर्ग को सच्चा "क्रान्तिकारी" होना चाहिए।

लासाल जैसे खोखले नाटकीय पात्र के लिए (हां, उन्हें किसी पद, मेयर का ओहदा जैसी नगण्य चीज़ों से नहीं ललचाया जा सकता था) यह एक बहुत प्रलोभनकारी विचार था – फ़र्दीनांद लासाल द्वारा सीधे सर्वहारा की ओर से सम्पन्न एक कार्य! दरअसल वह इस प्रकार के कार्य के लिए अपेक्षित वास्तविक आर्थिक अवस्थाओं से इतने अनभिज्ञ थे कि वह अपनी आलोचना नहीं कर सकते थे। दूसरी ओर जर्मन मज़दूर भी घृणित "**व्यावहारिक राजनीति**" के कारण, जिसने जर्मन पूंजीपति वर्ग को १८४९–१८५९ की प्रतिक्रियावाद को सहन करने तथा जनता की जड़ता का साक्षी बनने के लिए प्रेरित किया था, इतने "**हौसलापस्त**" हो गये थे कि वे ऐसे नीमहकीम रक्षक का अभिनन्दन किये बिना नहीं रह सकते थे जिसने उन्हें एक ही छलांग में स्वर्ग पहुंचाने का वचन दिया।

ख़ैर, बात का सिलसिला फिर से शुरू कर दिया जाये। «*Social-Demokrat*» स्थापित हुआ ही था कि यह स्पष्ट हो गया कि वृद्धा हात्सफ़ेल्द अन्ततः लासाल

की "वसीयत" को पूरा करना चाहती थी। वह («*Kreuz-Zeitung*»[94] के) वागेनेर के ज़रिए बिस्मार्क के सम्पर्क में थी। उसने ग्राम जर्मन मज़दूर संघ[95], «*Social-Demokrat*», ग्रादि को उसके हाथों में सौंप दिया। श्लेज़्विग-होल्श्टेइन के समामेलन ग्रौर बिस्मार्क को सामान्यतः संरक्षक के रूप में मान्यता दिये जाने की घोषणा «*Social-Demokrat*» में की जानी थी। इस सारी ख़ूबसूरत योजना पर इसलिए **पानी फिर गया** कि बर्लिन तथा «*Social-Demokrat*» में लीब्कनेख़्त मौजूद थे। यद्यपि एंगेल्स ग्रौर मैं ग्रख़बार के सम्पादकमंडल से—उसकी लासालीय चाटुकारिता, उसकी समय-समय पर बिस्मार्क के साथ इश्कबाज़ी, ग्रादि से—ख़ुश नहीं थे, फिर भी फ़िलहाल सार्वजनिक रूप से ग्रख़बार का साथ देना निस्सन्देह ज्यादा महत्वपूर्ण था ताकि वृद्धा हात्सफ़ेल्द की साज़िशें विफल बनायी जा सकें तथा मज़दूर पार्टी को पूरी तरह बदनाम न होने दिया जाये। इसलिए हमने वह किया जिसे bonne mine à mauvais jeu* कहते हैं हालांकि निजी तौर पर हम «*Social-Demokrat*» को हमेशा लिखते रहे कि उसे बिस्मार्क का उतना ही विरोध करना चाहिए जितना वह प्रगतिवादियों[96] का विरोध करता है। हमने **ग्रन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर संघ** के विरुद्ध उस फूले हुए छैलविहारी बर्नहार्ड बेकर तक को सहन किया जो ग्रपने नाम लासाल के वसीयतनामे को बहुत गम्भीर मानता है।

इस बीच «*Social Demokrat*» में श्री श्वीट्ज़र के लेख ग्रधिकाधिक बिस्मार्कपरस्त होते चले गये। मैं उन्हें पहले ही लिख चुका था कि "संघबद्धता के प्रश्न पर"[97] प्रगतिवादियों को **डराया जा सकता है** परन्तु **प्रशियाई सरकार कभी भी किसी भी परिस्थिति में** संघबद्धता क़ानूनों को पूरी तरह मिटाने के लिए राज़ी नहीं होगी क्योंकि उसका मतलब नौकरशाही के बीच दरार डालना होगा, मज़दूरों को नागरिक ग्रधिकार देना होगा, नौकर-चाकरों को ग्रभिशासित करनेवाले नियमों[98] को विशृंखलित करना होगा, देहात में ग्रभिजातों द्वारा लोगों की कमर पर कोड़े लगाये जाने की परिपाटी का ग्रन्त करना होगा, ग्रादि, ग्रादि, जिसकी बिस्मार्क कभी इजाज़त नहीं देगा ग्रौर जो प्रशियाई **नौकरशाही** राज्य से क़तई मेल नहीं खाता। मैंने यह भी लिखा था कि यदि सदन संघबद्धता क़ानूनों को मंसूख़ कर भी दे, सरकार **शब्दजाल** का (उदाहरण के लिए सामाजिक प्रश्न "ग्रधिक गहन" पगों की ग्रपेक्षा करता है, ग्रादि) सहारा ले लेगी ताकि वह उन्हें

*गले पड़े को निभाना।—सं०

बरक़रार रख सके। यह सब सही सिद्ध हुआ। और श्री वान श्वीट्ज़र ने क्या किया? वह **बिस्मार्क के पक्ष में** एक लेख लिख बैठते हैं तथा अपनी सारी शूर-वीरता शुल्ज़े और फ़ाउहेर आदि कहीं छोटे लोगों के विरुद्ध संघर्ष के लिए आरक्षित रखते हैं।

मेरी राय में श्वीट्ज़र तथा दूसरे लोगों के **नेक** इरादे हैं, परन्तु वे "**व्यावहारिक राजनीतिज्ञ**" हैं। वे विद्यमान परिस्थितियों को ध्यान में रखना चाहते हैं तथा "व्यावहारिक राजनीति" का यह **विशेषाधिकार** माइकेल और उनकी मण्डली को विशिष्ट उपयोग के लिए सौंपने से इन्कार करते हैं। (माइकेल और उनकी मंडली प्रशियाई सरकार के साथ घुलने-मिलने का अधिकार अपने लिए आरक्षित रखने के लिए इच्छुक प्रतीत होती है।) इन लोगों को पता है कि प्रशा में (और इसलिए शेष जर्मनी में भी) मज़दूरों के अख़बार तथा मज़दूरों का आन्दोलन मात्र पुलिस की कृपा से विद्यमान हैं। इसलिए वे हालात जैसे हैं, उन्हें उसी रूप में स्वीकार करते हैं और सरकार को नाराज़ नहीं करना चाहते, आदि, ठीक हमारे "**जनतंत्रवादी**" व्यावहारिक राजनीतिज्ञों की तरह जो होहेनज़ालर्न वंश के **सम्राट** को "अपने साथ रखने के लिए" इच्छुक हैं। परन्तु चूंकि मैं "व्यावहारिक राजनीतिज्ञ" नहीं हूं, मैंने एंगेल्स के साथ मिलकर «*Social-Demokrat*» को एक सार्वजनिक वक्तव्य के माध्यम से (जिसे आप जल्द ही किसी अख़बार में पढ़ेंगे) उससे अलग होने का नोटिस देना ज़रूरी समझा है।

इसलिए आप शीघ्र यह भी समझ लेंगे कि इस समय मैं क्यों प्रशा में **कुछ नहीं** कर सकता। वहां सरकार ने प्रशा की नागरिकता वापस देने से साफ़ इन्कार कर दिया है।[99]

मुझे वहां **प्रचार** करने की इजाज़त उसी सूरत में दी जा सकती है जब उसका रूप श्री बिस्मार्क को स्वीकार्य हो।

मैं अपना प्रचार यहां अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर संघ के ज़रिए चलाना सौ गुना ज़्यादा पसन्द करता हूं। **अंग्रेज़** सर्वहारा पर उसका प्रभाव प्रत्यक्ष और सर्वाधिक महत्व का है। हम यहां इस समय सार्वजनिक मताधिकार के प्रश्न पर आन्दोलन कर रहे हैं जिसका निस्सन्देह यहां महत्व प्रशा से **सर्वथा भिन्न** है।

कुल मिलाकर इस संघ की प्रगति यहां, पेरिस, बेल्जियम, स्विट्ज़रलैंड तथा इटली में **सर्वथा आशातीत** है। निस्सन्देह जर्मनी में लासाल के अनुयायी मेरा विरोध कर रहे हैं, १) जिन्हें अपना महत्व खो जाने का मूर्खतापूर्ण भय

है; २) जो यह जानते हैं कि मैं उसका खुला विरोधी हूं जिसे जर्मन "व्यावहारिक राजनीति" के नाम से पुकारते हैं। (इसी क़िस्म की "व्यावहारिकता" ने जर्मनी को अब तक तमाम सभ्य देशों से पीछे रखा है।)

चूंकि सदस्यता कार्ड के लिए एक शिलिंग देनेवाला कोई भी व्यक्ति संघ का सदस्य बन सकता है; चूंकि फ़्रांसीसियों ने (बिल्कुल बेल्जियनों जैसा) व्यक्तिगत सदस्यता का यह रूप इसलिए चुना कि क़ानून उन्हें "सहचार" के रूप में हमसे सम्बद्ध होने से रोकता है; और चूंकि स्थिति जर्मनी से बिल्कुल मिलती है, मैंने जर्मनी में अपने दोस्तों से यह कहने का फ़ैसला किया है कि वे छोटी-छोटी सोसायटियां – सदस्यों की संख्या का कोई महत्व नहीं है – बनायें तथा हर सदस्य अंग्रेज़ सदस्यता कार्ड हासिल करे। चूंकि अंग्रेज़ सोसायटी **वैध** है, इस तरह की कार्यविधि का अनुसरण करने की राह में कोई रुकावट नहीं है, फ़्रांस में भी नहीं। यदि आप तथा आपके दोस्त इस ढंग से लन्दन के सम्पर्क में आ सकें तो मुझे बहुत प्रसन्नता होगी...

अंग्रेजी से अनूदित।

लुडविग कुगेलमन के नाम मार्क्स का पत्र

हैनोवर में

लन्दन, ९ अक्तूबर १८६६

... मुझे जेनेवा में पहली कांग्रेस के बारे में बहुत आशंका थी, परन्तु मेरी अपेक्षा के विपरीत उसका काम कुल मिलाकर सुचारु रूप से हुआ। फ़्रांस, इंगलैंड तथा अमरीका में उसका प्रभाव आशातीत रहा। मैं वहां नहीं जा सकता था और न जाना चाहता था परन्तु मैंने लन्दन के डेलीगेटों के लिए कार्यक्रम लिख दिया था।* मैंने उसे जानबूझकर उन मुद्दों तक सीमित रखा जिन पर मज़दूर तत्काल सहमत हो सकें तथा संयुक्त कार्रवाइयां कर सकें और जो वर्ग-संघर्ष की आवश्यकताओं को तथा वर्ग के रूप में मज़दूरों के संगठन को प्रत्यक्ष पोषण सामग्री

---

*देखें प्रस्तुत संस्करण, खण्ड २, भाग १। – सं०

तथा संवेग प्रदान करते हैं। पेरिस के सज्जनों के दिमाग़ में सबसे खोखली प्रूदोंपंथी शब्दावली भरी हुई थी। वे विज्ञान के बारे में चखचख करते हैं परन्तु उसके बारे में लेशमात्र नहीं जानते। वे सारी **क्रान्तिकारी** कार्रवाई, अर्थात् स्वयं वर्ग-संघर्ष से पैदा होनेवाली कार्रवाई को, सारे संकेन्द्रित, सामाजिक आन्दोलनों को और इसलिए उन आन्दोलनों को भी हिकारत की नज़र से देखते हैं जिन्हें **राजनीतिक साधनों** के माध्यम से चलाया जा सकता है (उदाहरण के लिए कार्य-दिवस को क़ानूनी तौर पर घटाना)। **स्वतंत्रता के बहाने**, सरकारविरोधवाद अथवा सत्तावाद विरोध – व्यक्तिवाद के बहाने, ये सज्जन – जो सोलह वर्षों से सर्वाधिक विकट निरंकुशतावाद को इतनी ख़ामोशी से सहन करते रहे और अब भी कर रहे हैं – वस्तुतः साधारण पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की वकालत करते हैं, अन्तर केवल यह है कि इसे प्रूदोंपंथी ढंग से आदर्शीकृत बनाया गया है! प्रूदों ने अपरिमित शरारत की। उनकी नकली आलोचना तथा कल्पनावादियों के उन द्वारा नकली विरोध ने (प्रूदों स्वयं मात्र निम्नपूंजीवादी कल्पनावादी हैं जबकि फ़ुरिए, ओवेन, आदि के कल्पनाविलास में एक नये संसार की पूर्वकल्पना तथा कल्पनामय अभि-व्यंजना है) सबसे पहले Jeunesse brilliante* को, छात्रों को और फिर मजदूरों को, ख़ासकर पेरिस के उन लोगों को आकृष्ट तथा भ्रष्ट किया जिनका विलास सामग्रियों के व्यवसायों के मज़दूरों के नाते अनजाने ही पुराने कूड़ा-कर्कट से दृढ़ अनुराग है। ये अज्ञानी, घमंडी, दंभी, बातूनी, लफ़्फ़ाज लोग सब कुछ बिगाड़ने ही वाले थे क्योंकि वे इतनी तादाद में कांग्रेस में आ धमके जिसका उनके सदस्यों की संख्या से कोई मेल ही नहीं था। मैं रिपोर्ट में इनका सीधे नाम न लेकर इनसे पूरा हिसाब-किताब चुकता करूंगा।

बाल्टिमोर में अमरीकी मज़दूर कांग्रेस ने[100], जो लगभग उसी समय हुई, मुझे बहुत आनन्दित किया। वहां नारा था पूंजी के विरुद्ध संघर्ष के लिए संगठन। और यह उल्लेखनीय है कि जेनेवा के लिए मैंने जो मांगें निरूपित की थीं, उनमें से अधिकांश वहां भी प्रस्तुत की गयीं जिसका श्रेय मज़दूरों की सही सहज प्रवृत्ति को है।

यहां का सुधार आन्दोलन, जिसे मूर्त्त रूप देने के लिए हमारी केंद्रीय कौंसिल ने आह्वान किया था (quorum magna pars fui)**, विशाल आकार ग्रहण कर

---

* ठाठ-बाट वाले तरुण। – सं०

* जिसमें मैंने बड़ी भूमिका अदा की (विर्जिलियस, 'एनेइद', दूसरी पुस्तक)। – सं०

चुका है और अरोध्य बन गया है[101]। मैं पूरे समय पृष्ठभूमि में रहा हूं और चूंकि वह चल पड़ा है, मैं इसके बारे में अब चिन्ता नहीं करता...

अंग्रेजी से अनूदित।

लुडविग कुगेलमन के नाम मार्क्स का पत्र

हैनोवर में

लन्दन, ११ जुलाई १८६८

... जहां तक *«Centralblatt»*[101] का सम्बन्ध है, लेखक का विचार है कि वह यह स्वीकार करके मुझे अधिकतम रियायत दे रहा है कि यदि मूल्य की अवधारणा का कोई भी अर्थ निकलता है तो मैं जो निष्कर्ष निकाल रहा हूं, उन्हें स्वीकार किया जाना चाहिए। बदक़िस्मत यह नहीं देखता कि यदि मेरी पुस्तक में "मूल्य"[103] पर कोई अध्याय न भी होता तब भी वास्तविक सम्बन्धों का जो विश्लेषण मैंने किया है, उसमें वास्तविक मूल्य सम्बन्ध का प्रमाण तथा सम्पुष्टि होती। मूल्य की अवधारणा को सिद्ध करने की आवश्यकता की इस सारी बकवास का स्रोत विषय का, जिस पर विचार किया गया, तथा वैज्ञानिक विधि दोनों का अज्ञान है। हर बच्चा जानता है कि जो राष्ट्र एक वर्ष तो क्या चन्द सप्ताह भी काम नहीं करेगा, वह नष्ट हो जायेगा। हर बच्चा यह भी जानता है कि भिन्न-भिन्न आवश्यकताओं के अनुरूप उत्पादों के समूह समाज के भिन्न-भिन्न तथा परिमाणतः निर्धारित श्रम की अपेक्षा करते हैं। यह स्वतःस्पष्ट है कि सामाजिक श्रम के निश्चित अनुपातों में **वितरण की इस आवश्यकता** को सम्भवतः सामाजिक उत्पादन का कोई **निश्चित रूप** समाप्त नहीं कर सकता, बल्कि केवल उसकी **अभिव्यक्ति के रूप** को ही परिवर्तित कर सकता है। किसी भी प्रकार के प्राकृतिक क़ानूनों को समाप्त नहीं किया जा सकता। ऐतिहासिक दृष्टि से भिन्न-भिन्न अवधियों में जो चीज़ बदल सकती है, वह केवल वह **रूप** है जिसमें ये क़ानून अपने लिए रास्ता बनाते हैं। और वह रूप, जिसमें श्रम का सानुपातिक वितरण अपने लिए रास्ता बनाता है, समाज की उस व्यवस्था के अन्दर, जहां सामाजिक श्रम का

अन्त:सम्बन्ध श्रम के पृथक-पृथक उत्पादों के **निजी विनिमय** में व्यक्त होता है, इन उत्पादों का ठीक **विनिमय मूल्य** हुआ करता है।

विज्ञान का कार्यभार यह प्रदर्शित करने में निहित है कि मूल्य का नियम **कैसे** अपना रास्ता बनाता है। इसलिए यदि कोई शुरू में ही सारे घटना-व्यापारों पर, जो प्रकटत: उस नियम का विरोध करते हैं, "प्रकाश डालना" चाहता है तो उसे विज्ञान **के पहले** विज्ञान को प्रस्तुत करना होगा। रिकार्डो की ठीक यही ग़लती है कि मूल्य पर अपने पहले अध्याय में वह तमाम सम्भव तथा आगे विकसित होनेवाले प्रवर्गों को **पूर्व-दत्त** मान लेते हैं ताकि मूल्य के नियम के साथ उनकी अनुरूपता सिद्ध कर सकें।

दूसरी ओर, जैसा कि आपने ठीक समझा, **सिद्धान्त का इतिहास** निश्चित रूप से यह प्रदर्शित करता है कि मूल्य सम्बन्ध की अवधारणा **सदैव एक जैसी रही है**, कमोबेश स्पष्ट रही है, कमोबेश भ्रान्तियों से उलझी रही है अथवा वैज्ञानिक दृष्टि से कमोबेश निश्चित रही है। चूंकि चिंतन प्रक्रिया स्वयं कुछ विशेष अवस्थाओं के बीच से जन्म लेती है, स्वयं एक **नैसर्गिक प्रक्रिया** है, इसलिए वस्तुत: ग्रहणशील चिन्तन सदैव एक जैसा होना चाहिए तथा उसमें विकास की परिपक्वता के अनुसार, और चिन्तनशील अंग के विकास के अनुसार भी धीरे-धीरे अन्तर आ सकता है। बाक़ी सब बकवास है।

बाज़ारू अर्थशास्त्री को इस बात का लेशमात्र ज्ञान नहीं है कि नित्यप्रति के वास्तविक विनिमय सम्बन्धों की मूल्य के आकारों से **प्रत्यक्षतया समरूपता नहीं हो सकती**। पूंजीवादी समाज का सार ठीक इसी में निहित है कि उसमें a priori* उत्पादन का कोई सचेतन सामाजिक नियमन नहीं होता। तर्कबुद्धि और स्वभावतया आवश्यकता केवल आंखें बन्द कर काम करनेवाले औसत के रूप में ही अपना रास्ता बना सकती हैं। और फिर बाज़ारू अर्थशास्त्री जब आन्तरिक सम्बन्ध के अनावरण की जगह गर्वपूर्वक यह घोषणा करता है कि अभिव्यक्ति में वस्तुएं भिन्न लगती हैं तो वह सोचता है कि उसने बहुत बड़ी खोज कर डाली है। वस्तुत: वह तो यह डींग हांकता है कि वह अभिव्यक्ति का दृढ़ समर्थक है, और वह उसे अन्तिम वस्तु मान बैठता है। तो फिर विज्ञान की जरूरत क्या है?

परन्तु मामले की एक और पृष्ठभूमि है। एक बार अन्त:सम्बन्ध को समझ लिया जाये, तो विद्यमान अवस्थाओं की स्थायी आवश्यकता में सैद्धान्तिक विश्वास

---

* प्रागनुभविक।-- सं०

व्यवहार में उनके धराशायी होने से पहले ही धराशायी हो जाता है। इसलिए यहां सत्तारूढ़ वर्गों के नितान्त हित में है कि इस निरर्थक भ्रान्ति को क़ायम रखा जाये। और आख़िर इन चाटुकार वाचालों को और किसलिए पैसा दिया जाता है जिनके पास इसके अलावा और कोई तुरुप नहीं है कि राजनीतिक अर्थशास्त्र में सोचने की जरूरत ही नहीं है।

परन्तु satis superque*। अलबत्ता इससे पता चलता है कि पूंजीपति वर्ग के इन पुरोहितों की क्या हालत हो गयी है—जहां मजदूर और कारख़ानेदार तथा तिजारती तक मेरी पुस्तक को** समझते हैं और उन्हें इसमें अपने लिए रास्ता मिलता है, वहां ये "**विद्वान** क़लमघिस्सू" (!) यह शिकायत करते हैं कि मैं उनकी बुद्धि से जरूरत से ज़्यादा तक़ाज़ा कर रहा हूं।

अंग्रेज़ी से अनूदित।

लुडविग कुगेलमन के नाम मार्क्स का पत्र

हैनोवर में

लन्दन, १२ अप्रैल १८७१

... कल हमें लोगों को यह समाचार, जो चित्त स्थिर करनेवाला कदापि नहीं है, मिला कि लफ़ार्ग (लाउरा नहीं) इस समय पेरिस में है।

यदि मेरी 'अठारहवीं ब्रूमेर'*** के अन्तिम अध्याय को खोलो तो देखोगे कि उसमें मैंने कहा है कि फ़्रांसीसी क्रान्ति का अगला पग पहले की तरह नौकरशाही-फ़ौजी मशीनरी को एक हाथ से दूसरे हाथ में कर देने का नहीं, बल्कि उसे **चकनाचूर कर देने** का होगा, और यही यूरोपीय महाद्वीप में किसी भी सच्ची जन क्रान्ति के सम्पन्न होने की प्रारम्भिक शर्त है। पेरिस में हमारे बहादुर पार्टी कामरेड यही कोशिश कर रहे हैं। कैसी नमनीयता, कैसी ऐतिहासिक पेशक़दमी,

---

* बहुत हो गया।—सं०
** कार्ल मार्क्स, 'पूंजी'।—सं०
*** देखें प्रस्तुत संस्करण, खण्ड २, भाग १।—सं०

क़ुर्बानी की कैसी क्षमता इन पेरिस वालों में है! छः महीने तक भुखमरी और तबाही के बाद भी, जिसका कारण बाहरी दुश्मन से ज़्यादा अन्दरूनी ग़द्दारी रहा है वे प्रशियाई संगीनों के साये के नीचे उठ खड़े हुए हैं मानो फ़्रांस और जर्मनी में युद्ध कभी हुआ ही न हो और दुश्मन पेरिस के दरवाज़े पर अब तक मौजूद न हो! ऐसी महानता इतिहास में बेमिसाल है! यदि वे पराजित हुए तो इसका कारण सिर्फ़ उनकी "भलमनसाहत" होगा। विनुआ और उसके साथ पेरिस राष्ट्रीय गार्ड के प्रतिक्रियावादी अंग पेरिस से भाग जाने के बाद, उन्हें फ़ौरन वेर्साई पर चढ़ाई कर देनी चाहिए थी। अंतःकरण के संकोच के कारण उन्होंने यह सुयोग छोड़ दिया। वे **गृहयुद्ध नहीं छेड़ना चाहते थे**, गोया थियेर, वह दुष्ट नरपिशाच, पेरिस को निरस्त्र करने की चेष्टा करके गृहयुद्ध पहले ही नहीं छेड़ चुका था! दूसरी ग़लती: केन्द्रीय समिति ने, कम्यून के लिए स्थान रिक्त करने के लिए, बहुत जल्द अपनी सत्ता त्याग दी। यह भी अत्यधिक "भद्रतापूर्ण" नैतिक संकोच के कारण किया गया! जो भी हो, पेरिस का वर्तमान विद्रोह जून के पेरिस विद्रोह के बाद हमारी पार्टी का सबसे शानदार कारनामा है, भले ही पुराने समाज के भेड़िये, सूअर और नीच कुत्ते उसे कुचल डालें। स्वर्ग पर धावा बोलनेवाले इन पेरिस वालों की तुलना ज़रा जर्मन-प्रशियाई पवित्र रोमन साम्राज्य के ग़ुलामों से, उसके प्राक्प्रलय स्वांगों से फ़ौजी बारिकों, चर्च, युंकरशाही और सर्वोपरि कूपमण्डूकता की कड़ी गन्ध आती है।

प्रसंगवश। लूई बोनापार्त के ख़ज़ाने से सीधे अनुदान पानेवालों की **सरकार द्वारा प्रकाशित** सूची में एक नोट है कि **फ़ोग्ट को** अगस्त १८५९ में ४०,००० फ़्रैंक मिले! लीब्कनेख़्त को मैंने यह सूचना दे दी है ताकि आगे इसका और उपयोग किया जा सके।

हक्स्ट्हाउज़ेन की पुस्तक[104] तुम मेरे पास भेज सकते हो, क्योंकि इधर मुझे जर्मनी ही नहीं, बल्कि पीटर्सबर्ग से भी पैम्फ़्लेट, आदि सुरक्षित अवस्था में मिलने लगे हैं।

उन विभिन्न अख़बारों के लिए धन्यवाद जो तुमने भेजे हैं (और अधिक अख़बार भेजो, क्योंकि मैं जर्मनी, राइख़स्टाग, आदि के बारे में कुछ लिखना चाहता हूं)।

अंग्रेज़ी से अनूदित।

लुडविग कुगेलमन के नाम मार्क्स का पत्र

हैनोवर में

[लन्दन], १७ अप्रैल १८७१

तुम्हारा पत्र मिल गया था। अभी मैं अत्यधिक व्यस्त हूं। इसलिए दो-चार शब्द ही लिखूंगा। १३ जून १८४६ जैसे निम्नपूंजीवादी प्रदर्शनों[105] की तुलना तुम पेरिस के वर्तमान संघर्ष से करते हो, यह बात मेरी समझ में बिलकुल ही नहीं आती।

अगर ऐसी अनुकूल अवस्था होने पर ही संघर्ष छेड़ा जाये जिसमें चूक की कोई गुंजायश न हो, तो सचमुच ही विश्व इतिहास की रचना अत्यंत सरल हो जायेगी। दूसरी ओर, यदि "संयोग" का इतिहास में योगदान न होता तो उसका चरित्र घोर रहस्यपूर्ण हो जाता। ये संयोग विकास के साधारण क्रम के संघटक अंग होते हैं, और अन्य संयोगों द्वारा संतुलित होते रहते हैं। पर तेज़ गति या देरी बहुत कुछ ऐसे "संयोगों" पर अवलम्बित होती है जिनमें यह "संयोग" भी सम्मिलित है कि आन्दोलन का पहले-पहल नेतृत्व करनेवाले लोग कैसा चरित्र रखते हैं।

इस बार का निर्णायक रूप से प्रतिकूल "संयोग" फ़्रांसीसी समाज की आम अवस्थाओं में नहीं, बल्कि इस चीज़ में अन्तर्निहित है कि फ़्रांस में प्रशियाई घुसे हुए हैं और पेरिस की ऐन देहरी पर खड़े हैं। पेरिसवासियों को इसका बख़ूबी पता था। पर इसका पता वेर्साई की पूंजीवादी भीड़ को भी था। ठीक इसी कारण उन्होंने पेरिसवासियों को दो रास्तों में से एक चुनने को मजबूर किया – या तो लड़ें या बिना लड़े ही समर्पण कर दें। दूसरा रास्ता अपनाये जाने की सूरत में मज़दूर वर्ग की पस्तहिम्मती बहुत सारे "नेताओं" के नष्ट होने से कहीं अधिक दुर्भाग्यजनक होती। पेरिस कम्यून के साथ पूंजीपति वर्ग और उसके राज्य के विरुद्ध मज़दूर वर्ग के संघर्ष ने एक नये दौर में प्रवेश किया है। उसका तात्कालिक परिणाम चाहे जो भी हो, विश्वव्यापी महत्व का एक नया प्रस्थान-बिंदु पा लिया गया है।

अंग्रेज़ी से अनूदित।

फ़्रेडरिक बोल्ट के नाम मार्क्स का पत्र

न्यूयार्क में

[लन्दन], २३ नवम्बर १८७१

... **इंटरनेशनल** की स्थापना समाजवादी और अर्द्धसमाजवादी पंथों के स्थान पर संघर्ष के लिए मज़दूर वर्ग का एक सच्चा संगठन क़ायम करने के लिए की गयी थी। उसकी मूल नियमावली तथा उद्घाटन घोषणा* इस चीज़ की एकदम पुष्टि करती हैं। दूसरी ओर, यदि इतिहास की धारा ने पंथवाद को पहले ही चूर चूर न कर दिया होता तो इंटरनेशनल अपने को क़ायम नहीं रख सकता था। समाजवादी पंथवाद के विकास और असली मज़दूर आन्दोलन के विकास में सदा से विलोम अनुपात रहा है, जिस अनुपात में एक बढ़ता है उसी अनुपात में दूसरा घटता है। पंथों का उस समय तक (ऐतिहासिक दृष्टि से) औचित्य रहता है, जब तक कि मज़दूर वर्ग स्वतंत्र ऐतिहासिक आन्दोलन के लिए परिपक्व नहीं हो जाता। पर ज्यों ही उसमें यह परिपक्वता आ जाती है त्यों ही सभी पंथ सारभूत रूप में प्रतिगामी बन जाते हैं। इतिहास ने सभी जगह जो दिखाया है, उसकी पुनरावृत्ति इंटरनेशनल के इतिहास में भी हुई। जो पुराना पड़ जाता है, वह नव उपलब्ध रूप के अन्दर फिर पैर जमाने तथा अपनी स्थिति क़ायम करने की कोशिश करता है।

इंटरनेशनल का इतिहास मज़दूर वर्ग के असली आन्दोलन के प्रतिकूल स्वयं इंटरनेशनल के भीतर अपनी स्थिति क़ायम रखने की कोशिश करनेवाले पंथों और शौक़िया प्रयोगों के ख़िलाफ़ **जनरल कौंसिल का निरन्तर संघर्ष** रहा है। यह संघर्ष **कांग्रेसों में** चलाया जाता था। पर उससे भी कहीं अधिक वह अलग-अलग शाखाओं के साथ जनरल कौंसिल के निजी व्यवहार में चला करता था।

पेरिस में चूंकि प्रूदोंपंथी (परस्परवादी[106]) संघ के सह-संस्थापकों में से थे इसलिए वहां पहले कुछ सालों में बागडोर स्वभावतया उनके ही हाथ में रही। बेशक बाद में उनके विरोध में सामूहिकतावादी और प्रत्यक्षवादी, आदि दल स्थापित किये गये।

---

* **का० मार्क्स**, 'अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर संघ की उद्घाटन घोषणा'।—**सं०**

जर्मनी में लासाल का गुट था। मैं ख़ुद दो वर्षों तक कुख्यात श्वीट्ज़र के साथ पत्रव्यवहार करता रहा और मैंने उसके सामने अकाट्य रूप में प्रमाणित कर दिया कि लासाल का संगठन और कुछ नहीं, पंथवादी संगठन ही है और इस नाते इंटरनेशनल जिसके लिए प्रयत्नशील है उस **असली** मज़दूर आन्दोलन के संगठन के विरुद्ध है। पर इसे न समझने के उसके अपने ख़ास "कारण" थे।

१८६८ के अन्त में रूसी बकूनिन ने इस इरादे से **इंटरनेशनल** में प्रवेश किया कि वह उसके अंदर **"समाजवादी जनवाद का सहबन्द"** नाम से **एक दूसरा इंटरनेशनल क़ायम करें जिसके नेता वह ख़ुद हों।** सैद्धान्तिक ज्ञान से शून्य इस सज्जन ने यह दावा पेश किया कि उसकी अलग संस्था इंटरनेशनल के **वैज्ञानिक** प्रचार का प्रतिनिधित्व करेगी और **इंटरनेशनल के अन्दर** के इस दूसरे **इंटरनेशनल** का विशेष कार्य यह प्रचार करना होगा।

उनका कार्यक्रम खिचड़ी था। उसमें था – **वर्गों की समानता** (!), सामाजिक आन्दोलन के **प्रस्थान-बिन्दु के रूप में उत्तराधिकार का उन्मूलन** (यह सेंट-साइमनपंथी बकवास है), इन्टरनेशनल के सदस्यों पर लादे जानेवाले **जड़सूत्र** के रूप में **निरीश्वरवाद**, आदि, और मुख्य जड़सूत्र **राजनीतिक आन्दोलन से (प्रूदोंपंथी) परहेज़।**

यह बाल-पोथी इटली और स्पेन में, जहां मज़दूर आन्दोलन की वास्तविक अवस्थाएं अभी तक विकसित नहीं हैं, पसन्द की गयी (वहां अब भी इसका कुछ असर है); लैटिन स्विट्ज़रलैण्ड तथा बेल्जियम के कुछ अहंकारी, महत्त्वाकांक्षी और खोखले मतवादियों को भी वह अच्छी लगी।

श्री बकूनिन के लिए उसका सिद्धान्त (जो प्रूदों, सेंट-साइमन, आदि से मांग कर इकट्ठा किया कूड़ा-कर्कट मात्र है) गौण वस्तु था और आज भी है। वह यह दिखलाने का ज़रिया मात्र है कि वह भी कुछ हैं। पर सिद्धान्तकार के रूप में नगण्य बकूनिन का षड्यंत्रकारी का रूप उनका सहज, प्रकृत रूप है।

जनरल कौंसिल को वर्षों तक इस षड्यंत्र से (जिसको एक हद तक, ख़ासकर **दक्षिण फ़्रांस** में फ़्रांसीसी प्रूदोंपंथियों से समर्थन मिलता रहा) लोहा लेना पड़ा। अन्त में उसने सम्मेलन के प्रस्ताव १, २ और ३, IX, XVI और XVII द्वारा अपना वह वार किया जिसकी लम्बे अरसे से तैयारी की गयी थी[107]।

प्रगट है कि जनरल कौंसिल यूरोप में जिस चीज़ के विरुद्ध संघर्ष कर रही थी, उसका ही अमरीका में समर्थन नहीं करेगी। प्रस्ताव १,२,३ और IX न्यूयार्क कमेटी को अब वे क़ानूनी हथियार प्रदान करते हैं जिनसे वह सभी पंथवाद और

शौक़िया जमातों का ख़ात्मा कर सकती है, और आवश्यकता पड़ने पर उन्हें निकाल बाहर कर सकती है...

मज़दूर वर्ग के राजनीतिक आन्दोलन का अंतिम लक्ष्य निश्चय ही मज़दूर वर्ग के लिए राजनीतिक सत्ता पर क़ब्ज़ा करना है। स्वभावतया इसके लिए यह आवश्यक है कि मज़दूर वर्ग के आर्थिक संघर्ष से उद्भूत उसका पहले से एक संगठन कुछ हद तक विकसित कर लिया गया हो।

पर दूसरी ओर बात यह भी है कि जिस भी आन्दोलन में मज़दूर वर्ग एक वर्ग के रूप में शासक वर्गों के साथ मुक़ाबले पर आता है और उन्हें बाहरी दबाव के ज़रिये मजबूर करने की चेष्टा करता है, वह राजनीतिक आन्दोलन है। उदाहरणार्थ, किसी फ़ैक्टरी में या किसी व्यवसाय में भी, हड़तालों, आदि के ज़रिये अलग-अलग पूंजीपतियों को और अधिक छोटा कार्य दिवस मानने के लिए मजबूर करना विशुद्ध आर्थिक आन्दोलन है। दूसरी ओर, आठ घंटे के कार्य दिवस, आदि का क़ानून मनवाने का आन्दोलन **राजनीतिक** आन्दोलन है। इस तरह, मज़दूरों के अलग-अलग आर्थिक आन्दोलनों से हर जगह एक **राजनीतिक** आन्दोलन विकसित हो जाता है, अर्थात् एक **वर्ग** का आन्दोलन विकसित हो जाता है जिसका उद्देश्य अपने हितों को एक सामान्य रूप में उपलब्ध करना है, ऐसे रूप में उपलब्ध करना है जिसकी विशेषता यह है कि वह पूरे समाज के लिए अनिवार्य हो। इन आन्दोलनों के लिए यदि कुछ हद तक पहले से संगठन का होना पूर्वमान्य है तो इसी तरह यह भी सही है कि ये स्वयं इस संगठन के विकास के साधन होते हैं।

जहां मज़दूर वर्ग का संगठन इतना विकसित नहीं होता कि सामूहिक सत्ता के विरुद्ध, यानी शासक वर्गों की राजनीतिक सत्ता के विरुद्ध निर्णायक अभियान छेड़ सके, वहां शासक वर्गों के विरुद्ध निरन्तर प्रचार करके तथा उनकी नीति के प्रति विरोधी रुख़ अख़्तियार करके इस वर्ग को इसके लिए हर हालत में प्रशिक्षित तो करना ही चाहिए। वरना वह शासक वर्गों के हाथों का खिलौना बना रहेगा जैसा कि फ़्रांस की सितम्बर क्रान्ति[108] से ज़ाहिर हुआ और जैसा कि एक हद तक इससे भी सिद्ध होता है कि ग्लैड्स्टन और उनकी मण्डली इंगलैंड में आज तक सफलतापूर्वक अपना खेल खेले जा रही है।

अंग्रेज़ी से अनूदित।

थियोदोर कुनो के नाम एंगेल्स का पत्र

०

मिलान में

लन्दन, २४ जनवरी १८७२

...बकूनिन, जो १८६८ तक इंटरनेशनल के ख़िलाफ़ साज़िशें रचते रहे, बेर्न कांग्रेस[109] के टांय-टांय फिस हो जाने के बाद उसमें शामिल हो गये और **उसके अन्दर** फ़ौरन जनरल कौंसिल के ख़िलाफ़ षड्यंत्र करने लगे। बकूनिन का अपना ही एक विचित्र सिद्धांत है, प्रूदोंपंथ तथा कम्युनिज़्म की खिचड़ी। मुख्य बात यह है कि वह पूंजी को, अर्थात् पूंजीपतियों और उजरती मज़दूरों के बीच वर्ग-विरोध को नहीं, जो सामाजिक विकास के फलस्वरूप उत्पन्न हुआ है, वरन् **राज्य** को वह मुख्य बुराई मानते हैं जिसे ख़त्म किया जाना चाहिए। जहां सामाजिक-जनवादी मज़दूरों की बहुत बड़ी तादाद हमारे इस विचार को अपनाती है कि राजकीय सत्ता एक ऐसे संगठन के अलावा और कुछ नहीं है जिसको सत्तारूढ़ वर्गों ने—ज़मींदारों तथा पूंजीपतियों ने—अपने लिए स्थापित किया है ताकि वे अपने सामाजिक विशेषाधिकारों की रक्षा कर सकें। बकूनिन यह मानते हैं कि यह **राज्य** ही है जिसने पूंजी की रचना की है, कि पूंजीपति के पास केवल **राज्य की कृपा से ही** पूंजी होती है। इसलिए राज्य चूंकि मुख्य बुराई है, इसलिए सर्वोपरि राज्य को ही ख़त्म करना चाहिए और तब पूंजी ख़ुद जहन्नुम में पहुंच जायेगी। इसके विपरीत हम लोगों का कहना है—पूंजी को, उत्पादन के समस्त साधनों के चन्द हाथों में संकेन्द्रण को ख़त्म कर दें, और राज्य ख़ुद ढह जायेगा। अन्तर बुनियादी है—पहले सामाजिक क्रान्ति के बिना राज्य के उन्मूलन की बात बकवास है; ठीक पूंजी का उन्मूलन ही सामाजिक क्रान्ति है और उसमें उत्पादन की पूरी पद्धति में परिवर्तन निहित है। परन्तु बकूनिन के लिए चूंकि राज्य मुख्य बुराई है, कोई ऐसा काम नहीं होना चाहिए जो राज्य को—अर्थात् किसी भी तरह के राज्य को, चाहे यह जनतंत्रीय हो या राजतंत्रीय अथवा कुछ और—जीवित रखे। इसलिए **सारी राजनीति से पूरी विरति होनी चाहिए**। कोई राजनीतिक कार्रवाई करना, ख़ास तौर पर चुनाव में भाग लेना सिद्धांत के साथ ग़द्दारी करना होगा। काम यह है कि प्रचार किया जाये, राज्य को जी भर गालियां दी जायें, **संगठन** किया जाये और जब **सब** मज़दूरों को, इसलिए बहुसंख्या को

अपने पक्ष में कर लिया जाये तो सत्ता के तमाम निकायों को विघटित कर दिया जाये, राज्य का उन्मूलन कर दिया जाये और उसके स्थान पर इंटरनेशनल का संगठन स्थापित कर दिया जाये। इस महान कृत्य को जिसके साथ स्वर्णयुग आरम्भ होता है, **सामाजिक विघटन** के नाम से पुकारा जाता है।

यह सब अतीव आमूल परिवर्तनवादी प्रतीत होता है और इतना सरल है कि इसे पांच मिनट में कण्ठस्थ किया जा सकता है। यही कारण है कि बकूनिनपंथी सिद्धांत को इटली तथा स्पेन में नौजवान वकीलों, डाक्टरों तथा अन्य मताग्रहियों के बीच इतनी तेज़ी से समर्थन प्राप्त हो गया। परन्तु मजदूर जनसाधारण कभी यह स्वीकार करने के लिए राज़ी नहीं होंगे कि उनके देशों के मामले उनके अपने नहीं हैं; वे स्वभाव से **राजनीतिक सक्रियता वाले** लोग होते हैं और जो कोई उनसे इस बात पर यक़ीन कराने की चेष्टा करता है कि वे राजनीति का बिलकुल त्याग करें, वह अन्ततः अपने को परित्यक्त पायेगा। मजदूरों को यह उपदेश देने का कि वे किसी भी परिस्थिति में राजनीति से विरत रहें, मतलब उन्हें पुरोहितों या पूंजीवादी जनतंत्रवादियों की बांहों में पहुंचाना होगा।

बकूनिन के अनुसार इंटरनेशनल चूंकि राजनीतिक संघर्ष के लिए नहीं, वरन् सामाजिक विघटन होते ही पुराने राजकीय संगठन का स्थान लेने के लिए गठित किया गया था, इसलिए उसे भावी समाज के विषय में बकूनिनपंथी आदर्श के अधिक से अधिक अनुरूप होना चाहिए। इस समाज में सर्वोपरि कोई **सत्ता** नहीं होगी क्योंकि सत्ता – राज्य – सरासर बुराई है। (लोग अन्तिम रूप से निर्णय देनेवाली किसी इच्छा के बिना, किसी व्यवस्था के बिना कैसे किसी कारख़ाने का संचालन करना चाहते हैं, कैसे कोई रेल चलाना चाहते हैं, कैसे किसी जलयान को आगे ले जाना चाहते हैं, यह वे निस्सन्देह हमें नहीं बताते।) अल्पमत पर बहुमत की सत्ता भी नहीं रह जाती; प्रत्येक व्यक्ति तथा प्रत्येक समुदाय स्वायत्तशासी है, परन्तु दो व्यक्तियों तक का समाज कैसे तब तक सम्भव है जब तक उसमें हरेक अपनी स्वायत्तता के कुछ अंश का त्याग न करे, इस पर भी बकूनिन मौन साधे हुए हैं।

तो इंटरनेशनल भी इसी ढर्रे पर गठित किया जाना चाहिए। प्रत्येक शाखा तथा प्रत्येक शाखा में प्रत्येक व्यक्ति स्वायत्तशासी होगा। जहन्नुम में जायें **बाज़ेल प्रस्ताव**[110] जो जनरल कौंसिल को घातक और स्वयं उसका नैतिक पतन करनेवाली सत्ता प्रदान करते हैं! यदि यह सत्ता स्वेच्छया दी जाती है, तब भी वह ख़त्म होनी चाहिए **क्योंकि** वह सत्ता ही है!

यह है इस ठगविद्या के मुख्य मुद्दों का सार। परन्तु बाज़ेल प्रस्तावों की पहल करनेवाले लोग कौन हैं? **स्वयं श्री बकूनिन** और उनकी मंडली!

इन सज्जनों ने जब बाज़ेल कांग्रेस में देखा कि वे जनरल कौंसिल को जेनेवा में स्थानान्तरित करने, यानी उसे अपने हाथ में लेने की उनकी योजना सफल होने नहीं जा रही है तो उन्होंने दूसरा रास्ता पकड़ा। उन्होंने वृहत् इंटरनेशनल **के अन्तर्गत** समाजवादी जनवाद के सहबंध की, एक अन्तर्राष्ट्रीय सोसायटी की उस बहाने से स्थापना कर दी जो आपको आज इटली में बकूनिनपंथी अख़बारों में, उदाहरण के लिए «*Proletario*» तथा «*Gazzettino Rosa*»[111] में फिर पढ़ने को मिलेगा: यह दावा किया गया है कि उत्तेजनशील लैटिन नस्लों को शान्तचित्त उत्तरवासियों की तुलना में अधिक तीक्ष्ण कार्यक्रम की ज़रूरत है। यह दयनीय योजना विफल हो गयी क्योंकि जनरल कौंसिल ने इसका विरोध किया जो स्वभावतः इंटरनेशनल **के अन्तर्गत** और कोई पृथक **अन्तर्राष्ट्रीय** संगठन सहन नहीं कर सकती थी। यह योजना इंटरनेशनल के कार्यक्रम के स्थान पर बकूनिन के कार्यक्रम को स्थापित करने की बकूनिन और उनके चेले-चांटों की लुकी-छुपी कोशिशों के रूप से भिन्न शक्ल तथा रूप में पुनः प्रकट हुई है। दूसरी ओर जब कभी इंटरनेशनल पर प्रहार करने का प्रश्न पैदा हुआ, जूल फ़ाव्र और बिस्मार्क से लेकर माज़्ज़िनी तक सारे प्रतिक्रियावादियों ने सदैव बकूनिनपंथियों की खोखली लफ़्फ़ाज़ी पर चोट की। इसलिए माज़्ज़िनी तथा बकूनिन के विरुद्ध मेरे ५ दिसम्बर के वक्तव्य की आवश्यकता पड़ी जो «*Gazzettino Rosa*» में भी प्रकाशित हुआ।

बकूनिनपंथियों का केन्द्रक जूरा के चन्द दर्जन लोगों को लेकर बना हुआ है जिनके मुश्किल से दो सौ मज़दूर अनुयायी हैं। इटली में इनके हरावल तरुण वकील, डाक्टर तथा पत्रकार हैं जो अब सर्वत्र इटली के मज़दूरों के प्रवक्ता के रूप में काम कर रहे हैं; इस तरह के कुछ लोग बार्सेलोना तथा मैड्रिड में हैं और कभी-कभार कोई एक-दो लियों और ब्रसेल्स में मिल जायेंगे जिनमें से कोई मज़दूर नहीं है; यहां* इनका एक ही नमूना है – राबिन।

परिस्थितिवश कांग्रेस की जगह जिसका आयोजन असम्भव हो गया था, जो कांफ़्रेंस बुलायी गयी, उसने इन लोगों के लिए एक बहाने का काम दिया और चूंकि स्विट्ज़रलैंड में अधिकांश फ़्रांसीसी उत्प्रवासी उनके पक्ष में इसलिए चले गये

---

* लन्दन में। – सं०

थे कि उन्हें (प्रूदोंपंथियों को) अपने कई सजातीय लोग मिल गये थे, इस कारण और व्यक्तिगत प्रयोजनों के कारण भी उन्होंने अपना अभियान आरम्भ कर दिया। निस्सन्देह इंटरनेशनल में असन्तुष्ट अल्पमत और मान्यतारहित प्रतिभाएं सर्वत्र मिल सकती हैं, इन लोगों पर ही भरोसा किया गया और अकारण नहीं।

इस समय इनकी संघर्षशील शक्ति इस प्रकार है–

१) स्वयं बकूनिन–इस अभियान के नेपोलियन।

२) जूरा के २०० लोग तथा फ़्रांसीसी शाखा के ४०–५० लोग (जेनेवा में उत्प्रवासी)।

३) ब्रसेल्स में हिन्स *«Liberté»*[112] के सम्पादक जो वैसे उनके पक्ष में **खुलकर सामने नहीं आते।**

४) यहां–१८७१ की फ़्रांसीसी शाखा[113] के अवशेष जिसे हमने कभी मान्यता नहीं दी थी और जो अब परस्पर शत्रुता रखनेवाले ३ भागों में बंट गयी है। इनके अलावा श्री वान श्वीटज़र की क़िस्म के लगभग २० लासालपंथी हैं जिन्हें जर्मन शाखा से निकाला जा चुका है (**इंटरनेशनल से** सामूहिक **रूप से हटने** का प्रस्ताव करने के कारण) और जो अतीव केन्द्रीकरण तथा कठोर संगठन के समर्थक होने के कारण अराजकतावादी और स्वायत्ततावादी संघ के लिए सोलहों आने उपयुक्त हैं।

५) स्पेन में बकूनिन के चन्द निजी दोस्त तथा अनुयायी जिन्होंने मज़दूरों पर–ख़ास तौर पर बार्सेलोना में–कम से कम सैद्धांतिक दृष्टि से बहुत असर डाला है। परन्तु स्पेनवासी संगठन के लिए बहुत उत्सुक हैं और दूसरों में इसके अभाव को वे तुरन्त देख लेते हैं। यहां बकूनिन सफलता पर कितना भरोसा कर सकते हैं, यह अप्रैल में स्पेनी कांग्रेस से ही मालूम होगा; पर चूंकि वहां मज़दूरों का प्रभुत्व होगा, इसलिए मेरे लिए चिन्ता का कोई कारण नहीं है।

६) अन्त में, जहां तक मुझे पता है, इटली में टूरिन, बोलोग्ना तथा गिर्गेन्ती शाखाओं ने घोषणा की है कि वे कांग्रेस **समय से पहले** बुलाने के पक्ष में हैं। बकूनिनपंथी अख़बारों का दावा है कि २० इतालवी शाखाएं उनके साथ शामिल हो गयी हैं; मैं उन्हें नहीं जानता। अलबत्ता लगभग सब जगह नेतृत्व बकूनिन के दोस्तों तथा उनके चेलों के हाथ में है जो ज़बर्दस्त कोलाहल मचा रहे हैं। परन्तु सूक्ष्मतापूर्वक देखने पर पता चल सकता है कि उनके अनुयायियों की तादाद इतनी बड़ी नहीं है क्योंकि अधिकांश इतालवी मज़दूर अब भी माज़्ज़िनीपंथी हैं और वे तब तक माज़्ज़िनीपंथी रहेंगे जब तक वहां इंटरनेशनल तथा राजनीति से विरति को अभिन्न समझा जायेगा।

पक्ष में है[117]। बेल्जियन कांग्रेस (२५–२६ दिसम्बर) ने मांग की है कि नियमावली में **संशोधन** किया जाये परन्तु ऐसा **नियमित** कांग्रेस में (सितम्बर) करने के लिए कहा है[118]। फ़्रांस से हमें रोज़ सहमति व्यक्त करनेवाले वक्तव्य प्राप्त हो रहे हैं। यहां, इंगलैंड में, स्वभावतया इन सारी साज़िशों को कोई समर्थन प्राप्त नहीं है। जनरल कौंसिल यक़ीनन चन्द शेख़ीबाज़ षड्यंत्रकारियों को ख़ुश करने के लिए असाधारण कांग्रेस बुलाने नहीं जा रही है। जब तक ये सज्जन अपने को क़ानूनी सीमाओं के अन्दर रखेंगे, कौंसिल उन्हें स्वतंत्र रूप से कार्रवाई करने देगी – सर्वथा विविध तत्वों का यह मोर्चा जल्द ढह जायेगा; परन्तु ज्योंही वे नियमावली या कांग्रेस के प्रस्तावों के विरुद्ध कोई कार्य करने लगेंगे, जनरल कौंसिल अपना कर्त्तव्य पूरा करेगी।

यदि आप इस तथ्य पर विचार करें कि इन लोगों ने अपना षड्यंत्र ठीक ऐसे समय संगठित किया है जब इंटरनेशनल के विरुद्ध एक आम चीख़-पुकार मचायी जा रही है तो आप यह सोचे बिना नहीं रह सकते कि अन्तर्राष्ट्रीय पुलिस का इस खेल में हाथ होगा। ऐसा है भी। बेज़्ये में जेनेवा के बकूनिनपंथियों ने केन्द्रीय पुलिस कमिश्नर* को अपना सम्वाददाता चुना है। दो प्रमुख बकूनिनपंथी लियों के अल्बेर रिशार तथा लेब्लां यहां आये थे तथा उन्होंने लियों के ही शोल नामक एक मज़दूर को, जिससे उन्होंने बातचीत की, बताया कि बोनापार्त को फिर से सिंहासनारूढ़ करना थियेर को हटाने का एकमात्र रास्ता है, और वे उत्प्रवासियों के बीच **बोनापार्त को पुनः सिंहासनारूढ़ करने के पक्ष में प्रचार करने के लिए बोनापार्त के धन से सफ़र कर रहे हैं!** यह है वह चीज जिसे ये सज्जन राजनीति से विरति बताते हैं! बर्लिन में बिस्मार्क के अनुदान से चलनेवाला *«Neuer Social-Demokrat»* भी यही राग अलापता है। इसमें रूसी पुलिस कहां तक शामिल है, इसे मैं फ़िलहाल विवादास्पद प्रश्न के रूप में छोड़ देता हूं। परन्तु बकूनिन का नेचायेव-कांड से गहरा सम्बन्ध था (यह सच है कि वह इससे इन्कार करते हैं परन्तु हमारे पास यहां मूल रूसी रिपोर्ट है और चूंकि मार्क्स और मैं दोनों रूसी समझते हैं, वह हमारी आंखों में धूल नहीं झोंक सकते)। नेचायेव या तो रूसी जोखोंबाज़ है, या उसने कम से कम इस तरह का व्यवहार अवश्य किया है। वैसे बकूनिन के रूसी दोस्तों में सब तरह के संदिग्ध लोग हैं।

---

* बुके। – सं०

ख़ैर, इटली में फ़िलहाल इंटरनेशनल में बकूनिनपंथियों की आवाज़ छायी हुई है। जनरल कौंसिल का इस बारे में शिकायत करने का कोई इरादा नहीं है; इतालवियों को सारी बेवक़ूफ़ियां करने का हक़ है, जनरल कौंसिल केवल शान्तिपूर्ण वाद-विवाद के ज़रिए इसका मुक़ाबिला करेगी। इन लोगों को जूरा के लोगों के अर्थ में कांग्रेस बुलाने की घोषणा करने का भी अधिकार है हालांकि यह बहुत ही अजीब बात है कि जो शाखाएं अभी-अभी संलग्न हुई हैं तथा जो किसी के बारे में कुछ भी नहीं जानतीं, उनसे तत्काल किसी एक का पक्ष लेने के लिए कहा जाये, ख़ासकर विवाद से सम्बन्धित **दोनों** पक्षों के विचार सुनने से पहले ही! मैंने टूरिनियनों को मामले के बारे में सीधी सच्ची बात बता दी है और इसी तरह की घोषणा करनेवाली दूसरी शाखाओं को भी बता दूंगा। इसलिए कि परिपत्र से संलग्नता की ऐसी प्रत्येक घोषणा परोक्ष रूप से परिपत्र में जनरल कौंसिल के विरुद्ध झूठे आक्षेपों तथा झूठी बातों का अनुमोदन है। प्रसंगतः जनरल कौंसिल शीघ्र इस मसले पर अपना ही एक परिपत्र* जारी करेगी[114]। यदि आप मिलान के लोगों को **परिपत्र के प्रकाशित होने तक** इस तरह की घोषणा करने से रोक सकें तो आप हमारी इच्छाओं की पूर्ति करेंगे।

सबसे मज़े की बात तो यह है कि ये ही टूरिनियनें, जो अपने को जूरा के लोगों के पक्ष में घोषित करते हैं, और हमें सत्तावादी होने के लिए झिड़कते हैं, अब एकाएक मांग करते हैं कि जनरल कौंसिल टूरिन में उसके प्रतिद्वन्द्वी मज़दूर संघ के विरुद्ध इस तरह के सत्तावादी पग उठाये जो उसने पहले कभी नहीं उठाये, और बेगेल्ली को «*Ficcanaso*»[115] से बहिष्कृत करे जो इंटरनेशनल का सदस्य तक नहीं है, आदि। और यह सब हम उस मज़दूर संघ की बात सुनने से पहले करें!

सोमवार** को मैंने आपके पास जूरा परिपत्र के साथ «*Révolution Sociale*» की एक प्रति, जेनेवा «*Égalité*» की एक प्रति (दुर्भाग्यवश मेरे पास उस अंक की एक भी प्रति नहीं रह गयी है जिसमें जेनेवा संघीय कमेटी[116] का उत्तर है जो जूरा के लोगों से बीस गुना ज़्यादा मज़दूरों का प्रतिनिधित्व करती है) तथा «*Volksstaat*» की एक प्रति भेजी थी जिससे आपको पता चलेगा कि इस मामले के बारे में जर्मन क्या सोचते हैं। सैक्सन कांग्रेस ने – ६० इलाक़ों के १२० डेलीगेटों ने – **सर्वसम्मति से** घोषित किया कि वह जनरल कौंसिल के

* देखें प्रस्तुत खण्ड। – **सं०**

** २२ जनवरी। – सं०

हेपनर नहीं, बल्कि हेपनर के नाम यार्क के ख़त से जिस पर समिति के दस्तख़त हैं, हम लोगों को यह आशंका हुई कि तुम्हारे कारावास को पार्टी के अधिकारीगण, जो दुर्भाग्यवश सब के सब लासालपंथी हैं, *«Volksstaat»* को एक "सच्चे" *«Neuer Social-Demokrat»* बना डालने के लिए इस्तेमाल करेंगे। यार्क ने तो साफ़-साफ़ क़बूल किया कि उनका यही इरादा था। और चूंकि समिति का दावा था कि सम्पादकों को नियुक्त करने और हटाने का उसे अधिकार है, इसलिए ख़तरा सचमुच काफ़ी बड़ा था। हेपनर के आसन्न निर्वासन से ये योजनायें और भी मज़बूत होती थीं। इस सूरत में हमारे लिए यह जानना परमावश्यक था कि स्थिति क्या है। यह चिट्ठी-पत्री इसी लिए की जा रही है...

जहां तक लासालपंथियों के प्रति पार्टी के रुख़ का सवाल है, तुम हम लोगों से ज़्यादा अच्छी तरह से विचार कर सकते हो कि ख़ास-ख़ास मामलों में कौनसी कार्यनीति अपनानी चाहिए। लेकिन विचारने की बात यह भी है कि जब कोई तुम्हारी तरह एक हद तक आम जर्मन मज़दूर संघ के प्रतियोगी की स्थिति में हो तो वह बड़ी आसानी से अपने प्रतिद्वन्द्वी का बहुत ज़्यादा लिहाज़ करने लगता है और इसकी आदत पड़ जाती है कि हमेशा सबसे पहले उसकी ही बात सोचे। लेकिन आम जर्मन मज़दूर संघ और सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी, ये दोनों ही अभी जर्मन मज़दूर वर्ग के अत्यन्त अल्पसंख्यक भाग हैं। हमारी राय (दीर्घ-कालीन व्यवहार द्वारा उसकी पुष्टि हो चुकी है) यह है कि प्रचार क्षेत्र में सही कार्यनीति यह है कि अपने विरोधियों में से अलग-अलग व्यक्तियों और जहां-तहां से कुछ सदस्यों को फ़ुसलाकर साथ नहीं लाना चाहिए, बल्कि अभी तक निष्क्रिय आम जनसमुदाय के बीच काम करना चाहिए। एक ऐसे व्यक्ति की अपरिष्कृत शक्ति, जिसे हमने ख़ुद आरम्भ से ही प्रशिक्षित करके तैयार किया है, दस लासालपंथी रंगे सियारों से ज़्यादा मूल्यवान है, जो हमेशा अपने साथ पार्टी में ग़लत प्रवृत्तियों के बीज लेकर आते हैं। और अगर कहीं हमें आम जनता अपने **स्थानीय नेताओं** के बिना मिल सके, तो वह भी ठीक है। पर होता यह है कि हमें साथ ही साथ इन नेताओं की एक पूरी जमात को भी लेना पड़ता है। वे अपने भूतपूर्व विचारों से नहीं तो अपने भूतपूर्व सार्वजनिक वक्तव्यों से तो बंधे ही होते हैं, और वे यह साबित करने की सबसे ज़्यादा ज़रूरत महसूस करते हैं कि हमने अपने पुराने सिद्धान्तों का परित्याग नहीं किया है, बल्कि उलटे सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी **सच्चे** लासालपंथ का प्रचार करती है। आइज़ेनाख़[119] में दुर्भाग्य से यही बात हुई गोकि सम्भवतः उस समय उससे बचा नहीं जा सकता था। लेकिन

इसमें ज़रा भी शक नहीं कि इन तत्त्वों ने पार्टी को नुक़सान पहुंचाया है। मैं विश्वासपूर्वक यह नहीं कह सकता कि ये लोग पार्टी में अगर न आये होते तो पार्टी आज कम से कम उतनी ही ताक़तवर न रहती जितनी कि वह है। जो भी हो, अगर इन तत्त्वों को नयी कुमक हासिल हुई तो मैं इसे दुर्भाग्य की बात समझूंगा।

"एकता" के नारे से हमें गुमराह नहीं होना चाहिए। जिन लोगों की ज़बान से यह शब्द सबसे ज़्यादा सुनने को मिलता है, वे ही सबसे ज़्यादा फूट के बीज बो रहे हैं। उदाहरण के लिए, सारी फूटों को उकसानेवाले, स्विट्ज़रलैंडी जूरा के बकूनिनपंथी ही सबसे ज़्यादा एकता की गुहार कर रहे हैं। एकता की रट लगानेवाले ये जिहादी या तो ऐसे कम अक़्ल लोग हैं जो सभी चीज़ों को एक ही हांडी में मिलाकर उसका एक बदरंग झोल तैयार करना चाहत हैं, ऐसा झोल जो जहां वह बैठना शुरू हुआ नहीं कि अपना सारा अलगाव प्रगट कर देगा और ज़्यादा तीखेपन के साथ प्रगट कर देगा क्योंकि तब सब कुछ एक ही बर्तन के अन्दर होगा (इसकी बढ़िया मिसाल जर्मनी में वे लोग उपस्थित करते हैं जो मज़दूरों और निम्नपूंजीपतियों के मेल-मिलाप की बातें करते हैं)। या ऐसे लोग एकता की रट लगाते हैं जो बिना जाने-बूझे (उदाहरणार्थ म्यूलबर्गर जैसे लोग) या जान-बूझकर आन्दोलन की विशुद्धता नष्ट करना चाहते हैं। इसी लिए सबसे बड़े संकीर्णतावादी और सबसे बड़े गुल-गपाड़िये तथा बदमाश कुछ ख़ास मौक़ों पर सबसे ज़्यादा गला फाड़कर एकता की दुहाई देते हैं। हमें अपनी ज़िन्दगी में एकता की गुहार मचानेवालों से ज़्यादा किसी ने परेशान नहीं किया है और न कोई इनसे ज़्यादा धोखेबाज़ निकला है।

स्वभावतः पार्टी का हर नेतृत्व सफलताएं चाहता है। और यह बहुत अच्छी चीज़ भी है। पर ऐसी भी परिस्थितियां होती हैं जब यह ज़रूरी हो जाता है कि अधिक महत्त्वपूर्ण चीज़ों के लिए तात्कालिक सफलता निछावर कर देने का साहस दिखाया जाये। ख़ासकर यह हमारी जैसी पार्टी के लिए ज़रूरी है जिसकी अन्तिम सफलता परम सुनिश्चित है और जिसने अपने जीवनकाल में और हमारे देखते-देखते इतनी ज़बर्दस्त प्रगति की है; उसके लिए सदा ही और अनिवार्य तात्कालिक सफलता की कोई ज़रूरत नहीं है, उदाहरण के लिए इंटरनेशनल को ही लें। कम्यून के बाद उसे विपुल सफलता प्राप्त हुई। पूंजीपति वर्ग, जिसे लकवा मार गया था, उसे सर्वशक्तिमान मानने लगा था। इंटरनेशनल के सदस्यों की बहुत बड़ी संख्या विश्वास करने लगी थी कि यह अवस्था चिरकाल तक क़ायम

रहेगी। पर हम अच्छी तरह जानते थे कि बुलबुला ज़रूर फूटेगा। सभी ऐरे-ग़ैरे-नत्थू-ख़ैरे उसके साथ हो लिये थे। उसके अन्दर बैठे संकीर्णतावादियों की बन आयी। इस आशा से कि उन्हें नीच से नीच और मूर्खतापूर्ण से मूर्खतापूर्ण हरकतें करने की इजाज़त है, वे इंटरनेशनल का दुरुपयोग करने लगे। हमने यह नहीं होने दिया। हम बख़ूबी जानते थे कि बुलबुला एक दिन ज़रूर फूटेगा। इसलिए हमने इस बात की फ़िक्र नहीं की कि आफ़त टली रहे, बल्कि इस बात का ख़याल रखा कि इंटरनेशनल जब संकट से बाहर निकले, वह खरा, बेदाग़ हो और उसमें कहीं मिलावट न हो। हेग में बुलबुला फूटा और तुम जानते ही हो कि कांग्रेस के अधिकांश प्रतिनिधि निराश और पस्त होकर घर लौटे थे। और फिर भी इंटरनेशनल में विश्व बन्धुत्व और मेल-मिलाप का आदर्श पाने की कल्पना करनेवाले प्रायः इन सभी निराश लोगों के अपने घर में जो झगड़े थे वे हेग में हुए झगड़े से कहीं ज़्यादा कटुतापूर्ण थे! अब संकीर्णतावादी झगड़ेबाज़ मेल-मिलाप के उपदेश दे रहे हैं और हम लोगों पर कलहप्रिय और तानाशाह होने का आरोप लगा रहे हैं! पर अगर हमने हेग में समझौते का रास्ता अपनाया होता, फूट दबा दी होती और फूट न पड़ने दी होती तो परिणाम क्या होता? संकीर्णतावादी, ख़ासकर बकूनिनपंथी, एक वर्ष और पा जाते जिसमें वे इंटरनेशनल के नाम पर और भी बड़ी-बड़ी मूर्खताएं और कलंकपूर्ण कृत्य करते। सबसे विकसित देशों के मज़दूर उकताकर विमुख हो जाते। बुलबुला फूटता नहीं, बल्कि हलकी-हलकी खरोंचें खाकर धीरे-धीरे पिचकता और अगली कांग्रेस, जिसमें संकट का सामने आना प्रत्येक दशा में अनिवार्य था, निकृष्टतम वैयक्तिक दंगों और फ़साद का अखाड़ा बनकर रह जाती, क्योंकि **सिद्धान्त** की तो हेग में ही क़ुरबानी दी जा चुकी होती! तब इंटरनेशनल सचमुच टुकड़े-टुकड़े हो जाता – "एकता" के कारण टुकड़े-टुकड़े हो जाता! इसके बदले, हमने ससम्मान सड़े-गले तत्त्वों से छुटकारा प्राप्त कर लिया है। (अन्तिम और निर्णायक अधिवेशन में मौजूद कम्यून के सदस्यों का कहना है कि यूरोप के सर्वहारा वर्ग के इन ग़द्दारों का फ़ैसला सुनानेवाली कचहरी के अधिवेशन ने जितना ज़बर्दस्त असर उनके ऊपर डाला, उतना कम्यून के किसी अधिवेशन ने नहीं डाला था।) दस महीनों तक हमने उन्हें झूठ, कुत्सा एवं षड्यंत्रों में अपनी शक्ति व्यय करने दी, और आज कहां हैं वे? इंटरनेशनल के विशाल बहुमत के ये तथाकथित प्रतिनिधि आज स्वयं ऐलान करते हैं कि अगली कांग्रेस में आने की उनकी हिम्मत नहीं है (और तफ़सीलें

*«Volksstaat»** के लिए एक लेख में हैं जो इस चिट्ठी के साथ भेजा जा रहा है)। और अगर हमें यह काम दोबारा करना हो तो कुल मिलाकर, हम इससे भिन्न मार्ग नहीं अपनायेंगे। बेशक, कार्यनीतिक भूलें सदा होती ही रहती हैं।

जो भी हो, मेरा खयाल है कि लासालपंथियों के कार्यकुशल तत्त्व समय आने पर आप ही तुम्हारी ओर उन्मुख होंगे। इसलिए पकने के पहले ही फल को तोड़ लेना, जैसा कि एकतावादी चाहते हैं, बुद्धिमानी नहीं होगी।

वैसे तो वृद्ध हेगेल पहले ही फ़रमा चुके हैं: जो पार्टी अपने में **फूट** के लिए तैयार हो और उस फूट को झेल सके, वह यह सिद्ध करती है कि वह जीवनक्षम पार्टी है। सर्वहारा का आन्दोलन अनिवार्यतः विकास की विभिन्न मंज़िलों से होकर गुज़रता है। हर मंज़िल में चलनेवालों का एक हिस्सा फंसकर रह जाता है और आगे बढ़ने में साथ नहीं देता। यही वजह है कि "सर्वहारा की एकता" एक दूसरे के विरुद्ध जीवन-मरण के संघर्ष (जैसा संघर्ष रोमन साम्राज्य में, घनघोर दमन के बीच, ईसाई पंथों के बीच चला करता था) में रत विभिन्न पार्टी दलों में सब जगह सचमुच निष्पन्न हो रही है।

तुम्हें यह भी हरगिज़ न भूलना चाहिए कि *«Neuer Social-Demokrat»* के ग्राहकों की संख्या *«Volksstaat»* के ग्राहकों से यदि अधिक है तो इसका कारण यह है कि प्रत्येक **पंथ** अनिवार्यतः अपने मत का दीवाना होता है और इसकी बदौलत, ख़ासकर उन इलाक़ों में जहां वह नवोदित है–मसलन् श्लेज़विग-होल्स्टिन में आम जर्मन मज़दूर संघ–पार्टी से (जो संकीर्णतावादी सनकों से मुक्त वास्तविक आन्दोलन का ही प्रतिनिधित्व करती है) अधिक तात्कालिक सफलताएं प्राप्त करता है। पर दूसरी ओर, दीवानापन बहुत दिन नहीं चलता।

पत्र ख़त्म करना है, क्योंकि डाक छूटनेवाली है। जल्दी में इतना और जोड़ दूं–मार्क्स फ़्रांसीसी अनुवाद** के समाप्त होने तक (यानी लगभग जुलाई के अंत तक) लासाल[120] के साथ नहीं उलझ सकते, अलावा इसके बहुत ज़्यादा मेहनत करने की वजह से उन्हें आराम की सख़्त ज़रूरत है...

अंग्रेज़ी से अनूदित।

---

* **फ्रे॰ एंगेल्स**, 'इंटरनेशनल में'।–**सं०**
** इशारा **'पूंजी'** के पहले खंड की ओर है।–**सं०**

फ़ेडरिक अडोल्फ़ ज़ोर्गे के नाम एंगेल्स का पत्र

होबोकेन में

लन्दन, सितम्बर १२ [–१७] १८७४

...आपके इस्तीफ़े के साथ[121] **पुराने** इंटरनेशनल का अस्तित्व पूरी तरह ख़त्म हो गया है। और यह अच्छा ही हुआ। वह दूसरे साम्राज्य के ज़माने का था जब सारे यूरोप में राज कर रहा उत्पीड़न मज़दूर आन्दोलन को, जो उस समय जग ही रहा था, एकता तथा सारे आन्तरिक वाद-विवाद से विरति की आज्ञा दे रहा था। यह वह घड़ी थी जब सर्वहारा के साझे अन्तर्राष्ट्रीय हित उभरकर सामने आ रहे थे। जर्मनी, स्पेन, इटली तथा डेनमार्क आन्दोलन में अभी-अभी शामिल हुए थे या उसमें शामिल हो रहे थे। दरअसल १८६४ में आन्दोलन का सैद्धांतिक स्वरूप यूरोप में अभी सर्वत्र, अर्थात् जनसाधारण के बीच बहुत अस्पष्ट था। जर्मन कम्युनिज़्म ने अभी मज़दूर पार्टी के रूप में अस्तित्व ग्रहण नहीं किया था। प्रूदोंपंथ अभी इतना कमज़ोर था कि वह अपना सिक्का नहीं जमा सकता था, बकूनिन की नयी बकवास ने अभी उसके सिर के अन्दर जन्म नहीं लिया था; ब्रिटिश ट्रेड यूनियनों के नेता तक यह सोचते थे कि नियमावली की भूमिका* में निर्धारित कार्यक्रम उन्हें आन्दोलन में प्रवेश करने का आधार प्रदान करता है। प्रथम बड़ी सफलता तमाम गुटों के इस भोलेपन भरे सहयोग को अवश्यम्भावी रूप से ध्वस्त करती। यह सफलता कम्यून थी जो निस्सन्देह बौद्धिक रूप से इंटरनेशनल की संतान थी हालांकि उसे जन्म देने के लिए इंटरनेशनल ने उंगली तक नहीं हिलायी थी और इसके लिए इंटरनेशनल को कुछ हद तक सही उत्तरदायी ठहराया गया। जब कम्यून की बदौलत इंटरनेशनल यूरोप में नैतिक शक्ति बन गया, तुरन्त टुच्ची साज़िशें शुरू हो गयीं। हर धारा इस सफलता को अपने हितार्थ इस्तेमाल करना चाहती थी। विघटन, जो अवश्यम्भावी था, शुरू हो गया। एकमात्र लोगों से, जो सचमुच पुराने व्यापक कार्यक्रम के आधार पर कार्य करने के लिए तैयार थे, जर्मन कम्युनिस्टों से, ईर्ष्या ने बेल्जियाई प्रूदोंपंथियों को बकूनिनपंथी दुस्साहसियों की बांहों में पहुंचा

---

*देखें प्रस्तुत संस्करण, खण्ड २, भाग १ – सं०

दिया। हेग कांग्रेस वस्तुतः दोनों पार्टियों की ख़ात्मा थी। जिस एकमात्र देश में इंटरनेशनल के नाम पर अब भी कुछ किया जा सकता था, वह अमरीका था, और कार्यकारिणी समिति वहीं स्थानान्तरित कर दी गयी थी जो सुखद सहज-बुद्धि का फल थी। अब वहां भी उसकी प्रतिष्ठा समाप्त हो चुकी है और उसमें फिर से नया जीवन संचारित करना मूर्खता की बात होगी तथा वक़्त जाया करना होगा। इंटरनेशनल दस वर्ष तक यूरोपीय इतिहास के एक पक्ष पर — उस पक्ष पर जिसमें भविष्य अन्तर्निहित है — हावी रहा और वह पीछे मुड़कर अपने कार्य को गर्वपूर्वक देख सकता है। परन्तु अपने पुराने रूप में उसकी उपयोगिता ख़त्म हो चुकी है। पुराने ढर्रे पर नये इंटरनेशनल की स्थापना, तमाम देशों की सभी सर्वहारा पार्टियों के सहबंध के लिए मज़दूर आन्दोलन को इस तरह आम तौर पर दबाना ज़रूरी होगा जो १८४९—१८६४ में होता रहा। परन्तु इसके लिए सर्वहारा संसार अब अतीव विशाल, अतीव विस्तृत हो चुका है। मेरे विचार में अगला इंटरनेशनल — मार्क्स की रचनाओं द्वारा कुछ वर्षों तक अपना प्रभाव उत्पन्न किये जाने के बाद — विशुद्ध रूप से कम्युनिस्ट होगा और ठीक हमारे सिद्धांतों की उद्घोषणा करेगा...

अंग्रेज़ी से अनूदित।

टिप्पणियां

[1] **पहले इंटरनेशनल का लन्दन सम्मेलन** १७ सितम्बर से लेकर २३ सितम्बर १८७१ तक हुआ। चूंकि वह पेरिस कम्यून की पराजय के बाद इंटरनेशनल के विरुद्ध कठोर दमनात्मक कार्रवाइयों के समय हुआ था, उसकी सदस्य-संख्या बहुत कम थी। उसमें २२ डेलीगेट ऐसे थे जिन्हें वोट देने का अधिकार था तथा १० ऐसे थे जो कार्रवाई में भाग तो ले सकते थे परन्तु वोट नहीं दे सकते थे। जो देश अपने डेलीगेट नहीं भेज सके, उनका प्रतिनिधित्व जनरल कौंसिल के सहयोगी सचिवों ने किया। मार्क्स ने जर्मनी तथा एंगेल्स ने इटली का प्रतिनिधित्व किया।

लन्दन सम्मेलन मार्क्स तथा एंगेल्स द्वारा सर्वहारा पार्टी की स्थापना के लिये किये जानेवाले संघर्ष में एक महत्वपूर्ण मंज़िल थी। उसने 'मज़दूर वर्ग की राजनीतिक क्रिया के बारे में' एक प्रस्ताव पास किया जिसका मुख्य भाग इंटरनेशनल की हेग कांग्रेस के निर्णय पर अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर संघ की नियमावली में शामिल कर लिया गया। सम्मेलन के कई प्रस्तावों में सर्वहारा पार्टी के अनेक महत्वपूर्ण कार्यनीतिक तथा संगठनात्मक सिद्धांतों का निरूपण किया गया जिन्होंने संकीर्णतावाद तथा सुधारवाद पर कड़ा प्रहार किया। – पृ० ६

[2] १६ वीं शताब्दी के छठे दशक से अंग्रेज़ मज़दूरों की एक बुनियादी मांग थी नौ घंटे का कार्य-दिवस चालू किया जाना। मई १८७१ में भवन-निर्माण मज़दूरों तथा इंजीनियरी मज़दूरों की न्यूकैसल में एक बहुत बड़ी हड़ताल शुरू हुई। उसकी अगुवाई नौ घंटे के कार्य-दिवस के लिए संघर्ष करनेवाली लीग कर रही

थी। यह लीग उन मज़दूरों को पहली बार संघर्ष में ले आयी जो ट्रेड यूनियनों में नहीं थे। लीग के अध्यक्ष बार्नेट ने इंटरनेशनल की जनरल कौंसिल के नाम एक पत्र भेजा जिसमें उससे अनुरोध किया गया कि वह हड़तालतोड़कों को इंगलैंड लाये जाने से रोके। जैनरल कौंसिल की सक्रिय गतिविधियों के फलस्वरूप यह अनुरोध पूरा हुआ। अक्तूबर १८७१ में हड़ताल सफल हो गयी। मज़दूरों के लिए ५४ घंटे का कार्य-सप्ताह स्वीकार कर लिया गया।–पृ० १२

[3] २५ जुलाई १८७१ को जनरल कौंसिल में एंगेल्स का यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया कि सितम्बर १८७१ में इंटरनेशनल का एक गुप्त सम्मेलन लन्दन में आयोजित किया जाये। उस समय से मार्क्स तथा एंगेल्स ने सम्मेलन के लिए ज़ोरदार ढंग से संगठनात्मक और सैद्धांतिक तैयारियां आरम्भ कर दीं। उन्होंने कार्यसूची तथा प्रस्तावों के मसौदे तैयार किये। उन पर पहले जनरल कौंसिल की बैठकों में विचार किया गया और फिर उन्हें लन्दन सम्मेलन में पेश किया गया (सम्मेलन के बारे में टिप्पणी १ पढ़ें)।–पृ० १३

[4] **पहले इंटरनेशनल की बाज़ेल कांग्रेस** ६–११ सितम्बर १८६९ तक हुई।–पृ० १३

[5] **फ़्रांस-प्रशा युद्ध** १८७०–१८७१ में हुआ और उसमें फ़्रांस की पराजय हुई।–पृ० १३

[6] यहां इशारा २५–२९ सितम्बर १८६५ तक हुए पहले लन्दन सम्मेलन की ओर है जिसने इंटरनेशनल की स्थापना में बहुत बड़ी भूमिका अदा की।–पृ० १३

[7] **"देहातियों की सभा"**–१८७१ की राष्ट्रीय सभा को दिया गया लक़ब; उस समय सभा का अधिवेशन बोर्दो नगर में हुआ करता था और उसके अधिकांश सदस्य प्रतिक्रियावादी राजतंत्रवादी–देहाती इलाक़ों से चुने गये जमींदार, अफ़सर, लगानजीवी और व्यापारी थे। सभा के ६३० प्रतिनिधियों में ४३० राजतंत्रवादी थे।–पृ० १३

[8] **वेर्साई**–पेरिस का उपनगर जहां पेरिस कम्यून के समय फ़्रांसीसी प्रतिक्रान्तिकारी सरकार थी। यह शब्द प्रतिक्रान्ति का पर्याय बन गया।–पृ० १४

[9] लन्दन सम्मेलन ने मार्क्स के प्रस्ताव पर जनरल कौंसिल को इंगलैंड के लिए एक फ़ेडरल कौंसिल स्थापित करने का आदेश दिया क्योंकि १८७१ के ग्रीष्म काल तक जनरल कौंसिल स्वयं इस प्रकार की कौंसिल का काम करती रही।

अक्तूबर १८७१ में इंटरनेशनल की अंग्रेज़ शाखाओं के प्रतिनिधियों को लेकर ब्रिटिश फ़ेडरल कौंसिल की स्थापना की गयी। परन्तु शुरू से ही हेल्स की अगुवाई में सुधारवादियों का एक दल कौंसिल के नेतृत्व में घुस आया और उसने जनरल कौंसिल तथा आयरिश प्रश्न के सम्बन्ध में उसकी सर्वहारा अन्तर्राष्ट्रीयतावादी नीति के विरुद्ध एक अभियान शुरू कर दिया। हेल्स तथा अन्य सुधारवादियों ने इस संघर्ष में स्विस अराजकतावादियों, अमरीकी पूंजीवादी सुधारवादियों, आदि के साथ मिलकर काम किया। १८७२ की हेग कांग्रेस के बाद ब्रिटिश फ़ेडरल कौंसिल के इस सुधारवादी भाग ने कांग्रेस के निर्णयों को मान्यता देने से इन्कार कर दिया तथा उसने बकूनिनपंथियों से मिलकर जनरल कौंसिल तथा मार्क्स के विरुद्ध कुत्सापूर्ण अभियान छेड़ दिया। ब्रिटिश कौंसिल के अन्य सदस्यों ने इसका विरोध किया और मार्क्स तथा एंगेल्स का सक्रिय समर्थन किया। दिसम्बर १८७२ के आरम्भ में फ़ेडरल कौंसिल में फूट पड़ गयी; कौंसिल के कुछ सदस्यों ने, जो हेग कांग्रेस के फ़ैसलों के प्रति निष्ठावान थे, ब्रिटिश फ़ेडरल कौंसिल गठित की तथा जनरल कौंसिल के साथ, जिसे न्यूयार्क में स्थानान्तरित कर दिया गया था, सीधा सम्बन्ध स्थापित किया। इंटरनेशनल के ब्रिटिश फ़ेडरेशन का नेतृत्व हथियाने की सुधारवादियों की कोशिश इस तरह विफल हो गयी।

ब्रिटिश फ़ेडरल कौंसिल वस्तुतः १८७४ तक क़ायम रही। उसकी गतिविधियां इंटरनेशनल की गतिविधियों की समाप्ति तथा ब्रिटिश मज़दूर आन्दोलन में अवसरवाद की अस्थायी विजय के साथ ख़त्म हो गयी।—पृ० १४

[10] «*The Times*»—अनुदारपंथी दृष्टिकोण का प्रमुख ब्रिटिश दैनिक जिसका प्रकाशन १७८५ से लन्दन में आरम्भ हुआ था।—पृ० १५

[11] यहां इशारा १८७१ के दूसरे लन्दन सम्मेलन के प्रस्ताव—'नेशनल कौंसिलों के नाम, आदि के सम्बन्ध में'—की ओर है जिसने इंटरनेशनल में विभिन्न संकीर्णतावादी दलों के प्रवेश पर पाबन्दी लगा दी।—पृ० १५

[12] यहां इशारा बकूनिन के 'रूसी, पोलिश तथा तमाम स्लाव मित्रों के नाम' शीर्षक घोषणापत्र की ओर है जो 'कोलोकोल' (घंटा) में (अंक १२२–१२३, १५ फ़रवरी १८६२) परिशिष्ट के रूप में प्रकाशित हुआ था।

'कोलोकोल'—रूसी क्रान्तिकारी-जनवादी अख़बार जिसे हर्ज़ेन तथा ओगार्योव १८५७–१८६७ तक रूसी में तथा १८६८–१८६९ तक रूसी परिशिष्टों

के साथ फ़्रांसीसी भाषा में प्रकाशित करते रहे; १८६५ तक लन्दन और उसके बाद जेनेवा में प्रकाशित हुआ। —पृ० १५

[13] **शान्ति तथा स्वतंत्रता लीग**—पूंजीवादी-शान्तिवादी संस्था जिसे १८६७ में विभिन्न निम्न-पूंजीवादी तथा पूंजीवादी जनतंत्रवादियों और उदारतावादियों ने स्विट्ज़रलैंड में स्थापित किया था। —पृ० १५

[14] यहां इशारा सितम्बर १८६८ में शान्ति तथा स्वतंत्रता लीग की बर्न में हुई कांग्रेस में बकूनिन द्वारा अपने खिचड़ीनुमा समाजवादी कार्यक्रम को ("वर्गों का सामाजिक तथा आर्थिक समताकरण", राज्य और उत्तराधिकार का उन्मूलन, आदि) अनुमोदित कराने की ओर है। जब उनका प्रस्ताव बहुमत से ठुकरा दिया गया तो वह लीग से अलग हो गये और उन्होंने समाजवादी जनवाद का अन्तर्राष्ट्रीय सहबंध की स्थापना की। —पृ० १६

[15] **पहले इंटरनेशनल की जेनेवा कांग्रेस** ३—८ सितम्बर १८६६ तक हुई। **लोज़ान कांग्रेस** २—८ सितम्बर १८६७ तक हुई। —पृ० १७

[16] **नेचायेव का मुक़दमा**—गुप्त क्रान्तिकारी गतिविधियों में शामिल होने के आरोप में छात्रों पर जुलाई—अगस्त १८७१ में चलाया गया मुक़दमा। १८६९ में ही नेचायेव ने बकूनिन के साथ सम्बन्ध क़ायम कर लिये थे और ऐसी गतिविधियां तेज़ कर दी थीं जिनका उद्देश्य अनेक रूसी नगरों में "आमूलचूल विनाश" के अराजकतावादी विचारों का प्रचार करनेवाले "जन-प्रतिकार" नामक एक षड्यंत्रकारी संगठन की स्थापना करना था। क्रान्तिकारी विचारों वाले छात्र तथा मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी नेचायेव के संगठन में शामिल हो गये क्योंकि वे ज़ारशाही हुकूमत की उस द्वारा की जानेवाली तीक्ष्ण आलोचना तथा उसके विरुद्ध डटकर संघर्ष करने की अपीलों के कारण उसकी ओर आकृष्ट हुए थे। नेचायेव को बकूनिन से "यूरोपीय क्रान्तिकारी संघ" के प्रतिनिधि का प्रमाण-पत्र मिल गया था। उसके बल पर वह अपने को इंटरनेशनल का प्रतिनिधि बताता रहा और इस तरह अपने संगठन के सदस्यों को गुमराह करता रहा। १८७१ में नेचायेव संगठन भंग हो गया तथा मुक़दमे के दौरान उसकी दुस्साहसिकतावादी विधियां प्रकाश में आयीं।

लन्दन सम्मेलन ने उतिन को नेचायेव मुक़दमे के बारे में एक संक्षिप्त रिपोर्ट तैयार करने का आदेश दिया। इस तरह की रिपोर्ट के स्थान पर उतिन

ने १८७२ के अगस्त माह के अन्त में मार्क्स को इंटरनेशनल की हेग कांग्रेस के लिए बकूनिन तथा नेचायेव की इंटरनेशनलविरोधी गतिविधियों के बारे में एक विस्तृत गोपनीय रिपोर्ट भेजी। –पृ० २१

[17] *«Le Progrès»* (प्रगति) – बकूनिनपंथी अख़बार जो फ़ांसीसी भाषा में दिसम्बर १८६८ से अप्रैल १८७० तक गिलोम के सम्पादकत्व में लोक्ले में प्रकाशित होता रहा। –पृ० २१

[18] *«L'Égalité»* (समानता) – स्विस साप्ताहिक, इंटरनेशनल के रोमांस फ़ेडरेशन का मुखपत्र, जो जेनेवा में दिसम्बर १८६८ से दिसम्बर १८७२ तक फ़ांसीसी भाषा में प्रकाशित होता रहा। कुछ समय तक वह बकूनिन के प्रभाव में भी था। जनवरी १८७० में रोमांस फ़ेडरल कौंसिल बकूनिनपंथियों को सम्पादकमंडल से हटाने में सफल हो गयी। उसके बाद पत्र इंटरनेशनल की जनरल कौंसिल की नीति का समर्थन करने लगा। –पृ० २१

[19] *«Le Travail»* (श्रम) – इंटरनेशनल की पेरिस शाखाओं का साप्ताहिक पत्र; ३ अक्तूबर से १२ दिसम्बर १८६९ तक पेरिस में प्रकाशित होता रहा। – पृ० २२

[20] सामन्ती अभिजातों की इस संस्था की फ़ांस में १४६४ के अन्त में स्थापना हुई थी। उसने फ़ांस को एक केन्द्रीकृत राज्य में ऐक्यबद्ध करने की लूई ११ वें की नीति का विरोध किया। लीग के सदस्य फ़ांस के "सार्वजनिक कल्याण" के लिए काम करते रहे। –पृ० २२

[21] *«Le Solidarite»* (एकता) – बकूनिनपंथी साप्ताहिक पत्र; फ़ांसीसी भाषा में अप्रैल से सितम्बर १८७० तक नेवशातेल में तथा मार्च से मई १८७१ तक जेनेवा में प्रकाशित होता रहा। –पृ० २३

[22] जेनेवा तथा उसके आस-पास के इलाक़ों में बड़े तथा छोटे वर्कशापों में घड़ियां तथा जेवर बनानेवाले कारख़ानों को इसी नाम से पुकारा जाता था। इन वस्तुओं को घर पर बनानेवालों को भी इस नाम से पुकारा जाता था। –पृ० २३

[23] २ सितम्बर १८७० को सेदान की लड़ाई में फ़ांसीसी सेना, जिसकी कमान नेपोलियन तृतीय के हाथ में थी, प्रशियाई सेना द्वारा पराजित हुई और उसने आत्मसमर्पण कर दिया। सम्राट नेपोलियन तृतीय तथा सेनानायक बंदी बना

लिये गये और वे विल्हेल्मसहोये (कासेल के निकट) में प्रशा के राजाओं के एक दुर्ग में ५ सितम्बर १८७० से १९ मार्च १८७१ तक क़ैद रहे। सेदान की पराजय ने द्वितीय साम्राज्य के पतन को त्वरित किया और उसके फलस्वरूप ४ सितम्बर १८७० को फ़्रांस में जनतंत्र की घोषणा की गयी। एक नई सरकार स्थापित हुई जिसे "राष्ट्रीय प्रतिरक्षा की सरकार" नाम दिया गया। – पृ० २४

[24] यहां इशारा 'इंटरनेशनल की शाखाओं के नाम' ५ सितम्बर १८७० के उस घोषणापत्र की ओर है जिसे जेम्स गिलोम तथा गास्पर ब्लां ने लिखा था और जो नेवशातेल में *«Solidarité»* अख़बार के अंक २२ के परिशिष्ट के रूप में प्रकाशित हुआ था। – पृ० २४

[25] **लियों में विद्रोह** ४ सितम्बर १८७० को सेदान में पराजय की ख़बर मिलने के बाद शुरू हुआ था। १५ सितम्बर को बकूनिन लियों पहुंचे और उन्होंने आन्दोलन के नेतृत्व की बागडोर अपने हाथ में लेने तथा अपने अराजकतावादी कार्यक्रम को अमल में लाने का प्रयत्न किया। उनके अनुयायियों ने २८ सितम्बर को राज्य-पर्युत्क्षेपण करने का यत्न किया। मज़दूरों का समर्थन न मिलने तथा कार्रवाई की कोई निश्चित योजना पास न होने के कारण उनका प्रयत्न विफल हो गया। – पृ० २४

[26] अप्रैल १८७० में बकूनिन के एक अनुयायी पाल राबिन ने पेरिस फ़ेडरल कौंसिल को सुझाव दिया कि शो-द-फ़ोन में अराजकतावादियों की कांग्रेस द्वारा स्थापित फ़ेडरल कमेटी को रोमांस फ़ेडरल कमेटी के रूप में मान्यता दे देनी चाहिए। जनरल कौंसिल द्वारा पेरिस फ़ेडरल कौंसिल के सदस्यों को स्विट्ज़रलैंड में फूट का अर्थ समझा दिये जाने के बाद फ़ेडरल कौंसिल ने तय किया कि उसे मामले में दख़ल देने का कोई अधिकार नहीं है क्योंकि यह मामला जनरल कौंसिल के कार्य-क्षेत्र में आ जाता है। – पृ० २६

[27] B. Malon, *«La troisième défaite du prolétariat français»*, (ब० मालोन, 'फ़्रांसीसी सर्वहारा की तीसरी पराजय', नेवशातेल, १८७१)। – पृ० २६

[28] यहां इशारा १८७१ के पेरिस कम्यून की ओर है। – पृ० २६

[29] इस शाखा की स्थापना ६ सितम्बर १८७१ को जेनेवा शाखा के स्थान पर की गयी थी जिसे "समाजवादी जनवाद का सहबंध" के नाम से पुकारा जाता था और जिसे अगस्त में भंग कर दिया गया था। इस शाखा के भूतपूर्व सदस्य जुकोव्स्की, पेरो, आदि के अलावा ज० गेद तथा ब० मालोन जैसे कुछ फ़्रांसीसी उत्प्रवासियों ने "समाजवादी क्रान्तिकारी प्रचार तथा कार्रवाई शाखा" संगठित करने में भाग लिया। – पृ० २७

[30] *«La Révolution Sociale»* (सामाजिक क्रान्ति) – जेनेवा में अक्तूबर १८७१ से जनवरी १८७२ तक प्रकाशित फ़्रांसीसी साप्ताहिक; नवम्बर १८७१ से अराजकतावादी जूरा फ़ेडरेशन का मुखपत्र। – पृ० २७

[31] *«Le Figaro»* (फ़िगारो) – पेरिस में १८५४ से प्रकाशित होनेवाला प्रतिक्रियावादी फ़्रांसीसी अख़बार, दूसरे साम्राज्य की सरकार से सम्बन्धित।

«Le Gaulois» (गाल) – अनुदारवादी-राजतंत्रवादी दृष्टिकोण वाला दैनिक, बड़े पूंजीपति वर्ग तथा अभिजाततंत्र का मुखपत्र; १८६७ से १९२९ तक पेरिस में प्रकाशित होता रहा।

«Paris-Journal» (पेरिस पत्र) – पुलिस से सम्बन्धित प्रतिक्रियावादी दैनिक; आंरी दे पेन द्वारा पेरिस में १८६८ से १८७४ तक प्रकाशित; वह इंटरनेशनल तथा पेरिस कम्यून पर कीचड़ उछालता था। – पृ० २८

[32] नेपोलियन तृतीय ने यह जनमत संग्रह मई १८७० में प्रगटतः इस उद्देश्य से किया था कि साम्राज्य के प्रति आम जनता के दृष्टिकोण की जांच की जा सके। इस जनमत संग्रह में प्रश्न इस रूप में पूछे गये थे कि द्वितीय साम्राज्य की नीति के प्रति विरोध प्रगट करना तब तक असंभव था जब तक कि साथ ही सभी जनवादी सुधारों का विरोध न किया जाये। फ़्रांस में पहले इंटरनेशनल की शाखाओं ने इस वाक्छल की क़लई खोल दी और अपने सदस्यों को मतदान से अलग रहने का निर्देश किया। जनमत संग्रह के ठीक पहले पेरिस शाखा के सदस्यों पर नेपोलियन तृतीय के ख़िलाफ़ षड्यंत्र रचने का आरोप लगाकर उन्हें गिरफ़्तार कर लिया गया। इस मिथ्या आरोप का इस्तेमाल कर सरकार ने फ़्रांस के विभिन्न नगरों में इंटरनेशनल के सदस्यों के ख़िलाफ़ जोर-ज़ुल्म का बाक़ायदा एक जेहाद छेड़ दिया। पेरिस शाखा के सदस्यों पर मुक़दमे के दौरान, जो २२ जून से ५ जुलाई १८७० तक चला, षड्यंत्र के आरोप की

जालसाज़ी का पूरी तरह भंडाफोड़ हुआ। फिर भी इंटरनेशनल के कई सदस्यों को सिर्फ़ इसलिए सज़ायें दी गयीं कि वे अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर संघ के सदस्य थे। फ़्रांस के मजदूर वर्ग ने जन-प्रतिवाद प्रकट करके इस ज़ुल्म का जवाब दिया।– पृ० २६

[33] *«La Marseillaise»* (मार्सेई का – वामपंथी जनतंत्रवादी दैनिक, जो पेरिस में दिसम्बर १८०६ से सितंबर १८७० तक प्रकाशित होता रहा। इसमें इंटरनेशनल के क्रिया-कलाप के तथा मज़दूर आन्दोलन के बारे में सामग्री रहती थी।

«Le Réveil» (जागरण) – शार्ल देलेक्लूज़ द्वारा स्थापित एक वामपंथी जनतंत्रवादी समाचारपत्र, जो पेरिस में जुलाई १८६८ से जनवरी १८७१ तक प्रकाशित होता रहा। इसमें इंटरनेशनल की दस्तावेज़ें तथा मज़दूर आन्दोलन से सम्बन्धित अन्य सामग्री प्रकाशित हुआ करती थी।–पृ० २६

[34] *«Journal de Genève national, politique et littéraire»* (जेनेवा का राष्ट्रीय, राजनीतिक तथा साहित्यिक पत्र) – अनुदारपंथी अख़बार, १८२६ से प्रकाशित।–पृ० ३६

[35] यहां इशारा फ़्रांसीसी काल्पनिक कम्युनिज़्म के अनुयायी काबे की ओर है जिन्होंने "इकारिया की यात्रा' पुस्तक लिखी थी।–पृ० ४२

[36] **चार्टिज़्म** – १६वीं शताब्दी के चौथे तथा पांचवें दशक में ब्रिटिश मज़दूरों का आम क्रान्तिकारी आन्दोलन। १८३८ में चार्टिस्टों ने संसद के सामने पेश करने के लिए एक अर्ज़ी (पीपुल्स चार्टर) तैयार की। उसमें मांग की गयी कि २१ वर्ष से ऊपर के पुरुषों को सार्वजनिक मताधिकार प्रदान किया जाये, गुप्त मतदान की व्यवस्था हो, संसदीय उम्मीदवारों के लिए सांपत्तिक अर्हता ख़त्म हो, आदि। आन्दोलन बड़े-बड़े प्रदर्शनों तथा सभाओं के साथ शुरू हुआ जिनमें पीपुल्स चार्टर के कार्यान्वयन के लिए संघर्ष का नारा बुलन्द किया गया। २ मई १८४२ को चार्टिस्टों ने संसद को दूसरी अर्ज़ी भेजी जिसमें इस बार कई सामाजिक मांगें (कार्य-दिवस कम करना, अधिक मजूरी देना, आदि) पेश की गयी थीं। संसद ने अर्ज़ी ठुकरा दी। इसके उत्तर में चार्टिस्टों ने आम हड़ताल संगठित की। १८४८ में उन्होंने तीसरी अर्ज़ी लेकर संसद के सामने प्रदर्शन करने की योजना बनायी परन्तु सरकार ने सैनिक बुला लिये

तथा प्रदर्शन नहीं होने दिया। अर्ज़ी को ठुकरा दिया गया। १८४८ के बाद चार्टिस्ट आन्दोलन का प्रभाव कम होता चला गया।

चार्टिस्ट आन्दोलन की विफलता का मुख्य कारण सुस्पष्ट कार्यक्रम तथा कार्यनीति और सुसंगत क्रान्तिकारी नेतृत्व का अभाव था। फिर भी चार्टिस्टों का ब्रिटेन के राजनीतिक इतिहास और अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर आन्दोलन पर ज़बर्दस्त प्रभाव पड़ा। – पृ० ४२

[37] **क़ुरान बिना मुहम्मद** – म० अ० बकूनिन। – पृ० ४३

[38] यहां इशारा फ़्रांस के राजनयिक प्रतिनिधियों के नाम विदेश मंत्री के ६ जून १८७१ के परिपत्र की ओर है जिसमें जूल फ़ाव्र ने तमाम सरकारों का इंटरनेशनल के विरुद्ध संघर्ष में एकजुट होने का आह्वान किया था। साथ ही दूफ़ोर बिल पर विचार करने के काम में जुटे आयोग की ओर से पेश साकाज़ की रिपोर्ट की ओर भी इशारा है। (देखें टिप्पणी ७) – पृ० ४३

[39] यहां तथा आगे मार्क्स इंटरनेशनल की नियमावली को उद्धृत करते हैं जिसे जेनेवा कांग्रेस ने स्वीकृति प्रदान की थी तथा जो लन्दन में अंग्रेज़ी भाषा में एक पुस्तिका के रूप में प्रकाशित हुई थी *«Rules of the International Working Men's Association»*, १८६७) – पृ० ४६

[40] यहां एक ग़लती है। आम नियमावली की धारा ६ १८६६ में इंटरनेशनल की जेनेवा कांग्रेस में स्वीकृत हुई थी। देखें – *«Congrès ouvrier de l'Association Internationale des Travailleurs tenu à Genève du 3 au 8 September 1866»*, Genéve 1866, p. 13—14 ('जेनेवा में ३–८ सितम्बर १८६६ में हुई अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर संघ की जेनेवा मज़दूर कांग्रेस', जेनेवा, १८६६, पृष्ठ १३–१४) – पृ० ४८

[41] मज़दूर फ़ेडरेशन की स्थापना १८७१ के शरदकाल में टूरिन में हुई थी। उस पर माज़्ज़िनीपंथियों का प्रभाव था। जनवरी १८७२ में सर्वहारा तत्त्व फ़ेडरेशन से अलग हो गये और उन्होंने "**सर्वहारा मुक्ति समाज**" की स्थापना की। आगे चलकर उसे एक शाखा के रूप में इंटरनेशनल का सदस्य बना लिया गया। पुलिस का एक भेदिया तेर्जागी फ़रवरी १८७२ तक इस शाखा का प्रधान रहा।

«Il proletario» (सर्वहारा) – टूरिन में १८७२ से १८७४ तक प्रकाशित इतालवी अख़बार। वह बकूनिनपंथियों का समर्थन करता था और जनरल कौंसिल तथा लन्दन सम्मेलन के प्रस्तावों का विरोध करता था। – पृ० ४८

[42] नवम्बर १८७१ में पूंजीवादी जनवादी स्तेफ़ानोनी ने एक "सार्वत्रिक तर्कणावादी संस्था" की स्थापना करने की योजना पेश की। उसका कार्यक्रम पूंजीवादी-जनवादी विचारों तथा निम्न-पूंजीवादी कल्पनावादी समाजवाद (सामाजिक प्रश्न के समाधान के लिए कृषि बस्तियों की स्थापना, आदि) की खिचड़ी था। समाज का उद्देश्य था इंटरनेशनल की ओर से मज़दूरों का ध्यान हटाना तथा इटली में उसका प्रभाव घटाना। साथ ही स्तेफ़ानोनी ने "समाजवादी जनवाद सहबंध" के साथ अपनी एकजुटता की घोषणा की। स्तेफ़ानोनी के असल मन्सूबों और पूंजीवादी जनवादियों के साथ अराजकतावादियों के सीधे सम्बन्धों का पर्दाफ़ाश करनेवाले मार्क्स तथा एंगेल्स के बयानों तथा स्तेफ़ानोनी की योजना के विरुद्ध इतालवी मज़दूर आन्दोलन के कुछ नेताओं के वक्तव्यों ने इतालवी मज़दूर आन्दोलन पर पूंजीवादी प्रभाव जमाने की स्तेफ़ानोनी की चेष्टाएं विफल बना दीं। – पृ० ५८

[43] *«Neuer Social-Demokrat»* – (नया सामाजिक-जनवादी) बर्लिन में १८७१ से १८७६ तक प्रकाशित होनेवाला जर्मन अख़बार; लासालपंथी आम जर्मन मज़दूर संघ का मुखपत्र; उसने बकूनिनपंथियों तथा दूसरी सर्वहाराविरोधी प्रवृत्तियों का समर्थन करते हुए इंटरनेशनल तथा जर्मन सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी के मार्क्सवादी नेताओं के विरुद्ध प्रचार किया। – पृ० ५८

[44] **"सफ़ेद कुर्ताधारी"** अथवा **"सफ़ेद ब्लाउज़"** – दूसरे साम्राज्य के पुलिस प्रीफ़ेक्ट द्वारा संगठित गिरोह। मज़दूर होने का दावा करनेवाले वर्गच्युत तत्वों को लेकर बने ये गिरोह असल मज़दूर संगठनों का दमन करने के लिए अधिकारियों को मौक़ा देने के वास्ते उकसावाभरे प्रदर्शन तथा उपद्रव करते थे। – पृ० ५८

[45] जनरल कौंसिल की २० फ़रवरी १८७२ की बैठक ने लन्दन में १८ मार्च को एक विशाल जन-सभा का आयोजन कर पेरिस कम्यून की पहली वर्षगांठ मनाने के युंग के प्रस्ताव को अनुमोदित किया। सार्वजनिक सभा नहीं हो सकी क्योंकि

सभा-भवन के मालिक ने ऐन मौक़े पर सभा-भवन सौंपने से इन्कार कर दिया। फिर भी १८ मार्च को इंटरनेशनल के सदस्यों तथा भूतपूर्व कम्यूनार्डों ने प्रथम सर्वहारा क्रान्ति की जयन्ती मनाने के लिए एक सभा की। उसमें उस विशेष अवसर के लिये मार्क्स द्वारा लिखे गये तीन संक्षिप्त प्रस्ताव स्वीकृत किये गये। – पृ० ६४

[46] **'भूमि का राष्ट्रीयकरण'** नामक मार्क्स की पांडुलिपि कृषि प्रश्न पर एक महत्वपूर्ण मार्क्सवादी दस्तावेज़ है। इसे इंटरनेशनल की मानचेस्टर शाखा में भूमि के राष्ट्रीयकरण-सम्बन्धी प्रश्न पर बहस के सिलसिले में लिखा गया था। ३ मार्च को एंगेल्स के नाम अपनी चिट्ठी में दुपों ने कृषि प्रश्न पर शाखा के सदस्यों में विद्यमान भ्रान्तियों की चर्चा की तथा मार्क्स और एंगेल्स को अपनी भावी रिपोर्ट के पांच सूत्रों पर टिप्पणी करने के लिए कहा ताकि वह शाखा की बैठक से पहले उन्हें ध्यान में रख सकें। मार्क्स ने भूमि के राष्ट्रीयकरण के बारे में अपने विचारों पर पूरी तरह प्रकाश डाला और दुपों ने अपनी रिपोर्ट में उनका पूरा-पूरा उपयोग किया। – पृ० ६६

[47] अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर संघ की **हेग कांग्रेस** २–७ सितम्बर १८७२ तक हुई। उसमें १५ राष्ट्रीय संगठनों के ६५ डेलीगेटों ने भाग लिया। मार्क्स तथा एंगेल्स ने कांग्रेस की कार्रवाई का संचालन किया। मार्क्स, एंगेल्स तथा उनके अनुयायी मज़दूर आन्दोलन में सब तरह के निम्न-पूंजीवादी संकीर्णतावाद के विरुद्ध वर्षों से जो संघर्ष चला रहे थे, वह कांग्रेस में विजय के साथ पूर्ण हुआ। अराजकतावादियों की संकीर्णतावादी गतिविधियों की निन्दा की गयी तथा उनके नेताओं को इंटरनेशनल से निकाल दिया गया। हेग कांग्रेस के निर्णयों ने विभिन्न देशों में मज़दूर वर्ग की स्वतंत्र राजनीतिक पार्टियों की स्थापना का पथ प्रशस्त कर दिया। – पृ० ७०

[48] यहां इशारा 'मज़दूर वर्ग की राजनीतिक क्रिया के बारे में' शीर्षक प्रस्ताव की ओर है। – पृ० ७०

[49] यहां इशारा तीन सम्राटों – विल्हेल्म प्रथम, फ़्रांज़-जोसेफ़ तथा अलेक्सांद्र द्वितीय – की बर्लिन में सितम्बर १८७२ को हुई मुलाक़ात की ओर है। – पृ० ७२

[50] *«Der Volksstaat»* (लोकराज्य) – जर्मन सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी

का मुखपत्र, जो लाइपज़िग से २ अक्तूबर १८६९ से २९ सितम्बर १८७६ तक निकलता रहा। पत्र का सामान्य निर्देशन विल्हेल्म लीब्कनेख़्त के हाथों में था तथा अगस्त बेबल उसके मैनेजर थे। मार्क्स तथा एंगेल्स उसके लिए लेख लिखा करते थे तथा उसके सम्पादन में मदद देते थे।–पृ० ७४

[51] १८७०–१८७१ के फ्रांस-प्रशा युद्ध में पराजित होकर फ्रांस ने अल्सास और लोरेन के प्रदेश जर्मनी के हवाले कर दिये और उसे बतौर हरजाने के ५०० करोड़ फ्रांक की रक़म भी अदा की।–पृ० ७४

[52] «*Die Wohnungsfrage*» (आवास प्रश्न) शीर्षक से म्यूलबर्गर के ६ लेख «*Volksstaat*» अख़बार में ३, ७, १०, १४ और २१ फ़रवरी तथा ६ मार्च १८७२ को बिना हस्ताक्षर के प्रकाशित हुए थे। आगे चलकर ये लेख «*Die Wohnungsfrage. Eine sociale Skizze*». Separat-Abdruck aus dem «*Volksstaat*» Leipzig, 1872 (आवास प्रश्न। सामाजिक रेखाचित्र) नामक पुस्तिका के रूप में प्रकाशित हुए।–पृ० ७५

[53] E. Sax. «*Die Wohnungszustände der arbeitenden Classen und ihre Reforme*», Wien, 1869 (ए० ज़ाक्स, 'मेहनतकश वर्गों की आवासीय अवस्थाएं तथा उनका सुधार', वियेना, १८६९)।–पृ० ७५

[54] एंगेल्स के लेखों का म्यूलबर्गर द्वारा उत्तर २६ अक्तूबर १८७२ को «*Volksstaat*» में «*Zur Wohnungsfrage (Antwort on Friedrich Engels von A. Mülberger)*» (आवास प्रश्न के बारे में [फ्रेडरिक एंगेल्स को अ० म्यूलबर्गर का उत्तर]) शीर्षक से प्रकाशित हुआ था।–पृ० ७५

[55] **काटेडेर-समाजवादी** – १९ वीं सदी के आठवें और दसवें दशक में पूंजीवादी विचारधारा की एक प्रवृत्ति। उसके प्रतिनिधि, मुख्यतया जर्मन विश्वविद्यालयों के प्रोफ़ेसर थे। वे अपने विश्वविद्यालयीय पीठों (जर्मन भाषा में Katheder) से समाजवाद की आड़ में पूंजीवादी सुधारवाद का प्रचार करते थे। काटेडेर-समाजवादियों का (अ० वागनेर, ग० श्मोल्लेर, ल० ब्रेंटानो, व० ज़ोम्बार्त, आदि) दावा था कि राज्य अधिवर्गीय संरचना है जो परस्परविरोधी वर्गों में मेल कराने और पूंजीपतियों के हितों को आंच पहुंचाये बिना समाजवाद प्रचलित करने में समर्थ है। उनका उद्देश्य था बीमारी और दुर्घटना की स्थिति

के लिए बीमा की व्यवस्था कर तथा कारख़ाना-क़ानून पास कर मज़दूरों की हालत सुधारना। उनका मत था कि सुसंगठित ट्रेड यूनियनें राजनीतिक संघर्ष तथा मज़दूर वर्ग की राजनीतिक पार्टी की आवश्यकता ख़त्म कर देती हैं।—पृ० ७८

[56] **समाजवादविरोधी असाधारण क़ानून** जर्मनी में २१ अक्तूबर १८७८ को लागू किया गया। उसके अनुसार सामाजिक-जनवादी पार्टी के सारे संगठनों, आम मज़दूर संगठनों तथा मज़दूरों के अख़बारों पर पाबन्दी लगा दी गयी, समाजवादी साहित्य ज़ब्त किया जाने लगा तथा सामाजिक-जनवादियों को ज़ुल्म का शिकार बनाया गया। आम मज़दूर आन्दोलन के दबाव में यह क़ानून १ अक्तूबर १८९० को रद्द कर दिया गया।—पृ० ७८

[57] यहां इशारा १८८२ के दुर्भिक्ष की ओर है जिसने आइफ़ेल (प्रशा का रेइनी प्रान्त) के किसानों पर भारी विपत्तियां ढायीं।—पृ० ७९

[58] **तीसवर्षीय युद्ध** (१६१८–१६४८)—प्रोटेस्टेंटों तथा कैथोलिकों के बीच संघर्ष के फलस्वरूप होनेवाला आम यूरोपीय युद्ध। लड़ाई का मुख्य रंगमंच जर्मनी था। वह अत्यधिक फ़ौजी लूटमार तथा युद्धरत शक्तियों की विस्तारवादी आकांक्षाओं का शिकार बना।—पृ० ८०

[59] यहां "क्रान्तियों" से अर्थ १८६६ के आस्ट्रिया-प्रशा युद्ध तथा १८७०–१८७१ के फ़्रांस-प्रशा युद्ध से है जिनके फलस्वरूप प्रशा के नेतृत्व में जर्मनी का "ऊपर से" एकीकरण हुआ।—पृ० ८१

[60] **मार्क-प्रणाली**—प्राचीन जर्मन समुदाय।—पृ० ८३

[61] यहां इशारा पेरिस के मज़दूरों के २३–२६ जून १८४८ के वीरत्वपूर्ण विद्रोह की ओर है जिसे फ़्रांसीसी पूंजीपति वर्ग ने घोर पाशविकता के साथ कुचल दिया था। यह विद्रोह सर्वहारा तथा पूंजीपति वर्ग के बीच पहला महान गृहयुद्ध था।—पृ० ९४

[62] एंगेल्स यहां बाइबल की एक दंतकथा से ली गयी अभिव्यंजना—"मिस्र की मांस की हांडियों"—की ओर व्यंग्यपूर्ण ढंग से इशारा कर रहे हैं। इस दंतकथा के अनुसार मिस्र से यहूदियों के निष्क्रमण के दौरान उनके बीच जो बुज़दिल थे, वे यात्रा की कठिनाइयों और भूख से घबराकर बन्दी-अवस्था के उन दिनों

की कामना करने लगे जब उन्हें कम से कम भरपेट खाना तो मिलता था।–पृ० ६५

[63] एंगेल्स यहां श्रम उत्पादों के न्यायोचित विनिमय के उन तथाकथित बाज़ारों की ओर इशारा कर रहे हैं जिन्हें इंगलैंड के विभिन्न नगरों में ओवेनपंथी मज़दूर सहकारी सोसायटियों ने स्थापित किया था। इन उत्पादों का वहां श्रम नोटों की मदद से विनिमय होता था जिनके मूल्य की इकाई श्रम का एक घंटा हुआ करती थी। ये उद्यम शीघ्र दिवालिया हो गये।–पृ० १००

[64] *«La Emancipacion»* (मुक्ति)–स्पेन के मजदूरों का साप्ताहिक जो मैड्रिड में १८७१ से १८७३ तक प्रकाशित होता रहा; इंटरनेशनल की शाखाओं का मुखपत्र; सितम्बर १८७१ से अप्रैल १८७२ तक स्पेनिश फ़ेडरल कौंसिल का मुखपत्र; स्पेन में अराजकतावादी प्रभाव के विरुद्ध संघर्ष करता रहा; १८७२ तथा १८७३ में उसने मार्क्स तथा एंगेल्स की रचनाएं प्रकाशित कीं।–पृ० १०१

[65] *«Illustrated London News»*–ब्रिटिश साप्ताहिक, १८४२ से निरन्तर प्रकाशित।–पृ० ११२

[66] *«Über Land und Meer»* (जल-स्थल)–जर्मन सचित्र साप्ताहिक, स्टुटगार्ट में १८५८ से १९२३ तक प्रकाशित।–पृ० ११२

[67] *«Gartenlaube»* (निकुंज)–जर्मन निम्न-पूंजीवादी साहित्यिक पत्रिका; लाइपज़िग में १८५३ से १९०३ तक तथा बर्लिन में १९०३ से १९४३ तक प्रकाशित।–पृ० ११२

[68] *«Kladderadatsch»* (क्लड्डेरादाच)–एक सचित्र व्यंग्य-साप्ताहिक, जो बर्लिन में १८४८ से निकलना शुरू हुआ।–पृ० ११२

[69] **फ़ूसिलिए अगस्त कुचके**–जर्मन कवि गोटहेल्फ़ होफ़मान का उपनाम, फ़्रांस-प्रशा युद्ध (१८७०–१८७१) के ज़माने के राष्ट्रवादी सैनिक गीत का रचयिता।–पृ० ११२

[70] *«Le Socialiste»* (समाजवादी)–फ़्रांसीसी साप्ताहिक, मज़दूर पार्टी का मुखपत्र (१८८५–१९०२), फ़्रांस की समाजवादी पार्टी का मुखपत्र (१९०२–

१९०५), १९०५ से फ़्रांसीसी समाजवादी पार्टी का मुखपत्र। एंगेल्स इस अख़बार के लिए लिखते रहे। गीज़ में बस्ती-सम्बन्धी लेख के लिए पत्र का ३ और २४ जुलाई १८८६ का अंक देखें।—पृ० १२४

[71] «Harmony-Hall»—१८३९ के अंत में अंग्रेज़ कल्पनावादी समाजवादियों द्वारा जिनके नेता राबर्ट ओवेन थे, स्थापित कम्युनिस्ट बस्ती। वह १८४५ तक क़ायम रही।—पृ० १२४

[72] एंगेल्स यहां वागनेर द्वारा अपनी अनेक पुस्तकों तथा वक्तव्यों में व्यक्त किये गये इस विचार की ओर इशारा कर रहे हैं कि फ़्रांस-प्रशा युद्ध के बाद और ख़ास तौर पर ५ अरब के हर्जाने के फलस्वरूप जर्मनी में उत्पन्न होनेवाली स्थिति से मज़दूर वर्ग की हालत सुधरेगी।—पृ० १४५

[73] यहां इशारा गास्टेइन में अगस्त १८७१ में तथा ज़ाल्त्सबर्ग में उसी वर्ष सितम्बर में जर्मन तथा आस्ट्रियाई सम्राटों और उनके चांसलरों के बीच समझौता-वार्ताओं की ओर है। एंगेल्स प्रशियाई राजनीतिक पुलिस के मुखिये श्टिबेर के नाम से इन कांफ़्रेंसों को श्टिबेरियाई नाम से पुकारते हैं और इस तरह उनके पुलिस और प्रतिक्रियावादी स्वरूप पर ज़ोर देते हैं।—पृ० १४५

[74] देखें हेगेल, 'तर्क विज्ञान', भाग १, अनुभाग २।—पृ० १५२

[75] यहां इशारा १८७२ के प्रशा के प्रशासनिक सुधार की ओर है जिसने देहात में भूस्वामियों के पैतृक अधिकारों का अन्त कर दिया तथा स्थानीय स्वशासन के कतिपय तत्वों (लैंडराटों के अन्तर्गत ज़िला कौंसिल, समुदायों में निर्वाचित प्रधान, आदि) को प्रचलित किया।—पृ० १६५

[76] यह एंगेल्स की 'उत्प्रवासी साहित्य' नामक उस लेखमाला का दूसरा लेख है जो जून १८७४ और अप्रैल १८७५ के बीच *«Volksstaat»* में प्रकाशित हुई थी। फ़्रांसीसी समाजवादी आन्दोलन में नयी प्रवृत्तियों का वर्णन करते हुए एंगेल्स ब्लांकीपंथी कम्यून उत्प्रवासियों की उन प्रमुख त्रुटियों को प्रकाश में लाते हैं जो उनकी पुस्तिका *«Aux Communeux»* (कम्यूनार्डों के नाम) में प्रतिबिम्बित हुई थीं। एंगेल्स ने लन्दन में ब्लांकीपंथी उत्प्रवासियों के दृष्टिकोण में काफ़ी प्रगति—वैज्ञानिक कम्युनिज़्म की ओर उनके झुकाव—को लक्षित

किया परन्तु साथ ही उनकी षड्यंत्रकारी कार्यनीति, संकल्पवाद, सर्वहारा के क्रान्तिकारी संघर्ष के दौरान किसी भी समझौते की अस्वीकृति की तीक्ष्ण आलोचना की। – पृ० १८३

[77] *«Le Pére Duchesne»* (पिता द्युशेन) – पेरिस में १७६० से लेकर १७६४ तक ज० एबेर द्वारा प्रकाशित फ़्रांसीसी समाचारपत्र ; शहरों के अर्द्धसर्वहारा जनसाधारण के विचार प्रकट किया करता था।

«Le Pére Duchêne» (पिता द्युशेन) – पेरिस में ६ मार्च से २१ मई १८७१ तक वेर्मेर्श द्वारा प्रकाशित फ़्रांसीसी दैनिक ; उसकी नीति ब्लांकीपंथी अख़बारों के निकट थी। – पृ० १८६

[78] «Kulturkampf» (संस्कृति के लिए संघर्ष) – धर्मनिरपेक्ष संस्कृति के लिए अभियान के झंडे के नीचे बिस्मार्क की सरकार द्वारा १६ वीं शताब्दी के आठवें दशक में उठाये गये पगों को पूंजीवादी उदारतावादियों द्वारा दिया गया नाम। यह अभियान कैथोलिक चर्च और मध्यमार्गी दल के विरुद्ध लक्षित था जो प्रशा के तथा दक्षिण-पश्चिमी जर्मनी के राज्यों के कैथोलिक प्रदेशों में भूस्वामियों, पूंजीपतियों और कृषक समुदाय के कतिपय भागों की पृथकतावादी प्रशाविरोधी प्रवृत्तियों का समर्थन कर रहे थे। कैथोलिकविरोधी संघर्ष के बहाने बिस्मार्क की सरकार ने प्रशा के चंगुल में फंसनेवाले पोलिश इलाक़ों में भी राष्ट्रीय उत्पीड़न' को तेज़ कर दिया। इस नीति का लक्ष्य धार्मिक भावनाएं भड़काकर वर्ग-संघर्ष से मजदूरों का ध्यान हटाना भी था। नवें दशक के आरम्भ में मज़दूर वर्ग के बढ़ते आन्दोलन को देखते हुए बिस्मार्क ने इन कार्रवाइयों के एक अच्छे-ख़ासे हिस्से को तिलांजलि दे दी ताकि प्रतिक्रियावादी शक्तियों को मज़बूत बनाया जा सके। – पृ० १८८

[79] **'रूस में सामाजिक सम्बन्धों के विषय में'** शीर्षक लेख 'उत्प्रवासी साहित्य' नामक लेखमाला का पांचवां लेख है। इस लेख में तथा १८६४ में इसके लिए लिखे गये परिशिष्ट में लेखक ने १६ वीं शताब्दी के आठवें दशक के आरम्भ में रूसी नरोद्वाद की, जिसका प्रतिनिधित्व उसके विचारधारात्मक नेता प० लाव्रोव तथा प० त्काचोव कर रहे थे, और ख़ासकर नवें तथा दसवें दशक के उदारतावादी नरोद्वाद की मुख्य प्रवृत्तियों की आलोचना की। एंगेल्स इतिहास के प्रति भाववादी, संकल्पवादी दृष्टिकोण को, जो नरोद्वादियों

का अभिलाक्षणिक गुण था, सामाजिक विकास के भौतिक आधार को समझने में उनकी असमर्थता को प्रकाश में लाये। १८६१ के बाद रूस में सामाजिक सम्बन्धों के ग्राम विश्लेषण के आधार पर एंगेल्स ने यह निष्कर्ष निकाला कि पूंजीवाद का रूस में अधिकाधिक विकास होता जा रहा है और इस कारण देहात में सामुदायिक स्वामित्व विघटित हो रहा है।—पृ० १६२

[80] यहां तथा अन्यत्र एंगेल्स त्काचोव की पुस्तिका «*Offener Brief an Herrn Friedrich Engels*» (श्री फ़्रेडरिक एंगेल्स के नाम खुला पत्र) का हवाला देते हैं जो १८७४ में ज्यूरिख़ में प्रकाशित हुई थी।—पृ० १६२

[81] यहां एंगेल्स का इशारा हक्स्ट्हाउज़ेन की हनोवर तथा बर्लिन में १८४७–१८५२ में तीन भागों में प्रकाशित इस पुस्तक की ओर है—«*Studien über die innern Zustände, das Volksleben und insbesondere die ländlichen Einrichtungen Ruslands*» (रूस में जन जीवन के आन्तरिक सम्बन्धों और विशेष रूप से ग्रामीण व्यवस्था की जांच)—पृ० १६६

[82] ज़ारशाही रूस की आधिकारिक दस्तावेज़ों में **लघु रूस**—उक्रइन का पर्याय।—पृ० २००

[83] **क्रीमियाई युद्ध (१८५३–१८५६)**—निकट पूर्व पर प्रभाव हासिल करने के लिए ब्रिटेन, फ़्रांस, तुर्की तथा सार्डिनिया के सहबंध और रूस के बीच युद्ध। युद्ध का केन्द्रबिन्दु क्रीमिया था। इसमें रूस की पराजय हुई।—पृ० २१४

[84] यहां इशारा 'वेस्तनिक येव्रोपी' (यूरोप का संदेशवाहक) पत्रिका की पुस्तक ६, १८७७, में यू० ग० जुकोव्स्की के 'कार्ल मार्क्स तथा पूंजी पर उनकी पुस्तक' शीर्षक लेख तथा 'ओतेचेस्त्वेन्नियें ज़पीस्की' (पितृभूमि टिप्पणियां), अंक १०, १८७७ में नि० क० मिख़ाइलोव्स्की द्वारा 'कार्ल मार्क्स के बारे में यू० ग० जुकोव्स्की का फ़तवा' शीर्षक उत्तर की ओर है।

'वेस्तनिक येव्रोपी' (यूरोप का संदेशवाहक)—पूंजीवादी-उदारतावादी प्रवृत्ति का ऐतिहासिक-राजनीतिक तथा साहित्यिक मासिक; पीटर्सबर्ग में १८६६ से १९१८ तक प्रकाशित।

'ओतेचेस्त्वेन्नियें जपीस्की' (पितृभूमि टिप्पणियां)—साहित्यिक-राजनीतिक पत्रिका जिसका प्रकाशन पीटर्सबर्ग में १८२० से शुरू हुआ था; १८३९ से

वह अपने ज़माने की सर्वोत्तम प्रगतिशील पत्रिका बन गयी। पत्रिका पर सेंसर का लगातार वार होता रहा और अन्ततः अप्रैल १८८४ में उसे ज़ारशाही सरकार ने बन्द कर दिया।–पृ० २१५

[85] **'वेस्तनिक नरोद्नोइ वोलि'** (जन-इच्छा का संदेशवाहक)–जेनेवा में १८८३ से १८८६ तक जन-इच्छा संगठन की कार्यकारिणी समिति के रूसी उत्प्रवासी सदस्यों द्वारा प्रकाशित पत्रिका। कुल मिलाकर ५ अंक प्रकाशित हुए।

रूसी क़ानूनी प्रेस में मार्क्स की चिट्ठी अक्तूबर १८८८ के 'युरिदीचेस्की वेस्तनिक' (क़ानूनी संदेशवाहक) में छपी थी।–पृ० २१५

[86] यहां इशारा शायद नरोद्वादी संगठनों के नेतृत्वकारी निकायों की ओर है–"ज़ेम्ल्या इ वोल्या" (भूमि तथा स्वतंत्रता) (१८७६ के शरदकाल से लेकर १८७९ के शरदकाल तक) तथा "नरोद्नाया वोल्या" (जन-इच्छा) (अगस्त १८७९ से लेकर मार्च १८८१ तक) जिसने आतंकवाद को राजनीतिक संघर्ष की मूल विधि घोषित किया ।।–पृ० २१७

[87] **द्वितीय साम्राज्य**–नेपोलियन तृतीय की शासन अवधि (१८५२–१८७०)।–पृ० २१८

[88] बकूनिन की पुस्तक 'राज्यत्व तथा अराजकता', जो १८७३ में प्रकाशित हुई थी, पर कार्ल मार्क्स की ये टिप्पणियां अनुपम आलोचनात्मक तथा शास्त्रार्थपूर्ण रचना है। उसमें अराजकतावादी सिद्धांतों की गहन आलोचना तथा इसके विपरीत राज्य, सर्वहारा अधिनायकत्व की ऐतिहासिक अनिवार्यता तथा समाजवादी क्रान्ति की विजय के लिए एक अपरिहार्य शर्त के रूप में मज़दूर वर्ग तथा कृषक समुदाय के सहबंध के बारे में वैज्ञानिक कम्युनिज़्म की प्रमुख प्रस्थापनाओं को प्रस्तुत किया गया है। ये प्रस्थापनाएं मार्क्स ने पांडुलिपि के सारांश में जोड़ी हैं जिनमें से एक प्रस्तुत खण्ड में शामिल की गयी है।–पृ० २२२

[89] *«Nordstern»* (उत्तरी तारा)–१८६० से १८६६ तक हैम्बर्ग में प्रकाशित होनेवाला जर्मन साप्ताहिक; १८६३ में उसने लासालपंथी लाइन अपनायी।–पृ० २२६

[90] *«Social Demokrat»* (सामाजिक-जनवादी)–लासालपंथी आम जर्मन मज़दूर संघ का मुखपत्र, जो बर्लिन में इस नाम से १५ दिसम्बर १८६४ से लेकर

१८७१ तक प्रकाशित होता रहा। १८६४–१८६७ में उसके सम्पादक श्वीटज़र थे।–पृ० २२६

[91] जर्मन राज्यों के पूंजीवादी उदारतावादियों की १५–१६ सितम्बर १८५६ को फ़्रैंकफ़ुर्ट-आन-मेन में कांग्रेस में **राष्ट्रीय संघ** की स्थापना हुई थी। उसके संगठनकर्त्ताओं ने आस्ट्रिया को छोड़कर बाक़ी पूरे जर्मनी को प्रशा के नेतृत्व में ऐक्यबद्ध करने का कार्यभार अपने सामने निर्धारित किया था। उत्तर जर्मनी महासंघ की स्थापना के बाद ११ नवम्बर १८६७ को संघ ने अपने को भंग कर दिया।–पृ० २२७

[92] १८५८ में प्रशा के प्रिंस रीजेंट ने मांटेइफ़ेल का मंत्रिमंडल भंग कर दिया तथा नरम विचारों वाले उदारतावादियों को सत्ता सम्भालने के लिए आमंत्रित किया। पूंजीवादी अख़बारों में इस पग को "**नये युग**" का तड़कीला-भड़कीला नाम दिया गया। परन्तु वास्तविकता यह थी कि विल्हेल्म की नीति का लक्ष्य प्रशियाई राजतंत्र और ज़मींदारों की स्थिति को सुदृढ़ बनाना था। "नये युग" ने वस्तुतः बिस्मार्क के अधिनायकत्व का पथ प्रशस्त किया जिसने सितम्बर १८६२ में सत्ता की बागडोर सम्भाली।–पृ० २२७

[93] यहां फ़िलिप द्वितीय से तात्पर्य विल्हेल्म प्रथम से है। **उकेर्मार्क**–ब्रांडेनबुर्ग (प्रशा) प्रान्त का उत्तरी भाग, जो प्रतिक्रियावादी प्रशियाई युंकरों का गढ़ था।–पृ० २२७

[94] «*Kreuz-Zeitung*» (सलीब अख़बार)–यह नाम जर्मन दैनिक «*Neue Preusische Zeitung*» (नया प्रशियाई पत्र) को दिया गया था क्योंकि उसके नाम पर सलीब का निशान हुआ करता था जो लैंडवेर का चिह्न था। उसका प्रकाशन बर्लिन में जून १८४८ में शुरू हुआ; प्रतिक्रान्तिकारी राजदरबारी गुट तथा प्रशियाई युंकरों का मुखपत्र।–पृ० २२८

[95] **आम जर्मन मज़दूर संघ** जर्मन मज़दूरों का १८६३ में स्थापित राजनीतिक संगठन जिसमें लासाल ने सक्रिय भाग लिया। यह संघ १८७५ तक क़ायम रहा जब गोथा में हुई कांग्रेस में लासालपंथी तथा आइज़ेनाहपंथी (वह पार्टी जिसके नेता लीब्कनेख़्त तथा बेबेल थे) मिलकर जर्मन समाजवादी मज़दूर पार्टी में ऐक्यबद्ध हो गये।–पृ० २२८

[96] **प्रगतिवादी** – जून १८६१ में प्रशियाई पूंजीवादी पार्टी के प्रतिनिधि। इन लोगों ने प्रशा के नेतृत्व में जर्मनी का एकीकरण करने, अखिल जर्मन संसद बुलाने, प्रतिनिधि सदन के प्रति ज़िम्मेदार मंत्रिमंडल क़ायम करने की मांग की। – पृ० २२८

[97] इस प्रश्न पर संघबद्ध होने तथा हड़ताल करने पर पाबन्दी लगानेवाली उत्पादक अधिनियमों की धाराएं ख़त्म करने के लिए मज़दूरों के प्रदर्शनों के सम्बन्ध में प्रशियाई लैंडस्टाग में १८६५ में विचार किया गया। प्रगतिवादियों ने धारा १८१ रद्द करने की मांग की। इसमें कारख़ाना-मालिकों को इस बात की मनाही की गयी थी कि वे मज़दूरों के होश ठिकाने लगाने की खातिर उत्पादन रोक दें। परन्तु उन्होंने साथ ही जन-समर्थन प्राप्त करने के लिए धारा १८२ रद्द करने की भी मांग की जिसमें हड़ताल करने के लिए उकसाने के वास्ते मज़दूरों को सज़ा देने की व्यवस्था थी। १४ फ़रवरी १८६५ को लैंडस्टाग ने केवल १८१ तथा १८२ धाराएं रद्द कीं और इस तरह मज़दूरों की मांगें पूरी नहीं कीं। – पृ० २२८

[98] यह प्रशा में उस समय लागू उत्पादक नियमों को मार्क्स द्वारा दिया गया व्यंग्यात्मक नाम है। नौकर-चाकरों को अभिशासित करनेवाले तथाकथित नियम १८वीं शताब्दी में प्रशियाई प्रान्तों में लागू सामन्ती नियम थे जो ज़मींदारों को भूदास किसानों पर पूरा-पूरा अधिकार प्रदान करते थे। – पृ० २२८

[99] १८६१ के वसन्तकाल में मार्क्स ने फिर से प्रशियाई नागरिकता प्राप्त करने का प्रयत्न किया। परन्तु प्रशियाई अधिकारियों ने उन्हें यह कहकर नागरिकता देने से इन्कार कर दिया कि उन्होंने प्रशियाई नागरिकता का "स्वेच्छया" परित्याग किया था। – पृ० २२९

[100] २०–२५ अगस्त १८६६ में बाल्टिमोर में हुई **अमरीकी मज़दूर कांग्रेस** में क़ानून द्वारा आठ घंटे के कार्य-दिवस की स्थापना, राजनीतिक गतिविधियों, हड़तालों, आदि पर विचार-विमर्श हुआ था। – पृ० २३१

[101] यहां इशारा १८६५–१८६७ के दूसरे मताधिकार-सुधार के लिए आम जनवादी आन्दोलन में ब्रिटिश ट्रेड यूनियनों की आम शिरकत की ओर है।

मताधिकार-सुधार के समर्थकों की २३ फ़रवरी १८६५ को हुई सभा ने, इंटरनेशनल की जनरल कौंसिल की पहल पर तथा उसकी सक्रिय शिरकत

से एक रिफ़ार्म लीग (सुधार लीग) स्थापित करने का निर्णय किया, जो ब्रिटिश मज़दूरों के दूसरे मताधिकार-सुधार आन्दोलन का संचालन करनेवाला राजनीतिक केन्द्र बन गया। मार्क्स के आग्रह पर रिफ़ार्म लीग ने पूरे देश की पुरुष आबादी के लिए सार्वजनिक मताधिकार की मांग पेश की। परन्तु लीग के नेताओं के बीच पूंजीवादी आमूल परिवर्तनवादियों के, जो जन-आन्दोलन से घबरा गये थे, कारण तथा अवसरवादी ट्रेड यूनियन नेताओं की समझौता-परस्त नीति के कारण लीग जनरल कौंसिल द्वारा निर्धारित लाइन पर अमल करने में विफल रही। ब्रिटिश पूंजीपति वर्ग आन्दोलन में फूट डालने में सफल हो गया। १८६७ में सीमित पैमाने पर सुधार लागू किया गया, जिसमें केवल निम्नपूंजीपति वर्ग को तथा मज़दूर वर्ग के सबसे ऊपरी भागों को मताधिकार दिया गया और अधिकांश आबादी को पहले की तरह मताधिकार से वंचित रखा गया।—पृ० २३२

[102] «*Literarisches Centralblatt für Deutschland*» (जर्मनी की केन्द्रीय साहित्यिक समीक्षा)—लाइपज़िग में १८५०—१९४४ तक प्रकाशित होनेवाली विज्ञान-सूचना तथा समालोचना की जर्मन साप्ताहिक पत्रिका।—पृ० २३२

[103] यहां मार्क्स का इशारा 'पूंजी' के पहले जर्मन संस्करण में पहले अध्याय ('माल और मुद्रा') की ओर है।—पृ० २३२

[104] यहां इशारा हक्स्टहाउज़ेन की बर्लिन में १८४२ में प्रकाशित इस पुस्तक की ओर है—«*Ueber den Ursprung und die Grundlagen der Verfassung in den ehmals slavischen Ländern Deutschlands im allgemeinen und des Herzogthums Pomern im besondern*» (सामान्यतया जर्मनी तथा ख़ासकर पोमेरेनिया की डची में भूतपूर्व स्लाव इलाक़ों में सामाजिक व्यवस्था की उत्पत्ति तथा उसके आधार)।—पृ० २३५

[105] १३ जून १८४९ को पेरिस में निम्न-पूंजीवादी पर्वत दल ने इटली में क्रान्ति कुचलने के लिए फ़्रांसीसी सैनिकों के भेजे जाने के विरुद्ध शान्तिपूर्ण प्रदर्शन आयोजित किया। सैनिक टुकड़ियों ने प्रदर्शन भंग कर दिया। पर्वत दल के कई नेता गिरफ़्तार कर लिये गये, निर्वासित किये गये अथवा फ़्रांस छोड़ने के लिए विवश किये गये।—पृ० २३६

[106] **परस्परवादी** – १९ वीं शताब्दी के सातवें दशक में प्रूदोंपंथी अपने को इस नाम से पुकारा करते थे क्योंकि उन्होंने पारस्परिक सहायता की (सहकारिताओं, पारस्परिक सहायता सोसायटियों की स्थापना, आदि) व्यवस्था के ज़रिए मेहनतकशों को स्वतंत्र करने की एक निम्न-पूंजीवादी योजना पेश की थी। – पृ० २३७

[107] यहां इशारा १८७१ के लन्दन सम्मेलन के इन प्रस्तावों की ओर है – 'राष्ट्रीय परिषदों के नाम, आदि' (प्रस्ताव, II, धाराएं १,२,३), 'मज़दूर वर्ग की राजनीतिक क्रिया के बारे में' (प्रस्ताव IX), 'समाजवादी जनवादी सहबंध' (प्रस्ताव XVI) तथा 'रोमांस स्विट्ज़रलैंड में फूट' (प्रस्ताव XII) – पृ० २३८

[108] **४ सितम्बर १८७०** को सेदान में फ़्रांसीसी सेना की पराजय की ख़बर मिलने पर विशाल जनसमुदाय ने क्रान्तिकारी कार्रवाइयों का आयोजन किया जिसके फलस्वरूप द्वितीय साम्राज्य का पतन हो गया तथा जनतंत्र की उद्घोषणा हुई। परन्तु नवस्थापित सरकार में राजतंत्रवादी तथा नरम विचारों वाले लोग भी थे। फ़ौजी गवर्नर त्रोशु तथा मुख्य प्रेरणादाता थियेर के नेतृत्व में इस सरकार ने फ़्रांसीसी पूंजीपतियों तथा ज़मींदारों की पराजयवादी मनोवृत्ति और जन-साधारण से डर की भावना प्रतिबिम्बित करते हुए राष्ट्रीय ग़द्दारी का रास्ता अपनाया तथा विदेशी शत्रु के साथ सांठगांठ की। – पृ० २३९

[109] देखें टिप्पणी १४। – २४०

[110] यहां इशारा संगठनात्मक प्रश्नों पर १८६९ की बाज़ेल कांग्रेस के प्रस्तावों की ओर है जिन्होंने जनरल कौंसिल के अधिकारों का विस्तार किया। – पृ० २४१

[111] «*Il proletario*» – देखें टिप्पणी ४१।

«*Gazzettino Rosa*» (लाल अख़बार) – इतालवी दैनिक, वामपंथी माज़्ज़िनीपंथियों का मुखपत्र, मिलान में १८६७ से १८७३ तक प्रकाशित होता रहा; १८७१ में उसने पेरिस कम्यून के समर्थन की घोषणा की तथा इंटरनेशनल की दस्तावेज़ें प्रकाशित कीं; १८७२ से वह बकूनिनपंथियों के प्रभाव में आ गया। – पृ० २४२

[112] «*La Liberté*» – (स्वतंत्रता) बेल्जियन जनवादी अख़बार जो १८६५ से

१८७३ तक ब्रसेल्स में प्रकाशित होता रहा; १८६७ से बेल्जियम में इंटरनेशनल का मुखपत्र।—पृ० २४३

[113] **१८७१ की फ्रांसीसी शाखा** लन्दन में फ्रांसीसी उत्प्रवासियों द्वारा सितम्बर १८७१ में स्थापित की गयी। उसके नेताओं का स्विस बकूनिनपंथियों से घनिष्ठ सम्पर्क था तथा वे इंटरनेशनल के संगठनात्मक सिद्धांतों पर प्रहार करने में उनके साथ मिल गये। यह शाखा इंटरनेशनल में भर्ती नहीं की गयी क्योंकि उसकी नियमावली की कुछ धाराएं आम नियमावली का उल्लंघन करती थीं। आगे चलकर वह कई धड़ों में बंट गयी।—पृ० २४३

[114] यहां इशारा १२ नवम्बर १८७१ को सोनविल्ये में बकूनिनपंथी जूरा फ़ेडरेशन की कांग्रेस में अनुमोदित '**अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर संघ के तमाम फ़ेडरेशनों के नाम परिपत्र**' की ओर है। परिपत्र ने लन्दन सम्मेलन के निर्णय तथा जनरल कौंसिल के अधिकार अस्वीकृत कर दिये तथा सुझाव दिया कि तमाम फ़ेडरेशनों को इंटरनेशनल की आम नियमावली में संशोधन करने और जनरल कौंसिल की निन्दा करने के लिए तत्काल कांग्रेस बुलाने की मांग करनी चाहिए।—पृ० २४४

[115] *«Ficcanaso»* (चालबाज़)—इटली का व्यंग्यप्रधान जनतन्त्रवादी दैनिक, वामपंथी माज़्ज़िनीपंथियों का मुखपत्र, टूरिन में १८६८ से १८७२ तक प्रकाशित होता रहा।—पृ० २४४

[116] एंगेल्स यहां 'सोनविल्ये कांग्रेस में भाग लेनेवाले १६ व्यक्तियों के परिपत्र का रोमांस संघीय कमेटी द्वारा दिये गये उत्तर' की ओर इशारा कर रहे हैं।—पृ० २४४

[117] **सामाजिक-जनवादियों की सैक्सन कांग्रेस** ६ और ७ जनवरी १८७२ को चेमनित्ज़ नामक स्थान में हुई। कांग्रेस ने अन्य विषयों के अलावा (मताधिकार, ट्रेड यूनियनों का संगठन) सोनविल्ये परिपत्र (देखें टिप्पणी ११४) पर तथा इंटरनेशनल के अन्दर अराजकतावादविरोधी संघर्ष पर विचार किया। कांग्रेस ने जनरल कौंसिल का सर्वसम्मति से समर्थन किया तथा १८७१ के लन्दन सम्मेलन के प्रस्तावों का अनुमोदन किया।—पृ० २४५

[118] **इंटरनेशनल के बेल्जियन फ़ेडरेशन की कांग्रेस** ने, जो २४–२५ दिसम्बर १८७१ को ब्रसेल्स में हुई, सोनविल्ये परिपत्र पर विचार करते हुए आम कांग्रेस तत्काल

बुलाने की स्विस अराजकतावादियों की मांग का समर्थन तो नहीं किया परन्तु बेल्जियन फ़ेडरल कौंसिल को आदेश दिया कि वह इंटरनेशनल की नयी नियमावली का मसौदा हेग कांग्रेस के विचारार्थ तैयार करे।–पृ० २४५

[119] जर्मनी, आस्ट्रिया तथा स्विट्ज़रलैंड के सामाजिक-जनवादियों की ७–९ अगस्त १८६९ को **आइज़ेनाख में** हुई अखिल जर्मन कांग्रेस में जर्मन सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी की स्थापना हुई। उसका कार्यक्रम मुख्यतया इंटरनेशनल द्वारा प्रस्तुत मांगों के अनुरूप था।–पृ० २४७

[120] १८७२–१८७३ में लीब्कनेख्त तथा हेप्नेर ने मार्क्स से बार-बार अनुरोध किया कि वह लासाल के विचारों की आलोचना करते हुए एक पुस्तिका या फिर «*Volksstaat*» के लिए लेख लिखें।–पृ० २५०

[121] ज़ोर्गे ने अगस्त १८७४ में जनरल कौंसिल से त्यागपत्र दे दिया तथा १४ अगस्त १८७४ को एंगेल्स को इस बारे में सूचित किया; उनका औपचारिक इस्तीफ़ा २५ सितम्बर १८७४ से लागू हुआ।–पृ० २५१

नाम-निर्देशिका

एबेर (Hebert), जाक रेने (१७५७–१७६४) – १८ वीं शती की फ़ांसीसी पूंजीवादी क्रांति के कार्यकर्त्ता, वामपंथी जैकोबिनों के नेता। – १८६।

ओ

ओडजर (Odger), जार्ज (१८२०–१८७७) – अंग्रेज़ चर्मकार, ट्रेड-यूनियन नेता, सुधारवादी, इंटरनेशनल की जनरल कौंसिल के सदस्य (१८६४–१८७१), उसके अध्यक्ष (१८६४–१८६७); १८७१ में पेरिस कम्यून की भर्त्सना की, जनरल कौंसिल से अलग हो गये, जिसने उन्हें गद्दार ठहराया। – १२, १८।

ओवेन (Owen), राबर्ट (१७७१–१८५८) – ब्रिटेन के विख्यात कल्पनावादी समाजवादी। – १२३, १२४, २१२, २३१।

ओस्मान (Haussmann,) जार्ज एजेन (१८०६–१८६१) – फ़्रांसीसी राजनीतिज्ञ, बोनापार्तपंथी, सीन ज़िले के प्रीफ़ेक्त (१८५३–१८७०), पेरिस के पुनर्निर्माण-कार्य का संचालन किया। – ८८, १४५।

क

कामेलिना (Camélinat), ज़ेफ़ीरिन (१८४०–१६३२) – फ़्रांसीसी मज़दूर तथा समाजवादी आन्दोलन के एक प्रमुख नेता, इंटरनेशनल की पेरिस शाखा के नेताओं में से एक, पेरिस कम्यून के सदस्य, १६२० से फ़्रांस की कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य। – ३५।

कालियोस्त्रो (Cagliostro), अलेस्सान्द्रो (असल नाम जुज़ेप्पे बाल्सामो) (१७४३–१७६५) – इतालवी दुस्साहसिकतावादी। – २१।

कुगेलमन (Kugelmann), लुडविग (१८३०–१६०२) – जर्मन चिकित्सक, १८४८–१८४६ की क्रांति में भाग लिया, इंटरनेशनल के सदस्य, इंटरनेशनल की कई कांग्रेसों में भाग लिया, मार्क्स परिवार के मित्र। – २२५, २३०, २३२, २३४, २३६।

कुनो (Cuno), फ़्रेडरिक थियोडोर (१८४६–१६३४) – जर्मन तथा अंतर्राष्ट्रीय मज़दूर आन्दोलन के एक प्रमुख नेता, समाजवादी; पहले इंटरनेशनल के सक्रिय सदस्य, "नाइट्स आफ़ लेबर" नामक अमरीकी मज़दूर संगठन के नेताओं में से एक, «*New Yorker Volkszeitung*» पत्र में लेख लिखते रहे। – २४०।

ग

च

ज

ज़ोर्गे (Sorge), फ़्रेडरिक अडोल्फ़ (१८२८–१९०६) – अन्तर्राष्ट्रीय और अमरीकी मज़दूर तथा समाजवादी आन्दोलन की प्रमुख हस्ती; १८४८ की क्रान्ति में भाग लिया; इंटरनेशनल के सक्रिय सदस्य, न्यूयार्क में जनरल कौंसिल के सदस्य तथा उसके महासचिव (१८७२–१८७४); मार्क्सवाद के सक्रिय प्रचारक; मार्क्स तथा एंगेल्स के मित्र तथा सहयोगी।–२५१।

ड

ड्यूकपेसो (Ducpetiaux), एडवर्ड (१८०४–१८६८) – बेल्जियन पत्रकार तथा सांख्यिकीविद, पूंजीवादी लोकोपकारवादी, जेलों तथा लोकोपकारी संस्थानों के निरीक्षक।–११२।

त

तेर्जागी (Terzaghi), कार्लो (जन्म अनुमानतः १८४५) – इतालवी वकील, टूरिन में "सर्वहारा मुक्ति" मज़दूर समाज के सचिव; १८७२ में पुलिस का भेदिया।–४९।

त्काचोव, प्योत्र निकितिच (१८४४–१८८५) – रूसी क्रान्तिकारी, पत्रकार, नरोदवाद के एक सिद्धांतकार।–१९२, १९३, १९६, १९७, १९९–२०१, २०३, २०६–२०८।

थ

थियेर (Thiers), अदोल्फ़ (१७९७–१८७७) – फ़्रांस का पूंजीवादी इतिहासकार तथा राजनीतिज्ञ, विधान सभा का सदस्य (१८४९–१८५१), आर्लियानिस्ट, जनतंत्र का राष्ट्रपति (१८७१–१८७३), पेरिस कम्यून का हत्यारा।–३०, ५९, ६२, ६५, २३५, २४५।

थेइस (Theisz), अल्बेर (१८३९–१८८०) – फ़्रांसीसी मज़दूर, प्रूदोंवादी, पेरिस कम्यून के सदस्य, उत्प्रवासी, जनरल कौंसिल के सदस्य और ख़ज़ानची।–३०, ३५।

द

न

प

फ

ब

म

ल

में कम्यून के प्रतिनिधि के रूप में वहां कम्यून की उद्घोषणा करने का प्रयास किया; कम्यून के दमन के बाद इंगलैंड चले गये, बोनापार्तपंथी। – २४५।

व

वाइयां (Vaillant), एदुअर्द मारी (१८४०–१९१५) – फ़्रांसीसी समाजवादी, ब्लांकी के अनुयायी; पेरिस कम्यून तथा पहले इंटरनेशनल की जनरल कौंसिल के सदस्य (१८७१–१८७२); १८८९ की अन्तर्राष्ट्रीय समाजवादी मज़दूर कांग्रेस में भाग लिया; फ़्रांस की समाजवादी पार्टी के संस्थापकों में से एक (१९०१); प्रथम विश्व युद्ध के दौरान सामाजिक अंधराष्ट्रवादी स्थिति अपनायी। – १९१।

वागनेर (Wagner), अडोल्फ़ (१८३५–१९१७) – जर्मनी के बाज़ारू अर्थशास्त्री, राजनीतिक अर्थशास्त्र के तथाकथित सामाजिक-क़ानूनी पंथ के प्रतिनिधि, काथेडर-समाजवादी। – १४५।

वागेनेर (Wagener), हेर्मान (१८१५–१८८९) – जर्मन पत्रकार तथा राजनीतिज्ञ, *«Neue Preußische Zeitung»* पत्र के सम्पादक (१८४८–१८५४), प्रशा के अनुदार दल के संस्थापकों में से एक, बिस्मार्क के समर्थक। – २२८।

वार्लिन (Varlin), एज़ेन (१८३९–१८७१) – फ़्रांसीसी मज़दूर आन्दोलन के ख्यातिप्राप्त नेता; वामपंथी प्रूदोंवादी; फ़्रांस में इंटरनेशनल की शाखाओं के एक नेता; राष्ट्रीय गार्ड की केन्द्रीय परिषद के तथा पेरिस कम्यून के सदस्य, वेर्साईवालों द्वारा गोली से उड़ा दिये गये। – ३५।

विक्टर-एमानुईल द्वितीय (१८२०–१८७८) – सार्डीनिया के राजा (१८४९–१८६१), इटली के राजा (१८६१–१८७८)। – १४।

विनुआ (Vinoy), जोज़ेफ़ (१८००–१८८०) – फ़्रांसीसी जनरल, बोनापार्तपंथी, २ दिसम्बर १८५१ के राज्य-पर्युत्क्षेपण में भाग लिया; २२ जनवरी १८७१ से पेरिस के गवर्नर; कम्यून के संहारकों में से एक, वेर्साई रिज़र्व सेना के सेनापति। – २३५।

विर्जिलियस (Publius, Vergilius Moro) (७०–१९ ई० पू०) – महान रोमन कवि। – २३१।

विल्हेल्म प्रथम (Wilhelm I) (१७९७–१८८८) – प्रशा के राजा (१८६१–१८८८), जर्मनी के सम्राट (१८७१–१८८८)। – ६५।

श

स

पाठकों से

प्रगति प्रकाशन इस पुस्तक के अनुवाद और डिज़ाइन के बारे में आपके विचार जानकर अनुगृहीत होगा। आपके अन्य सुझाव प्राप्त करके भी हमें बड़ी प्रसन्नता होगी। कृपया हमें इस पते पर लिखिये :

प्रगति प्रकाशन,
२१, जूबोव्स्की बुलवार,
मास्को, सोवियत संघ।

साहित्यिक और पौराणिक पात्रों की सूची

च

चचा ब्रेसिग – रायटर की प्रहसनप्रधान कथाओं का मुख्य पात्र। – १६३।

प

पोज़ा, मार्क्विस – शिलर की करुणाप्रधान रचना 'दान कार्लोस' का पात्र; एक उदात्त तथा स्वतंत्र चिन्तक राजदरबारी की छवि। – २२७।

फ

फ़िलिप द्वितीय – शिलर की करुणाप्रधान रचना 'दान कार्लोस' का पात्र। – २२७।

म

मरियम – बाइबल के अनुसार ईसामसीह की जननी। – १८७।

मोरोस – शिलर की कविता का पात्र। – १८५।

ल

लेवियाथन (बाइबल) – राक्षस। – ३९।

ह

हेमलेट – शेक्सपियर की त्रासदी का पात्र। – १८५।